गीतकार विद्यापति

[आलोचनात्मक अध्ययन]

लेखक—

श्री राम वाशिष्ठ

एम० ए०, साहित्यरत्न ।

विनोद पुस्तक मन्दिर

हास्पिटल-रोड, आगरा ।

प्रकाशक—
विनोद पुस्तक मन्दिर,
हॉस्पिटल रोड, आगरा।

प्रथम संस्करण जुलाई १९५४
मूल्य २॥)

मुद्रक—
कैलाश प्रिंटिंग प्रेस,
बागमुजफ्फरखाँ, आगरा।

स्नेहमयी

स्वर्गीया

अम्मा को—

भूमिका

श्री राम वाशिष्ठ की 'गीतकार विद्यापति' एक प्रौढ़ रचना है, जिसके पीछे गंभीर अध्ययन है और उनकी विशेषता यह है कि वे एक ऐतिहासिक दृष्टिकोण उपस्थित करने में सफल हुए हैं, जिसका अभाव आज तक विद्यापति के वास्तविक मूल्यांकन में बाधक था। विद्यापति शाक्त थे या श्रृङ्गारी कवि यह पुराना विवाद है। विद्वानों ने इस विषय पर विभिन्न और एकांगी मत प्रस्तुत किये हैं। किंतु राम वाशिष्ठ जी की दृष्टि सापेक्ष रही है और उन्होंने साहित्य के इतिहास को यह एक देन दी है कि इस द्वन्द्व की वास्तविकता को खोज निकाला है। वाममार्ग की संपूर्ण पूर्वपीठिका ने जिस शाक्त चिंतन और व्यवहार को जन्म दिया था, वही विद्यापति में शक्ति की उपासना और श्रृंगार की बहुलता के रूप में भक्ति का रूप धारण कर सकी थी। श्री राम वाशिष्ठ ने इतने में ही अपनी खोज को पूरा नहीं किया। भक्ति में श्रृंगार की अंतर्निहित एकता को देखने के बाद उन्होंने श्रृङ्गार की जो पल्लवित अवस्था विद्यापति में है, उसके भी आश्रय और आधार अपने विवेचन में प्रगट किये हैं और यह स्पष्ट कर देता है कि कवि के जीवन पर एक से अधिक विषयों का प्रभाव पड़ता है।

श्री राम वाशिष्ठ ने विद्यापति संबंधित प्रत्येक विषय पर अपना गहरा चिंतन प्रस्तुत किया है। सिद्ध और नाथ संप्रदाय की परम्पराएं जिस रूप में विद्यापति में अंतर्मुक्त हुई थीं, उनका भी पुस्तक में सुन्दर विवेचन है। इसीलिये पुस्तक केवल विद्यार्थियों के लिये नहीं, अपितु साधारण अथवा विद्वान पाठकों के भी काम की है, ऐसा मुझे विश्वास है।

रांगेय राघव

अपनी बात

महाकवि विद्यापति के पदों के प्रति मेरा मोह बहुत समय से था। जिस समय मैं केवल स्कूल का विद्यार्थी था उस समय से ही मैं पदावली के सुन्दर पदों को बड़े चाव से पढ़ा करता था। उत्तरोत्तर मेरा यह प्रेम इतना बढ़ा कि मैं विद्यापति को ही सर्वश्रेष्ठ कवि मानने लगा। इस बात को लेकर मेरा अनेक बार कई मित्रों से वाद विवाद भी हुआ। मैंने तभी निश्चय किया कि महाकवि के विषय में अपने विचारों को पुस्तकाकार प्रकट करूँ तो ठीक रहेगा। किन्तु कुछ कारणों से इस कार्य को उस समय पूर्ण करने में असमर्थ रहा।

एम. ए. की परीक्षा में सम्मिलित होने के अवसर पर मैंने अपने इस प्रिय कवि के विषय में अनेकों विद्वानों के विचारों को पढ़ा और उनमें पारस्परिक मतभेद पाया। विद्यापति की भक्ति, विचारधारा, श्रृङ्गारभावना आदि विषयों पर उन सम्पूर्ण विद्वानों की अलग २ राय थी। एक विद्यार्थी के लिए यह बड़ा कठिन कार्य था कि वह उन विद्वानों की पुस्तकों को अलग २ पढ़कर अपना मत निर्धारित करे। मुझे स्वयं इतनी अधिक पुस्तकें पढ़ना उस समय ठीक प्रतीत नहीं हुआ किंतु फिर भी परीक्षा के लिये पढ़ना पड़ा। विद्यापति का काव्य और भक्ति विषयक विचारों के ऊपर विद्वानों ने एकांगी मत ही दिया था। अपनी २ विचारधारा के अनुकूल ही महाकवि को देखने का प्रयत्न किया गया था। उसी समय मैंने निश्चय किया कि इन सम्पूर्ण विभिन्न मतों को एक साथ दिखाकर ही अपने मत का प्रतिपादन किया जाये।

विद्यापति के काव्य के सौंदर्य को ही मैंने इस पुस्तक में विस्तृत रूप से देखने का प्रयत्न किया है। इसके अतिरिक्त उनकी भक्ति, श्रृंगार, मुक्तककार का रूप, हिन्दी साहित्य में स्थान, वियोग वर्णन आदि को भी विद्यार्थियों के दृष्टिकोण से देखने का प्रयत्न किया है। विद्यापति की राधा और सूरदास की राधा तथा जायसी की नागमती के विरह-वर्णन को तुलनात्मक दृष्टि से

जो देखा गया है उसमें भी विद्यार्थियों की सुविधा का ध्यान रखा गया है।

इस पुस्तक के लिखने में मुझे निम्नलिखित पुस्तकों से विशेष सहायता मिली है। उसके लिये मैं उनके लेखकों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

१—महाकवि विद्यापति (स्वर्गीय शिवनंदन ठाकुर)
२—विद्यापति (जनार्दन मिश्र)
३—विद्यापति (रामरतन भटनागर)
४—विद्यापति काव्यालोक (नरेन्द्रदास)
५—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (डा० रामकुमार वर्मा)
६—हिन्दी साहित्य का इतिहास (पं० रामचन्द्र शुक्ल)
७—हिन्दी भाषा और साहित्य (श्याम सुन्दरदास)

मैं अपने उन मित्रों की सहायता का भी आभारी हूँ जिन्होंने सहायक पुस्तकों के एकत्रित करने में मेरा हाथ बटाया है।

राम वाशिष्ठ

विषय सूची

विद्यापति का जीवन वृत्त

अन्तर्साक्ष्य एवं बहिर्साक्ष्य—

भारतीय मनीषियों, महाकवियों एवं दार्शनिकों की प्रवृत्ति अपने ज्ञान के स्पष्टीकरण की ओर ही रही। आत्मश्लाघा और अपने व्यक्तित्व की व्याख्या करना उनका उद्देश्य नहीं रहा। इसी कारण से उनके जीवन-वृत्त को उपस्थित करने में अनुमान का सहारा लेना आवश्यक हो जाता है।

संस्कृत के महान् कवि कालिदास, प्रसिद्ध दार्शनिक शंकर एवं गोस्वामी तुलसीदास तथा अन्धे कवि सूरदास के जीवन को समझने के लिये अन्तर्साक्ष्य और बहिर्साक्ष्य पर ही अवलम्बित रहना पड़ता है। इस प्रकार का जीवनवृत्त पूर्ण प्रामाणिक नहीं, किन्तु आधारों की न्यूनता के कारण उन्हीं पर पाठकों को संतोष करना पड़ता है। और यही मूल कारण है कि संस्कृत और हिन्दी के कवियों का जीवनवृत्त विद्वानों के लिये विवाद का विषय बन गया है।

महाकवि विद्यापति का जीवनवृत्त भी इसी प्रकार उसकी रचनाओं, समकालीन कवियों और ग्रन्थकारों की रचनाओं तथा ताम्रपत्रों के आधारों पर ही अवलम्बित है। किन्तु फिर भी सन्तोष है कि विद्यापति के जीवन के विषय में अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक सामग्री उपलब्ध हो जाती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि विद्यापति कोई स्वतंत्र कवि नहीं थे। वह जीवन भर राज्याश्रित ही रहे। इस कारण उनकी रचनाओं में यत्र-तत्र उनके अपने जीवन पर भी प्रकाश पड़ गया है। उनका जीवनवृत्त किसी सीमा तक अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक है।

विद्यापति का जन्म मिथिला प्रांत के बिसपी ग्राम में हुआ था। उनके पिता का नाम गणपति ठाकुर था। महाकवि का परिवार शताब्दियों से संस्कृत भाषा का विद्वान् रहा था। इनके पूर्वजों का नाम संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत आता है। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी द्वारा विद्यापति की वंशावली निम्नांकित

रूप में प्रस्तुत की गई है जो सन् १३२६ ई० में राजा हरिसिंहदेव के आज्ञा-नुसार लिखित 'मिथिला पंजो' के आधार पर है।

विष्णु ठाकुर
|
हरादित्य ठाकुर
|
(गढ़विशपी निवासी त्रिपाठी) कर्मादित्य ठाकुर
|
देवादित्य प्रासिद्ध शिवादित्य ठाकुर
|
देवादित्य ठाकुर

वीरेश्वर ठाकुर	धीरेश्वर ठाकुर	गणेश्वर	जटेश्वर	हरदत्त
चण्डेश्वर ठाकुर	जयदत्त ठाकुर			

जयदत्त ठाकुर
|
गणपति ठाकुर
|
(राजपण्डित-महामहोपाध्याय-विशपी ग्रामो पार्जक)
विद्यापति ठाकुर

कहा जाता है कि कवि अपनी बाल्यावस्था से ही मेधावी था। महामहोपाध्याय हरिमिश्र इनके अध्यापक और महामहोपाध्याय पक्षधर मिश्र विद्यापति के सहपाठी थे। पक्षधर मिश्र का लिखा विष्णु पुराण उपलब्ध हुआ है, जिसमें लक्ष्मण सम्वत् ३५४ लिखा हुआ है। विद्यापति अपने पिता के साथ राजा गणेश्वर के दरबार में जाया करते थे। जब विद्यापति अपनी शिक्षा समाप्त कर चुके तो राजा गणेश्वर के पुत्र कीर्त्तिसिंह के दरबार में जाने लगे। कीर्तिलता और कीर्तिपताका इन्हीं की प्रशंसा में लिखी गई। विद्यापति ने कई राजाओं का आश्रय लिया। उनकी आयु अधिक होने के कारण एक ही वंश की चार पीढ़ियों को उन्होंने देखा। राजा शिवसिंह के समय विद्यापति को अधिक सम्मान मिला। पदावली में शिवसिंह और उनकी पत्नी लखिमा देई का नाम अनेक बार आया है।

विद्यापति की जन्मतिथि और मृत्युतिथि निश्चित रूप से कुछ नहीं कही जा सकती। अन्तर्साक्ष्य के आधार पर अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है। विद्यापति ने 'कीर्तिलता' ग्रन्थ की रचना महाराज कीर्तिसिंह के लिये की।

श्रोतुर्ज्ञातुर्वदान्यस्य कीर्तिसिंह महीपतेः।
करोतु कवितुः काव्ये भव्यं विद्यापतिः कविः॥

यह पुस्तक कवि की प्रथम पुस्तक मानी जाती है। इसी पुस्तक के अन्त में कवि ने अपने को 'खेलन कवि' कहा है पुस्तक में वर्णित विषयों के पठन से स्पष्ट हो जाता है कि कवि उस समय २० वर्ष से कम नहीं होगा। इसी पुस्तक में कीर्तिसिंह और उसके भाई वीरसिंह का जौनपुर के शासक सुल्तान इब्राहीम शाह से मिलने का भी उल्लेख है। इब्राहीम का शासन काल सन् १४०१ से १४४० तक है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि ग्रन्थ की रचना सन् १४०१ के पश्चात् ही हुई होगी। इस आधार पर अनुमान किया जा सकता है कि विद्यापति का रचना काल सन् १४०५ से प्रारम्भ हुआ होगा। 'कीर्तिलता' की रचना के समय कवि की आयु लगभग १८–२० वर्ष अवश्य होगी। इसलिये कवि की जन्म तिथि सन् १३७५–७७ के आस-पास ही होगी। विद्यापति के 'दुर्गाभक्ति तरंगिनी' नामक अन्तिम ग्रन्थ की रचना सन् १४३८ के आस-पास देखते हैं। इस अन्तिम ग्रन्थ की रचना में कुछ समय अवश्य लगा होगा। अनुमानतः १०व र्ष का समय अवश्य लग गया होगा। उनकी मृत्यु तिथि के विषय में एक दोहा भी प्रचलित है—

विद्यापतिक आयु अवसान।
कातिक धवल त्रयोदशि जान॥

नगेन्द्रनाथ गुप्त विद्यापति की मृत्यु की तिथि कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी लक्ष्मण सम्बत् ३२९ मानते हैं (अर्थात् १४४८ ई०)। उपर्युक्त अनुमानों के आधार पर कवि का समय १३७५ ई० से १४४८ तक निश्चित किया जा सकता है।

राजा शिवसिंह ने महाकवि को बिशपी नामक ग्राम दिया जिसका उल्लेख ताम्रपत्र की प्रतिलिपि में मिलता है। यह ताम्र-पत्र राजा शिवसिंह ने विद्यापति

को दिया था और आजकल वह पिंढारह (दरभंगा) निवासी रतिकांत चौधरी के पास सुरक्षित है।

अब्दे लक्ष्मणसेन भूपति मिते वह्निग्रहद्व्यङ्किते।
मास श्रावणसंज्ञके मुनितिथौ पक्षेऽवलक्षे गुरौ॥

× × ×

प्रज्ञावान प्रचुराऽर्वरं प्रथुतराभोगन्नदीमातृकं।
सारण्यं ससरोवरञ्च विसपीनामानमासीमतः॥
श्री विद्यापतिशर्मणे सुकवये वाणीरसस्वादवि—
द्वीर श्री शिवसिंह देव नृपतिर्ग्रामं ददे शासनम्॥२॥

राजा शिवसिंह और रानी लखिमादेइ ने विद्यापति का अच्छा सम्मान किया। इसी कारण से कवि ने उनको रसिक शिरोमणि, रूपनारायण आदि नाम देकर साहित्य में अमर कर दिया। हो सकता है कि महाकवि को पदावली की रचना की प्रेरणा इन्हीं रसिक दम्पति से मिली हो। विद्यापति राज्य कवि ही नहीं थे वरन् राजा शिवसिंह के अन्तरंग मित्रों में से थे। उन्होंने पदावली में ईश्वर से कई स्थानों पर राजा शिवसिंह के लिये प्रार्थना तक की है। इससे उनकी मित्रता का अनुमान किया जा सकता है। पदावली में शृङ्गार रस का आधिक्य इस बात का प्रमाण है कि राजा शिवसिंह रसिक और शृङ्गार प्रिय व्यक्ति थे। कहा जाता है कि अपने अभिन्न मित्र की मृत्यु के पश्चात् कवि ने शृङ्गार रस की कविता करना छोड़ दिया। इसी कारण संभवतः कवि के अन्तिम ग्रन्थों में शृंङ्गार का अधिक पुट नहीं

राजा शिवसिंह की मृत्यु के ३२ वर्ष पश्चात कवि ने अपने प्रिय मित्र को स्वप्न में देखा जिसके विषय में उन्होंने स्वयं इस प्रकार लिखा है—

सपन देखल हम सिवसिंह भूप
बतिस बरस पर सामर रूप।
बहुत देखल गुरुजन प्राचीन
आब भेलहुँ हम आयु विहीन॥

ऐसा विश्वास किया जाता है कि स्वप्न में अपने किसी प्रिय का देखना

अशुभ होता है। इसी के आधार पर कई आलोचकों ने विद्यापति की मृत्यु की तिथि राजा शिवसिंह की मृत्यु के ३२ वर्ष पश्चात मानने की चेष्टा भी की है। किन्तु इस प्रकार के विश्वासों को ही मानकर यदि चले तो सत्य को खोजना असम्भव हो जायगा।

विद्यापति की रचनाओं में कई स्थानों पर उनके परिवार के लोगों के नाम भी मिलते हैं। उनके अन्तिम समय के पद में उन्होंने अपनी पुत्री दुल्लहि को सम्बोधित किया है—

दुल्लहिं तोहर कतय छथि माय
कहुन ओ आवथु एखन नहाय
वृथा बुझथु संसार विलास
पल पल नाना तरहक त्रास

कवि अपनी पुत्री को सांत्वना देते हुये आगे कहता है—

माय बाप जो सद्गति पाव
संतति काँ अनुपम सुख आव
विद्यापतिक आयु अवसान
कातिक धवल त्रयोदसि जान

जीवन के अन्तिम वर्षों में कवि को संसार के प्रति कुछ अरुचि हो गई थी। संसार में रहकर उसके प्रत्येक आनन्द को भोग्य समझने वाला कवि एक दिन अपने दार्शनिक विचारों को प्रस्तुत करने में लग गया—

'जतन जतेक धन पाप बटोरल, मिलि मिलि परिजन खाय।
मरनक बेरि हरि कोई न पूछय करम सङ्ग चलि जाय॥'

इसी प्रकार की एक और पंक्ति है जिससे कवि की अन्तर्दशा का पता स्पष्ट हो जाता है।

'तोहें सेवइत जन्म बहल तै ओ न अपन भेला।'

जिस समय विद्यापति को मृत्यु के समीप देखकर उनके परिवार के लोग रुदन करने लगे उस समय कवि ने उन्हें जो सांत्वना दी वह नाटकीय वातावरण को प्रस्तुत करने में समर्थ है—

'समटु समटु निज लोचन नीर
ककरहुँ काल न राखथि थीर
विद्यापति सुगति क प्रस्ताव
त्याग के करुणा--रसक स्वभाव

विद्यापति मृत्यु के विषय में अनेकों किंवदन्तियाँ भी प्रचलित हैं। कहा जाता है कि मृत्यु से पूर्व विद्यापति ने भागीरथी के तट पर चलने को कहा। जिस समय वह गंगा से कुछ दूर रह गये तो उन्होंने अपनी पालकी रास्ते में रखवा दी और गङ्गा को वहीं पर बुलाया। गंगा वहीं आकर प्रस्तुत हुई और इस प्रकार महाकवि ने अपने जीवन को भागीरथी के दर्शनों की इच्छा पूर्ति के पश्चात् समाप्त कर दिया।

युग और आश्रयदाता—

विद्यापति के युग में उत्तर भारत का अधिकाँश भाग मुसलमानों के हाथ में था। किन्तु मिथिला पर मुस्लिम शक्ति पूर्ण रूप से विजयी नहीं हो सकी थी। देश में एक सी परिस्थित नहीं थी। पारस्परिक संघर्ष सामंतीय युद्धों में हुआ करता था जिनसे जनता को कोई लाभ नहीं होता था। पंचायती ग्राम व्यवस्था में उच्चवर्ण बौद्धों और शाक्तों से टक्कर लेते हुए अपनी परिस्थितियों को स्मृत्यानुसार दृढ़तर करने की चेष्टा कर रहे थे। सहजयान धीरे धीरे अपना विकास करके भक्तिवाद के रूप में परिवर्तित हो रहा था।

काव्य अपने सामंतीय स्वरूप में राजा वर्ग और धनिक वर्ग का गुण गान करता था। ऐसी रचनाओं के कवि राज्याश्रय में रहा करते थे। अन्य प्रकार का काव्य जनता में अपने ही स्वरूप में प्रचलित था। भक्तिवाद के ही माध्यम से काव्य ने वर्ण भेद की दीवारों को काटने का प्रयत्न किया और सुलभ मानवीयता की आश्रयभूमि को स्वीकार करके जन-साधारण तक पहुँचने का प्रयत्न किया और इसमें ईश्वर के आलंबन ने काफी मार्ग सुगम किया था।

महाकवि विद्यापति जीवन पर्यन्त राजाओं के दरबारों में रहे। उन्होंने अपनी सम्पूर्ण रचनायें राज दरबार में रहकर ही समाप्त की। जिस समय

उन्होंने अपनी शिक्षा समाप्त की उस समय वह एक गम्भीर दार्शनिक थे, किन्तु राज्याश्रय के कारण वह धर्म के उस रूप की व्याख्या न कर सके और शृङ्गार और भक्ति का समन्वय करके उसे लोक व्यवहार की वस्तु बनाने में लग गये। इनके पिता राजा गणेश्वर के दरबारी कवि थे। विद्यापति अपने बचपन में अपने पिता के साथ राजा गणेश्वर के दरबार में जाया करते थे। गणेश्वर की मृत्यु के पश्चात् राजा कीर्तिसिंह राजा हुये। महाकवि ने सर्वप्रथम इन्हीं के सन्मुख अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया। उस समय वह 'खेलन कवि' थे। किन्तु फिर भी वे अपनी अद्भुत कल्पना और असाधारण कविताशक्ति से राजा को हीनहीं वरन् सम्पूर्ण राज दरबार को आश्चर्यान्वित करने लगे 'कीर्तिलता' में कवि की प्रतिभा का सर्व प्रथम प्रयास था। 'कीर्तिलता' की रचना भी इसी काल में हुई। कीर्तिसिंह निःसंतान ही अपनी जीवन यात्रा को समाप्त कर गये। उनकी मृत्यु के पश्चात् भवसिंह राजा हुये। किन्तु यह पूर्ण विश्वास के साथ नहीं कहा जा सकता कि विद्यापति उनके दरबार में भी रहे थे। भवसिंह का राज्यकाल बहुत ही थोड़ा था। विद्यापति की पुस्तक 'विभागसार' और 'पुरष परीक्षा' से इतना अवश्य प्रतीत होता है कि यह राजा अवश्य थे। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि इन्होंने कितने समय तक राज्य किया।

भवसिंह के पुत्र देवसिंह के राज्याश्रय में विद्यापति के रहने की बात प्रामाणिक है। महाकवि की "भूपरिक्रमा" नामक पुस्तक की रचना इन्हीं के राज्य काल में हुई। अंतर्साक्ष्य के आधारों पर यह भी कहा जा सकता है कि देवीसिंह के समय में महाकवि को पर्याप्त ख्याति मिल चुकी थी। इसी समय में श्रीदत्त नामक एक विद्वान ने 'एकाग्निदान पद्धति' नामक पुस्तक की रचना की थी। इससे यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि देवसिंह के काल में विद्वानों का राज दरबार में अच्छा आदर था।

राजा देवसिंह ने अपने जीवन में हीं शिवसिंह को शासनभार दे दिया था। राज्य के सम्पूर्ण कार्यों को युवराज शिवसिंह ही चलाते थे। एशियाटिक सोसाइटी में विद्यापति की आज्ञा से लिखा ग्रन्थ 'काव्य-प्रकाश विवेक' मिलता है जिससे ज्ञात होता है कि शिवसिंह देवसिंह के समय में ही महाराजाधिराज कहलाते थे। राजा शिवसिंह जैसे काव्य मर्मज्ञ और लखियादेइ जैसी सुन्दर

और रसवती रानी ने महाकवि की कविता को जीवन के निकट लाकर खड़ाकर दिया। सुना जाता है कि रानी विद्यापति के पदों को अन्तःपुर में दासियों से संगीत के रूप में सुना करती थी। राजा शिवसिंह विद्यापति को मित्रवत मानते थे। इसके समय में महाकवि को जो आदर मिला वह कभी नहीं मिला। उनको राज्य सम्बन्धी बातों में भी राजा को सहयोग देना पड़ता था। महाकवि विद्यापति ने राजा की वीरता के ऊहात्मक वर्णन और झूंठी प्रशंसा नहीं की वरन् उन्होंने धर्म, वीरता, मनोरंजन सभी प्रकार की कविता करके अपनी कविता के सामाजिक पक्ष को भी सुदृढ़ एवं सरस रखा।

राजा शिवसिंह के लिये पदावली में अनेकों उपाधियाँ मिलती हैं जिनके आधार पर हम कवि की उनके प्रति जो श्रद्धा थी उसका अनुमान कर सकते हैं। विद्यापति ने अपनी कविता में कई स्थानों पर रूपनारायण नाम का व्यवहार किया। परन्तु यह किसी राजा का नाम निश्चत रूप से नहीं कहा जा सकता क्योंकि शिवसिंह के अतिरिक्त अन्य राजा का नाम भी रूप-नारायण था।

विद्यापति की रचनायें—

महाकवि विद्यापति की प्रथम रचना 'कीर्तिलता' थी। अन्तर्साक्ष्य के आधारों पर यह अनुमान किया जाता है कि इस ग्रंथ की रचना विद्यापति ने लगभग १८--२० वर्ष की आयु में की होगी। नगेन्द्रनाथ गुप्त के कथनानुसार विद्यापति का जीवन काल १३७५ ई० से १४४८ ई० तक रहा। इस प्रकार विद्यापति को अपने जीवन में ५३ वर्ष रचना करने को मिले। इस काल में उन्होंने लगभग १४ ग्रन्थ लिखे जो आज भी प्राप्त हैं। उनमें से १२ पुस्तक तो संस्कृत में लिखीं और २ अवहट्ट भाषा में, (जो उस समय बोलचाल की भाषा थी) तथा १ मैथिली में।

संस्कृत की पुस्तकें—भू परिक्रमा, पुरुष परीक्षा, लिखनावली, शैव सर्वस्वसार, शैव सर्वस्वसार-प्रमाणभूत, पुराण संग्रह, गंगा वाक्यावली, विभाग-सार, दान-वाक्यावली, दुर्गा-भक्तितरंगिणी, गयापत्तलक और वर्षकृत्य हैं।

अवहट्ट की पुस्तकें—१--कीर्तिलता और २--कीर्तिपताका हैं।

मैथिली की रचना—एकमात्र पदावली है।

सँस्कृत रचनाओं में वर्णित विषय

१—भू परिक्रमा—बलराम के शापग्रस्त होने के पश्चात प्रायश्चित के लिये तीर्थों में जाने की कथा है। इस कथा को बड़े ही सुन्दर ढङ्ग से वर्णित किया गया है। इसकी एक प्रति कलकत्ते के संस्कृत कालेज में सुरक्षित है। इस पुस्तक की रचना राजा देवसिंह के कहने पर हुई थी।

२—पुरुष परीक्षा—इसकी रचना राजा शिवसिंह ने करवाई थी। इसमें महमूद गज़नवी के समय से लेकर विद्यापति के समय तक की अनेकों घटनाओं का उल्लेख है। इस पुस्तक में पुरुष के लक्षणों का उल्लेख भी हुआ है। यह पुस्तक १८१५ ई० में सर्व प्रथम बँगला अनुवाद से छपी। लार्ड विशप टर्नर की आज्ञा से सन् १८३० में राजा काली कृष्णबहादुर ने इस पुस्तक का अंगरेजी भाषा में अनुवाद किया। इस पुस्तक के कई अनुवाद हुये हैं।

३—लिखनावली—यह पुस्तक रजाबनौली के राजा पुरादित्य के लिये लिखी गई थी। इस पुस्तक में पत्र लिखने की विधि और तमस्सुक आदि के नमूने पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त इस पुस्तक का ऐतिहासिक मूल्य भी है क्योंकि इसमें उस काल के राजाओं और अन्य उच्च वर्गीय लोगों के नाम हैं। यह पुस्तक तालपत्र पर लिखी स्वर्गीय कवि पं० चन्दा झा के घर पर रखी है।

४—यह पुस्तक शिव की आराधना को प्रमाण सहित बतलाती है। राजा पदमसिंह की रानी विश्वास देवी की आज्ञा से कवि ने इसकी रचना की थी। यह पुस्तक भी तालपत्र पर ही लिखी गई है और आजकल दरभंगा राज्य-पुस्तकालय में रखी हुई है।

५—गंगा वाक्यावली—इसकी रचना भी रानी विश्वासदेवी की आज्ञा से ही हुई थी। इसमें हरिद्वार से गंगा सागर तक के सम्पूर्ण तीर्थों का महात्म्य लिखा हुआ है।

६—विभागसार—इस पुस्तक की रचना राजा नरसिंहदेव की आज्ञा से हुई। इस पुस्तक में सम्पति के विभाजन और अधिकारों की चर्चा है।

यह पुस्तक अभी अप्रकाशित है किंतु इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ कई लोगों के पास है।

७—दानवाक्यावली—इस पुस्तक में दान की व्याख्या की गई है और उनके करने की विधि पर भी प्रकाश डाला है। इस पुस्तक की अनेकों प्रतियाँ प्रतियाँ उपलब्ध हैं। यह पुस्तक काशी में बहुत समय पूर्व प्रकाशित भी हो चुकी है।

(८) गयापत्तलक—इस पुस्तक में गया में श्राद्ध करने की विधि है। मङ्गला चरण इस पुस्तक में नहीं। अन्त में महामहोपाध्याय विद्यापति का नाम है।

(९) दुर्गाभक्ति तरंगिणी—इसमें दुर्गापूजा की विधि लिखी हुई है। १९०२ में इस ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ किन्तु इस समय यह प्राप्य नहीं।

(१०) वर्षकृत्य—यह ९६ पृष्ठ की पुस्तिका है। इसमें वर्ष भर के सम्पूर्ण पर्वों का विधान है। सम्पूर्ण पुस्तक में प्रमाण दे देकर पर्वों पर प्रकाश डाला है। यह पुस्तक बल्लीपुर (दरभंगा) निवासी बाबू दामोदर नारायण चौधरी के घर पर है।

(११) शैव सर्वस्वसार—प्रमाण भूत नामक एक ग्रन्थ भी मिलता है। इसकी हस्तलिखित प्रति दरभङ्गा राज्यपुस्तकालय में मिलती है।

अवहट्ट रचनाओं में वर्णित विषय—

(१२) कीर्तिलता—यह पुस्तक अपना एक ऐतिहासिक महत्व रखती है। राजा कीर्तिसिंह के युद्ध विजय, राज्याभिषेक आदि अन्य घटनाओं का उल्लेख इस पुस्तक में मिलता है। इस पुस्तक का बंगला और हिन्दी दोनों भाषाओं में अनुवाद हो चुका है।

(१३) कीर्तिपताका—इसका रचना काल भी कीर्तिसिंह के शासन में ही हुआ। इसकी प्रति नैपाल राज-पुस्तकालय में है।

मैथिली की रचना पदावली

१४—पदावली—मैथिली में लिखी विद्यापति की अमूल्य रचना है। इसी रचना के कारण कवि को इतनी ख्याति मिली। यह श्रृङ्गार रस से प्लावित है। अन्य रस जैसे शान्त, भक्ति आदि भी इसमें हैं। इस पुस्तक को कई बार प्रकाशित किया जा चुका है।

उपर्युक्त १४ पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य पुस्तकें भी विद्यापति की मिलती हैं। किंतु उपर्युक्त प्रमाणों की कमी के कारण अभी उन पुस्तकों के विषय में ठीक प्रकार से नहीं कहा जा सकता। पं० शिवनंदन ठाकुर (महाकवि विद्यापति के लेखक) को कलकत्ता संस्कृत कॉलेज में 'पाण्डव विजय' नाम की एक पुस्तक मिली। उस पुस्तक में जो तालिका है उसमें ग्रन्थकर्त्ता का नाम विद्यापति दिया गया है। किंतु उस पुस्तक का प्रारंभिक और अंतिम भाग उपलब्ध न होने के काण उसके विषय में सन्देह है। इसी प्रकार की एक और पुस्तक जिसका नाम 'मणि मंजरी' है दरभंगा में मिली है। उस पुस्तक में भी महामहोपाध्याय विद्यापति नाम पुस्तक के बिल्कुल अन्त में दिया है किंतु उचित प्रमाण न मिलने के कारण वह पुस्तक भी संदिग्ध है।

विद्यापति का निवास प्रदेश

महाकवि विद्यापति, जिन्होंने आज हिंदी काव्य के इतिहास में अपना एक प्रमुख स्थान बना लिया है आज से लगभग १०० वर्ष पहले हिंदी भाषा-भाषियों के लिए एक अपरचित काव्य प्रणेता थे। हिन्दी जगत ही नहीं वरन् उनके अपने घर मैथिल प्रदेश में भी उनका कोई विशेष स्थान नहीं था। उनकी इस ख्याति का श्रेय वैष्णव मतानुयायी श्री चैतन्य महाप्रभु अथवा अन्य वैष्णव भक्तों को ही है। उन्होंने ही इनके पदों को कीर्त्तन में अपनाकर जन-जीवन को एक प्राणदायिनी शक्ति प्रदान की। चैतन्य ने इस महाकवि के भावपूर्ण गीतों को अपना कर कृष्ण के गुणगानों के रूप में सम्पूर्ण उत्तर भारत में व्याप्त कर दिया। चैतन्य देव के भावपूर्ण हृदय को सिक्त करने में विद्यापति के पदों ने एक अपूर्व कार्य किया। जिस समय चैतन्यदेव इनके पदों को कीर्त्तन के अवसर पर गाते थे उस समय आनंदातिरेक में विभोर होकर सम्पूर्ण जन-समुदाय झूमने लगता था। चैतन्य के मत में दीक्षित अन्य भक्तों ने भी विद्यापति के पदों को अपनाया और कृष्ण की भक्ति में एक रसमय अध्याय खोल दिया। कुछ समय के उपरान्त चण्डीदास भी बंग भाषा में कृष्ण के गीतों को गागाकर लोगों के हृदय में भक्ति की धारा प्रवाहित करने लगे। इस प्रकार विद्यापति और चण्डीदास दोनों कवियों का नाम बंग साहित्य के अन्तर्गत आने लगा।

विद्यापति की कविता की मनोहारिता और रसमयता के कारण बंगालियों ने उनको जान बूझकर बंगला भाषा का कवि घोषित कर दिया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि विद्यापति की पदावली किसी भी साहित्य के लिये गौरव का विषय बन सकती है। बंगालियों ने किसी अन्य उद्देश्य से विद्यापति को अपनी भाषा का कवि माना हो ऐसी बात नहीं, इसका मूल कारण यही है कि उनकी कविता से मुग्ध होने के पश्चात् वे उनको मोहवश भी नहीं छोड़ना चाहते थे। उस समय विद्यापति एक उस बालक के समान थे जो कि किसी निःसन्तान दम्पत्ति को किसी स्थान पर पड़ा मिले। जिस प्रकार उस दम्पति को उसके मिलने से आनन्द होता है और वह उस बालक को पाल कर अपने अभाव की पूर्ति करता है उसी प्रकार बंगालियों ने भी इस महान् कवि को अपना कर अपने साहित्य के अभाव को पूरा किया। किंतु जब वह अनाथ बालक समर्थ हो गया तो उसके वास्तविक माता ने उसको पहिचाना और वह बालक भी अपने घर को आने में अधिक प्रसन्न हुआ। विद्यापति के विषय में जब हिन्दी वालों ने घोषित किया कि विद्यापति उनकी भाषा मैथिली के कवि हैं तो बंगाल के विद्वानों में एक क्षोभ सा उत्पन्न हो गया और उन्होंने अनेकों प्रमाण देकर उनको अपनी भाषा का कवि प्रमाणित करना चाहा। उन्होंने कहा कि यदि विद्यापति मैथिली का कवि होता तो उसका कुछ न कुछ नाम मैथिली भाषा के लोगों में लिया जाता। किन्तु विद्यापति की कविताओं का जितना प्रचार बंगाल में है उतना हिन्दी भाषा के प्रान्तों में नहीं।

विद्यापति के मैथिल होने के प्रमाण—

१—विद्यापति ने जिस काल में पदावली की रचना की उस समय उनका यह कदम अपने दृष्टिकोण से प्रगतिशील था। उनसे पूर्व विद्वान लोग संस्कृत और प्राकृत को ही कविता के लिये उपयुक्त भाषा समझते थे। मैथिली को जन-भाषा होने के कारण साहित्यिक रूप नहीं प्राप्त था। किंतु विद्यापति एक महाकवि थे और जानते थे कि मेरी कविता की उपयोगिता इसी में है कि वह जन-भाषा में लिखी जाये जिससे जन-समाज में उसका प्रचार हो इसीलिये उन्होंने स्वयं कहा है—

देसिल बयना सब जग मिट्ठा

मैथिली में पदावली की रचना होने से मैथिल विद्वानों से विद्यापति को उसी प्रकार अनादर और घृणा की दृष्टि से देखा जिस प्रकार रामायण लिखने पर गोस्वामी तुलसीदास को पण्डित वर्ग की कृपा से वंचित होना पड़ा। लेकिन तुलसी और विद्यापति में एक अन्तर यह था कि तुलसी एक धार्मिक नेता के रूप में आये थे और उन्होंने निराश हिंदू जनता को एक साहस और सम्बल दिया था इस कारण पण्डित वर्ग उनकी ख्याति को अधिक समय तक नहीं रोक सका। विद्यापति के काव्य का सामाजिक पक्ष इतना बड़ा नहीं था इसलिये उनको पण्डित वर्ग अधिक समय तक दाब सका।

२---सन् १८५७ ई० के जून मास के 'बंगदर्शन' स्वर्गीय राजकृष्ण मुखोपाध्याय ने एक लेख लिखा जिसमें आपने स्पष्ट कर दिया कि विद्यापति मूलतः मैथिली के ही कवि बंगला के नहीं।

३---जोनवीन्स ने Indian Antiquary vol. 2 के ३७ पृष्ठ पर यह प्रमाणित किया कि पदावली की भाषा बंगला नहीं है।

४—ग्रिअर्सन ने An introduction to the Maithili language of North Bihar नामक पुस्तक लिखी जिसको एशियाटिक सोसाइटी ने प्रकाशित किया। बाबू नगेन्द्रनाथ गुप्त, महामहोपाध्याय हरिप्रसाद शास्त्री आदि अन्य विद्वानों ने भी इसी मत की पुष्टि की।

५—भाषा की परीक्षा करने से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि विद्यापति की भाषा मैथिली है। विद्यापति की भाषा में जो लिंग की विभिन्नता है वह बंगला में नहीं। मैथिली में कृष्ण गया और राधा गई के लिये कृष्णगेलाह और राधा गेलोह दोनों क्रियाओं के विभिन्न रूप होंगे परन्तु बंगला में ऐसा नहीं।

६—१३२६ ईसवी में राजा हरिसिंहदेव की आज्ञानुसार मिथिला पंजी की रचना हुई। उसमें विद्यापति की वंशावली पाई जाती है।

७—कवि ने अपनी रचनाओं में मिथिला के कितने ही राजाओं के नाम दिये हैं—जैसे पदावली में राजा शिवसिंह और रानी लखिमादेवी का नाम अधिकतर आया है। कवि की अन्य रचनाओं में 'कीर्तिलता' में भोगेश्वर, हरि-

सिंह, वीरसिंह और कीर्तिसिंह आदि राजाओं के नाम आये हैं। 'विभावसार' नामक पुस्तक में भवसिंह, हरिसिंह, दर्पनारायण आदि की चर्चा तथा 'शैव-सर्वस्वसार में भवसिंह से लेकर विश्वासदेवी तक राजाओं और रानियों के नाम आये हैं। इसी प्रकार 'पुरुष परीक्षा' में भवसिंह, देवसिंह और शिवसिंह आदि राजाओं के नाम उल्लेख हैं।

८—इसके अतिरिक्त बहुत सी पुस्तकें भी मिथिला के गाँवों में ही पाई गई हैं। बंगाल के अन्दर विद्यापति की कोई पुस्तक नहीं मिली। शैव-सर्वस्व-सार, गंगावाक्यावली दान वाक्यावली, गयापत्तलक, विभागसार आदि पुस्तकें दरभंगा राजपुस्तकालय में तथा अन्य मिथिला के गावों में ही पाई गई हैं।

९—विद्यापति ने जिन आश्रयदाताओं के नामों का उल्लेख किया है वे सब मिथिला के राजा हैं और साथ ही इतिहास भी साक्षी है। पुरुष परीक्षा में नदी वाग्वती और सकरी स्थान की चर्चा है। ये दोनों स्थाम भी मिथिला में ही मिलते हैं।

१०—महाकवि विद्यापति के वंशज नारायण ठाकुर के हाथों से लिखी 'पुरुष परीक्षा' की एक प्रति कलकत्ता विश्वविद्यालय के अध्यापक पं० बबुआजी मिश्र के घर में हैं। उस पुस्तक के अन्त में यह श्लोक है। 'वेद पञ्चोशते गौड माघेच प्रथमे तिथौ। नारायणेन लिखिता पुस्ती विद्यापतेः कवेः'

११—'कीर्तिलता' की एक प्रति मिथिला के ख्याति प्राप्त विद्वान एवं कवि चन्द्राझा के यहाँ पाई गई है।

१२—विद्यापति द्वारा लिखित "श्री मद्भागवत" की एक प्रति स्वर्गीय लोकनाथ झा के घर में मिली है। उस पुस्तक को दरभंगा राज-पुस्तकालय के लिये खरीद लिया गया है।

१३—विद्यापति के विषय में अनेकों किम्बदंतियाँ जो प्रचलित हैं वह सब भी मिथिला प्रांत के अन्दर ही हैं। उगना के रूप में शिव का विद्यापति के यहाँ नौकर होना, अथवा महाकवि की मृत्यु के समय गंगा का उनके समीप आ जाना मिथिला के ग्रामों में आज भी प्रचलित हैं।

१४—राजा शिवसिंह द्वारा दिया हुआ ताम्रपत्र आज भी दरभंगा के बाबू रतिकान्त चौधरी के पास वर्त्तमान है।

१५—विद्यापति के शिव सम्बन्धी पद आज भी मिथिला के शिव मन्दिरों में गाये जाते हैं। शृंगारी पदों में से भी अनेकों पद लोकगीत के रूप में विवाह आदि उत्सवों पर स्त्रियों के द्वारा गाये जाते हैं।

१६—भाषा-विज्ञान की कसौटी पर परखने पर भी पदावली की भाषा मैथिली ही सिद्ध होती है क्योंकि उसमें बंगला की तरह एक ही लिंग का प्रयोग नहीं वरन् स्त्री लिंग और पुलिंग दोनों के लिये विभिन्न क्रियाओं का ही प्रयोग है।

ऊपर दिये गये प्रमाणों से यह निर्विवाद सिद्ध है कि विद्यापति मैथिल कवि ही हैं। मिथिला में उन दिनों संस्कृत का अधिक प्रचार होने के कारण विद्वानों ने विद्यापति की जन-भाषा में लिखी इस पुस्तक का आदर नहीं किया और इस प्रकार यह अमूल्य रत्न बहुत दिनोंतक अपनी जननी जन्मभूमि के कोष से अलग रहा। अब लगभग सभी विद्वानों ने इस बात को मान लिया है कि विद्यापति मैथिली के ही कवि हैं बंगला के नहीं।

मुक्तक काव्य की परम्परा
और
विद्यापति

मुक्तक काव्य की परिभाषा और विकास :—

विद्यापति में जो प्रसिद्धि प्राप्त की वह अपनी पदावली की रचना से ही की। मुक्तक और गीत का साहित्य में बड़ा उच्च स्थान है। मुक्तक काव्य में प्रबन्ध काव्य की तरह कथा के द्वारा रसाभिव्यक्ति नहीं होती। उसमें प्रत्येक पद अपनी सत्ता स्वतन्त्र रखता है। एक पद एक ही भाव का सृजन करता है। प्रबन्ध काव्य और खण्डकाव्य से मुक्तक की रचना कठिन होती है क्योंकि उसमें भावों की अभिव्यक्ति, मानसिक वृत्तियों का संक्षिप्तता के साथ व्यक्त करना तथा स्वाभाविक एवं सहज उद्‌गारों का सृजन और कोमलकान्त पदावली सभी का ध्यान रखना पड़ता है। एक गीतकार की सफलता तभी है जब कि वह उपर्युक्त तत्वों का निर्वाह ठीक तरह से कर पाता है। महाकवि विद्यापति की पदावली के गीतों में यह सम्पूर्ण गुण विद्यमान हैं जिनको आगे हम उदाहरण देकर प्रस्तुत करेंगे। अब प्रश्न यह उठता है कि गीतकाव्य या मुक्तक क्या है ? और उसका मूलस्रोत क्या है ? हिन्दी साहित्य का प्रथम गीतकार कौन है ?

अभिनव गुप्ताचार्य ने मुक्तक की व्याख्या इस प्रकार की है---

"मुक्तम् अन्येन् नालिङ्गितम् मुक्तकम्। तस्य संज्ञायाँकन्। पूर्वापर निरपेक्षेणापि हियेन रसचर्वण क्रियते तदेव मुक्तकम्"।

जिसका पूर्वापर किसी भी पद या कविता से कोई सम्बन्ध न हो किन्तु फिर भी उससे रसानुभूति हो उसे मुक्तक काव्य कहते हैं।

कुछ विद्वानों ने मुक्तक की परिभाषा इस प्रकार दी है, "मुक्तक काव्य यह

है जिसमें हमारी वैयक्तिक भावना और अनुभूति भावावेश में संगीत युक्त होकर कोमल कान्त पदावली के माध्यम से व्यक्त होती है।" अग्नि पुराण में इस प्रकार की परिभाषा ही है, "मुक्तकं श्लोक एवैकश्चत्मत्कार : क्षमः सताम ।"

अर्थात् मुक्तक रचना उसे कहते हैं जो अपना अर्थ व्यक्त करने में स्वतः समर्थ हो। हीगल का कथन है कि जब विश्व हृदय में प्रवेश करके कवि अपनी आत्मानुभूति को प्रकट करता है। उस प्रकट करने में वह अपनी चित्त-वृत्तियों के अनुसार एक कविता का सृजन करके उसमें काव्योचित मधुरता और कोमलता का समावेश करता है उसे गीति कहते हैं।

अर्नेष्ट राइस के अनुसार एक सफल मुक्तक वही है जिसमें भाव या भावात्मक विचार का भाषा में स्वाभाविक स्पष्टीकरण हो।

महादेवी वर्मा के शब्दों में सच्चा और सफल गीत वह है "जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके। अनुभूति को तीव्र बनाये रखने तथा उसको दूसरे तक पहुँचाने के लिये भाव की अभिव्यक्ति पर थोड़ा संयम भी आवश्यक हो जाता है। जल बँधी हुई नाली में ही गति के साथ बह सकता है। यह नियंत्रण और संयम बाहर से नहीं वरन् स्वयं ही प्राप्त हो जाता है।"

मुक्तक या प्रगीत काव्य में व्यक्तिगत अनुभूति की प्रधानता रहती है अतः गीतिकाव्य की रचना उसी समय होती है जिस समय भाव घनीभूत होकर आवेश के साथ काव्योचित भाषा में अभिव्यक्त किये जाते हैं। भारतीय साहित्य में गीतिकाव्य या मुक्तक का कोई अलग विभाजन नहीं। क्योंकि काव्य गेय ही होता है। इसलिये हिन्दी में उनको पद नाम से पुकारा जाता है। अँगरेजी में गीत को 'लिरिक' नाम दिया गया है अर्थात् वह कविता जो लायर पर गाई जा सके। किन्तु कालान्तर में गीत की यह विशेषता लुप्त हो गई और उसमें शब्दों का माधुर्य और लय को ही गीत मान लिया गया। कुछ समय उपरान्त अन्तःकरण की अभिव्यक्ति को ही गीत और मुक्तक की संज्ञा दे दी गई। इस प्रकार व्यक्तिगत भावना को ही मुख्य रूप से गीति काव्य की विशेषताओं में प्रधान माना गया।

ऊपर जितनी भी परिभाषायें गीति काव्य के लिये दी गई उनमें कोई

विशेष अन्तर नहीं किसी में व्यक्तिगत भावना को मुख्य माना तो किसी में कोमल-कान्त-पदावली और मधुरता के साथ २ लय द्वारा गाये जाने वाली कविता को ही गीत की संज्ञा दी। कुछ विद्वानों ने मानव हृदय की कृतियों के भावावेश मय चित्रण को ही गीत माना। इसलिये हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि गीत काव्य में निम्नलिखित विशेषाताओं का होना आवश्यक है—

१---स्वतंत्र पद रचना होती है।

२---व्यक्तिगत भावों की अभिव्यक्ति जिसमें मानव हृदय की सम्पूर्ण वृत्तियों का चित्रण हो सकता है।

३—संगीतात्मकता और उसी के उपयुक्त कोमल-कांत-पदावली और सरल शब्दों का प्रयोग।

४---संक्षिप्तता और भावों का एकीकरण।

५---अपरचित और मनगढंत शब्दों का प्रयोग अथवा दार्शनिक गुत्थियों को रखना गीतिकाव्य के लिये उपयुक्त नहीं।

६---भाषा और भावों की स्पष्टता गीति—काव्य के लिये एक आवश्यक गुण है।

गीतों के भेद --इन गीतों को कई रूपों में देखा जा सकता है। कुछ गीतों में प्रेम की सुन्दर और सफल अभिव्यक्ति होती है उन्हें प्रेम गीत कहा जाता है। इसमें प्रेमी और प्रेमिका वियोग और संयोग दोनों अवस्थाओं के उद्गारों को प्रकट करते हैं। प्रेम गीत साहित्य की सबसे प्राचीन निधि हैं। मुक्तक काव्य की रचना अधिकतर प्रेम के उद्गारों में ही की गई।

दूसरे वर्ग में व्यंग्य गीतों का स्थान है। हिन्दी साहित्य में इन गीतों का प्रचलन बहुत नहीं। कबीर आदि सन्त और अन्य उपदेशकों ने भी इन गीतों को अपना कर अपने मत की पुष्टि में सहायता ली।

तीसरे प्रकार के गीतों में धर्म सम्बन्धी गीत हैं। तुलसी तथा अन्य भक्त कवियों ने इनको अपनाकर अपने इष्टदेव की महत्ता को प्रकट किया है।

शोकगीतों की प्रथा भी अब हिंदी में प्रचलित हो गई है। अनेकों कवियों ने अपनी हृदयगत वेदना को गीत के रूप में निस्सरित किया है।

युद्धगीत भी हिन्दी साहित्य की प्राचीनतम निधि है। वीरगाथा काल के

अनेकों कवियों ने वीर और योद्धाओं को उत्साहित करने के लिये अनेकों गीतों का सृजन किया।

गीतिकाव्य की परिभाषा देने के उपरान्त यह आवश्यक है कि हम उनकी परम्परा के मूलश्रोत को भी देखें और हिन्दी में प्रथम प्रयास करने वाला कौन है ?

मुक्तक काव्य की परम्परा—

गीतिकान्य की परम्परा बहुत प्राचीन है। मनुष्यों में अपनी व्यक्तिगत दुःख सुख की भावना को व्यक्त करने की प्रवृत्ति आदि काल से रही होगी। हमारे पूर्वजों ने तो गीत को इतना महत्व दिया कि एक वेद की रचना संगीत कला के लिये ही की। सामवेद संगीतात्मकता से श्रोत प्रोत ही है।

गीत शब्द का पूर्ण महत्व श्री मद्भगवतगीता में आकर प्रस्फुटित हुआ। गीता की रचना भी गेय होने के लिये ही हुई। गीता का अर्थ भी यही है कि जो गाया जा सके।

वैदिक कालीन साहित्य के उपरान्त बौद्धकालीन साहित्य में भी गीतों को प्रमुख स्थान मिला। बौद्धों की थेर गाथायें भी गीत हैं। उनमें वैराग्य के प्रति हृदय की भावुकता और उत्साह के दर्शन मिलते हैं।

गाथा शब्द से भी गीतों का ही अर्थ लिया जा सकता है। वैदिक साहित्य में दो प्रकार के गीतों जी चर्चा है--ऋक और गाथा। ऋक उन गीतों को कहा गया है जिनमें देवताओं और ईश्वर की प्रार्थना की जाती है किन्तु गाथाओं में मनुष्य और राजाओं का ही वर्णन होता है। जिस प्रकार अँग्रेजी में "वैलेड्स" में प्रसिद्ध राजा या बीर का वर्णन मिलता है उसी प्रकार गाथा मनुष्य के साहसिक कार्यों का वर्णन करने वाले गीत ही हैं। अपने समय में इनको वही महत्व था जो कि जन समाज में गीतों का मिलना चाहिये।

कालिदास की रचना मेघदूत खण्डकाव्य के अन्तर्गत ही है किन्तु फिर भी उसमें व्यक्तिगत अनुभूति की प्रधानता है। संगीतात्मकता भी उसमें पर्याप्त है। इसलिये कुछ विद्वानों का मत है कि मेघदूत खण्डकाव्य होते हुये हुए भी मुक्तकों के गुणों से विभूषित है।

प्राकृत और अपभ्रंश में भी गीतों की परम्परा अक्षुण्ण रही। अनेकों कवियों ने युद्ध के अवसर पर गीतों का ओजपूर्ण वर्णन किया। प्रेम के गीत भी अनेकों लिखे गये। किन्तु वीरता के गीतों की रचना भावना की न्यूनता के कारण साहित्य में अच्छा स्थान नहीं पा सकी। वीर-गीतकार कवि अपने आश्रयदाताओं का यश गाया करते थे। वीरों को युद्धोन्मुख करना ही उन गीतों का कार्य था। राजपूत काल में इन वीर गीतों का साहित्य में बड़ा प्रचलन रहा किन्तु भारतवर्ष की दासता के साथ २ यह वीर गीत भी सर्वदा के लिये लुप्त हो गये और अब इनका स्थान राष्ट्रीय गीतों ने लिया है।

संस्कृत में यदि वास्तविक गीति काव्य के लक्षणों को देखें तो हमको वे जयदेव के 'गीतगोविन्द' में मिलेंगे। जयदेव ने मन को मुग्ध करने वाली कोमल कान्त पदावली का व्यवहार करके गीतों में एक माधुर्य और सौंदर्य भर दिया। जयदेव एक सफल गीतिकार के रूप में अवतीर्ण हुये। उन्होंने अपनी आत्मा की इतनी सच्ची अभिव्यक्ति की कि सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में उसकी तुलना नहीं। जयदेव ने संयोग और वियोग की दोनों अवस्थाओं का चित्रण अपनी सूक्ष्म दृष्टि से ऐसा किया कि मन की सम्पूर्ण स्थितिओं को उनके काव्य में चित्रित हुआ पा सकते हैं। राधा औरकृष्ण के विलास और क्रीड़ाओं का ऐसा सुन्दर चित्रण किया कि बाद के कवियों को बरबस ही उनका अनुकरण करना पड़ा। जयदेव के 'गीत-गोविन्द' में कृष्ण का चित्रण एक ऐसे नायक के रूप में हुआ तो काम कला में पूर्ण रूप से चतुर है। राधा भी एक पूर्ण युवती है और वह भी अपने को कृष्ण के ऊपर न्यौछावर करती है। कवि ने राधा के अङ्ग २ का इतना सुन्दर चित्रण किया है जो कि अपनी समता नही रखता। जयदेव ने अपनी कविता को कोमल कान्त पदावली में लिखकर इतना मधुर और गेय बना दिया कि आज भी संस्कृत न समझने वाले भी उनके कुछ पदों को गाते हुये देखे जाते हैं। जयदेव के पदों में शृङ्गार रस को ही स्थान दिया गया है। कवि ने अपने भावों को बिना किसी सामाजिक और नैतिक रोक की परवाह करके व्यक्त किया है। राधा और कृष्ण ने प्रत्येक क्रिया-कलाप को सूक्ष्म दृष्टि से देखकर कवि ने स्वतन्त्रता पूर्वक अभिव्यंजित कर दिया है।

जयदेव की इस रचना को वैष्णव भक्तों ने अपने संप्रदाय के सिद्धान्तों पर

ही माना है। उनका कथन है कि जयदेव ने कृष्ण की लीलाओं को ही अपनी रचना में स्थान दिया है। बल्लभ सम्प्रदाय में लीलाओं को प्रमुख स्थान दिया गया है, किन्तु वे लीलायें कृष्ण के बाल रूप की भी होती हैं और उनके जीवन के अन्य रूपों का चित्रण भी होता है। किन्तु जयदेव ने अपने काव्य में कृष्ण को एक प्रेमी रूप ही में देखा। उन्होंने प्रारम्भ में ही कह दिया है कि यदि विलास कला के साथ हरि-स्मरण करना हो तो जयदेव की सरस्वती अर्थात् गीति-गोविन्द के द्वारा करना चाहिये। जयदेव के गीतों को वैष्णवों ने अपना लिया और उनको कीर्त्तन में प्रमुख स्थान दिया।

विद्यापति का स्थान—विद्यापति ने जयदेव के अनुकरण पर ही अपनी पदावली की रचना की। जयदेव के ही भाव और भाषा को अपने सन्मुख रख कर महाकवि विद्यापति ने अपनी लेखनी उठाई। विद्यापति ने जयदेव के मुक्तक काव्य की सरलता और माधुर्य को देखकर ही अपने काव्य में भी माधुर्य को भर दिया। कोमल कान्त पदावली को अपना कर विद्यापति ने अपने पदों से ऐसा रस प्रवाहित किया कि समस्त उत्तर भारत उस रस से निमज्जित हो गया। मुक्तक काव्य के सम्पूर्ण गुणों का अपने काव्य में समावेश करके वे गीत काव्य की परम्परा के प्रतिनिधि कवि बन गये। उन्होंने अपनी पदावली को रचना लोक भाषा में करके उसमें जयदेव से भी अधिक मधुरता और कोमलता भर दी। उन्होंने स्वयं कहा—

'देसिल वयना सब जगमिट्ठा'

माधुर्य और कोमलता विद्यापति के गीतों की आत्मा हैं। उन्होंने अनुप्रासों का प्रयोग भी इसलिये किया क्योंकि उनके प्रयोग से मधुरता की वृद्धि हो जाती है। विद्यापति ने अपने काव्य में कोमल कान्त पदावली का प्रयोग जयदेव के समान ही अपनाया। विद्यापति को अपनी भाषा पर गर्व भी था—

बालचन्द विज्जावइ भाषा, दुहु नहि लग्गहि दुज्जन हासा।
ओ परमेसर हरसिर सोहइ, ई णिच्चइ नाअर मन मोहइ॥

अर्थात् बालचन्द्र और विद्यापति की भाषा पर दुर्जनों को हँसी नहीं आ सकती क्योंकि चन्द्रमा शिवजी के मस्तक पर विराजमान है और विद्यापति की

भाषा नागरिकों के मन को मोहित करती है। विद्यापति की उपर्युक्त उक्ति से भी ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने अपने पथ-प्रदर्शक जयदेव के निम्नलिखित श्लोक के कारण ही न की हो—

साध्वी माध्वीक चिन्ता न भवति भवतः, शर्करे कर्कशासि।
द्राक्षे द्रक्ष्यन्ति के त्वाममृत मृतमसि, क्षार नीरं रसस्ते॥
माकन्द क्रन्द, कान्ताधर धरणि तलं गच्छ यच्छन्ति भाव।
यावच्छृङ्गार सार स्वतमिह जयदेवस्थ विष्वग्वचांसि॥

अर्थात् जब तक शृङ्गार रस के ओत प्रोत जयदेव के वचन विद्यमान हैं तब तक हे महुए की मदिरा तुझे कोई नहीं चाहेगा, शक्कर तुम कर्कश हो, अंगूर अब तुमको भी कौन देखेगा ? अमृत तुम भी अब मृतवत हो। दूध तुम्हारे अन्दर भी पानी है, पके आम तुम भी अब रोओ, स्त्रियों के अधर तुम भी पाताल चले जाओ।

जयदेव माधुर्य को अपनी कविता का सबसे बड़ा गुण समझते थे और सच भी है कि उसी माधुर्य के कारण ही उनका नाम आज तक संस्कृत के प्रमुख गीतकारों में लिया जाता है। विद्यापति ने भी माधुर्य को अपने गीतों का सबसे बड़ा गुण माना।

विद्यापति ने अधिकतर प्रेम गीत ही लिखे। उन्होंने अपने गीतों में शृङ्गार रस को स्थान दिया। शृङ्गाररस के दोनों पक्ष—संयोग और वियोग की सम्पूर्ण अवस्थाओं को लेकर ही विद्यापति ने अपनी कविता के मधुर श्रोत से हिन्दी साहित्य को आप्लावित कर दिया। एक सफल गीत में जिन २ विशेषताओं का होना आवश्यक होता है वह सब महाकवि विद्यापति के पदों में पाई जाती हैं।

मुक्तक रचना की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसका प्रत्येक पद एक दूसरे से स्वतन्त्र होना चाहिये। विद्यापति की पदावली के सम्पूर्ण पद एक दूसरे से पूर्वापर कोई सम्बन्ध नहीं रखते। इन पदों में केवल एक ही भाव को लेकर व्यक्त किया गया है। विद्यापति की पदावली का प्रत्येक पद एक चित्र है। किन्तु प्रत्येक चित्र में भिन्नता को प्रमुखता दी है। सब चित्र अलग २

दृश्यों को उपस्थित करते हैं। कहीं तो पद की एक एक पंक्ति में भी विभिन्न भावों का द्योतन कराया गया है।

प्रेम प्रसंग के दो पदों से पदावली के पदों में जो भाव-स्वातन्त्र्य है उसका प्रदर्शन करेंगे। दोनों ही पद एक दूसरे के साथ हैं किन्तु दोनों के भाव में कोई तारतम्य नहीं। दोनों पदों का अपना अपना स्वतंत्र स्थान है। यही स्वतंत्रता मुक्तक की सबसे बड़ी विशेषता है—

पथ-गति नयन मिलल राधा कान।
दुहु मनसिज पूरल संधान ॥
दुहु मुख हेरइत दुहु भेल भोर।
समय न बुझए अचतुर चोर ॥

इसी के नीचे का दूसरा पद यह है--

सजनी भल किए पेखल न भेल।
मेघ माल संय तड़ित लता जनि,
हिरदय सेल दई गेल ॥
आध आँचरि खसि, आध बदन हसि।
आधहि नयन तरंग ॥
आध उरज हेरि आध आँचरि भरि।
तब धरि दगधे अनंग ॥

ऊपर के दोनों पदों का एक दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं। प्रथम पद में राधा और कृष्ण के राज-पथ में मिलने का दृश्य उपस्थित किया है। किस प्रकार उनके नेत्रों का मेल हुआ और किस प्रकार उन दोनों के हृदय में काम का संचार हुआ, तत्पश्चात किस प्रकार वे प्रेम में विभोर हुये, इस सम्पूर्ण चित्र को प्रथम पद में चित्रित किया है।

किन्तु दूसरे पद में कृष्ण के हृदय में राधा के रूप और सौंदर्य को देखकर जो प्रभाव पड़ा है उसका वर्णन है। एक पद के भाव का दूसरे पद के भाव से कोई सम्बन्ध नहीं। यही मुक्तक काव्य के पदों की स्वतन्त्रता का रूप है। विद्यापति एक सफल मुक्तककार हैं उन्होंने अपने सम्पूर्ण पदों में यह भाव स्वातंत्र्य सर्वत्र रखा है। यद्यपि सम्पूर्ण पदावली की रचना शृङ्गार रस में ही की

गई है किन्तु फिर भी एक पद में दूसरे पद के भावों का सम्मिश्रण नहीं।

गीतिकाव्य का दूसरा गुण है कि उसमें व्यक्तिगत भावनाओं को ही प्रमुख स्थान दिया जाता है। विद्यापति की पदावली में इस विशेषता का भी निर्वाह पूर्णरूपेण किया गया है। सम्पूर्ण पदावली के भाव एक व्यक्ति के ही भाव है। राधा और कृष्ण दोनों ही अपने व्यक्तिगत प्रेम के विरह मिलन के झोंकों में झूलते हैं। जब मिलन के झूले पर वे झूलते हैं उस समय उनके हृदय में आनन्द के अनेकों श्रोत उमड़ कर प्रवाहित होने लगते हैं। इस आनन्दातिरेक में उनके भावों में सुख और हर्ष के अनेक रूपों का दर्शन होता है। किन्तु कभी वही राधा-कृष्ण की युगल जोड़ी विरह की यातना से दुखी होकर अपनी वेदना को नाना रूपों में व्यक्त करती है। राधा की वेदना उसकी अपनी वेदना है उसका संसार के लोगों से कोई भी सम्बन्ध नहीं। यदि उसका प्रियतम उससे अलग है तो उसके हृदय में नाना प्रकार की भाव-लहरी तरंगित होने लगती हैं और इस प्रकार राधा अपने व्यक्तिगत भावों को कभी अपनी सखी से तो कभी अपनी दासी पर प्रकट करती है।

विद्यापति की पदावली में इस प्रकार की व्यक्तिगत भावानाओं के ताने बाने को ही बुना गया है। कभी राधा आनन्द में है तो वह अपने अतीत और संयोग की अनेकों स्मृतियों और कल्पनाओं को हमारे सन्मुख रखती है। वियोगावस्था में विरहिणी के हृदय का तार तार झंकृत हो जाता है। अनेकों भावों का उसके हृदय में उदय होता है। कभी नायिका अपने प्रियतम की स्मृति में रोने लगती है तो कभी वह अपने प्रियतम की प्रतीक्षा में चकोर की तरह हो जाती है। महाकवि विद्यापति ने सुख और दुख के छोटे से छोटे भावों का चित्रण बड़ी मार्मिक और सुन्दर प्रणाली से किया है। आदि से लेकर अन्त तक अनेकों रंगों से अपने व्यक्तिगत दुःख सुख की भावनाओं को रंगा गया है। सम्पूर्ण पदावली इसी प्रकार के चित्रों का एक संग्रह मात्र है। प्रथम संयोग की अनेकों दशाओं का चित्रण कवि ने किया है और इसके पश्चात् वियोगावस्था की उन दशाओं का भी चित्रण किया है जो कि संसार के भावों की अमूल्य निधि हैं।

संयोगावस्था में राधा और कृष्ण के व्यक्तिगत भावों की अनेक रूपता के

दर्शन कवि की सफलता के परिचायक हैं पदावली का प्रथम पद ही एक प्रेमी की उस उत्सुकता कों व्यंजित करता है जो वह अपनी प्रेमिका की प्रतीक्षा के अवसर पर दिखाता है—

"नन्दक नन्दन कदम्बक तरुतर ।
धिरे धिरे मुरली बजाव ॥
समय संकेत निकेतन बइसल ।
बेरि बेरि बोल पठाव ॥
सामरि तोरा लागि, अनुखन विकल मुरारि ।
जमुना क तिरे उपवन उदवेगल, फिरि फिरि ततहि निहार ॥
गोरस बेचए अबइत जाइत, जनि जनि पुछ बनमारि ।"

कृष्ण के हृदय की अवस्था का कितना सुन्दर चित्रण है । कृष्ण राधा की प्रतीक्षा कर रहे हैं और वंशी के स्वरों को धीरे धीरे बजाकर राधा को बुलाने का उपक्रम करने में भी वह तल्लीन हैं । कृष्ण राधा के लिये प्रत्येक क्षण व्याकुल हैं वे यमुना के समीप के उस वन को, जिधर से राधा के आने की सम्भावना है बार बार देख रहे हैं ।

एक प्रेमी की भावना का कितना सच्चा चित्रण है । प्रत्येक प्रेमी को अपनी प्रेमिका के मिलने में जो उत्सुकता होती है उसका चित्रण उपस्थित कर दिया है । यद्यपि कृष्ण की उत्सुकता उनकी व्यक्तिगत उत्सुकता है किन्तु कवि ने उसको प्रत्येक प्रेमी की उत्सुकता बना दिया है ।

नायिका की वयः सन्धि की अवस्था है । उस समय उसकी दशा जो होती है उसको कवि ने बड़ी सुन्दरता के चित्रित किया है ।

"खने खन नयन कोन अनुसरई ।
खने खन वसन धूलितनु भरई ॥
खने खन दसन-छटा छुट हास ।
खने खन अधर आगे गहु बास ॥
चँउकि चलै खने खन चलु मन्द ।
मनमथ पाठ पहल अनुबन्ध ॥

हिरदय मुकुल हेरि हेरि थोर ।
खने आँचर दए खने होए भोर ॥"

प्रत्येक नवयुवती की यही दशा होती है। कवि ने किस सफलता के साथ नायिका की भावनाओं का चित्रण किया है। प्रत्येक नवयुवती की यह व्यक्तिगत भावना ही होती है। वह इसी प्रकार के भावों का प्रदर्शन भी करती है।

नायक किसी नवयुवती को देखकर आश्चर्यान्वित हो जाता है और उसके मुख से अचानक ही एक ऐसे भाव का प्रस्फुटन होता है जो स्वाभाविक है। प्रत्येक युवक की दशा इसी प्रकार होती है। कवि अपनी अभिव्यंजना शक्ति के द्वारा उस युवक के हृदय के भाव को हमारे सन्मुख इस प्रकार रख देता है कि मानो वह संसार के प्रत्येक युवक के भाव हों—

कि आरे! नव जौवन अभिरामा ।
जत देखल तत कहए न पारिअ
छयो अनुपन एक ठामा ॥'

एक युवक के हृदय में इस प्रकार के भाव का प्रस्फुटन होना स्वाभाविक ही है। 'कि आरे' शब्द में भाव कितना घनीभूत है। कवि ने यह पूर्णतः दिखा दिया है कि नायिका का यौवन आश्चर्य की वस्तु है। यौवन की प्रशंसा कवि ने यह कह कर की है---'जत देखल तत कहए न पारिअ' अर्थात् उस नायिका के यौवन और रूप सौंदर्य से नायक इतना प्रसन्न है कि उसने उसको अनिर्वचनीय ही कह दिया।

संगीतात्मकता और संक्षिप्तता विद्यापति के गीतों का मुख्य गुण है। ऊपर उद्धृत किये समस्त पदों में संगीत की लय तनिक प्रयास से ही आ सकती है। शब्दों का चुनाव कितना कोमल है। कोई भी कर्कश शब्द कवि की किसी भी रचना में नहीं।

'नन्दक नन्दन कदम्बक तरु तर
धिरे धिरे मुरली बजाव'

इन पंक्तियों में अनुप्रास की कितनी सुन्दर छटा है साथ ही शब्दों में कोमलता और माधुर्य है। संगीतात्मकता स्वतः ही पद में आ गई है। कृष्ण की

प्रतीक्षा के चित्र को दस पंक्तियों में ही चित्रित करके महाकवि विद्यापति ने अपनी प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया है। सम्पूर्ण पदावली में कोई भी मन-गन्ढ़त या कर्कश शब्द ढूँढ़े नहीं मिलेगा। जहां पर कवि को प्रेमानुभूति को व्यंजित करना है वहाँ तो कवि ने मधुरता और कोमलता को इतना स्थान दिया है कि अन्यत्र पाना कठिन है।

वियोग वर्णन में विद्यापति के गीतों को भाव की दृष्टि से जो सफलता मिली वह संयोग शृंगार में नहीं। संयोग में हृदय की वह दशा नहीं होती जो वियोग में होती है। विरहिणी का हृदय वेदना से तप्त होकर पारे के समान चढ़ता-उतरता है। उस समय संसार की सम्पूर्ण वेदना को विरहिणी के हृदय में ही स्थान मिलता है। नीचे वियोग वर्णन के कुछ पदों को उद्धृत करके हम यह दिखाने का प्रयत्न करेंगे कि विद्यापति के इन गीतों में मुक्तक की वह सम्पूर्ण विशेषताएँ मिलेंगी जिनकी चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं—

'लोचल धाए फेधाएल
हरि नहिं आएल रे।
सिवसिव जिवओ न जाए
आस अरुझा एल रे॥
मन करे तहाँ उड़ि जाइअ
जहां हरि पाइअ रे।
प्रेम-परसमनि जानि
आनि उर लाइअ रे॥
सपनहुँ संगम पाओल
रंग बढ़ाओल रे।
से मोरा विहि विघटाओल
निंदओ हेरा एल रे॥
भनइ विद्यापति साओल
धनि धइरज धर रे।
अचिरे मिलत तोहि बालम
पुरत मनोरथ रे॥'

इस पद में मुक्तक की सम्पूर्ण विशेषतायें मिलती हैं। विरहिणी वियोग से व्याकुल होकर अपने हृदय के उद्गारों को व्यक्त कर रही है। 'शिव शिव' शब्दों की पुनरावृत्ति ने नायिका की वेदना को स्पष्ट करने में चमत्कारपूर्ण प्रयत्न किया है। कवि ने एक भाव—नायिका की विरह-जनित वेदना, को ही दिखाया। कितनी सरलता और स्वाभाविकता के साथ कवि ने अपनी अभिव्यक्ति की है। माधुर्य और कोमल कांत पदावली भी मुक्तक के उपयुक्त ही है। 'रे' के प्रयोग ने संगीतात्मकता प्रदान करने में सहायता दी है। मुक्तक की दृष्टि से इस पद में विद्यापति को कहीं भी असफलता नहीं मिली। एक नहीं इस प्रकार के अनेकों पद पदावली में भरे पड़े हैं—

सखि मोर पिया
अबहु न आओल कुलिस - हिया॥
नखर खोआओलुँ दिवस लिखि लिखि
नयन अँधाओलुँ पिया पथ देखि॥

इस पद में भी विरहिणी की दयनीय दशा का चित्रण किया गया है। भाव की अभिव्यक्ति कितनी स्वाभाविक है। सम्पूर्ण पद में एक-एक शब्द उसी मूल भाव को पुष्टि कर रहा है। नाखूनों का घिसना, आंखों की ज्योति का नष्ट होना उसके प्रेम की तीव्रता को दिखाकर साथ ही रसानुभूति में भी सहायक होता है। माधुर्य और कोमलता की भी कमी नहीं है। संगीत के लिये यह पद अत्यंत उपयुक्त है।

विद्यापति की पदावली में अधिकतर पद इतने सुन्दर हैं कि उनको किसी भी समय इस प्रकार गाया जा सकता है जिस प्रकार कि गीत और भजनों को गाया जाता है। पदावली की इस संगीतात्मकता के कारण ही उसको वैष्णव भक्तों ने अपने यहाँ कीर्त्तन में स्थान दिया और आज तक इन पदों को भक्त लोग बड़े आनंद के साथ गाते हैं। चैतन्य और अन्य वैष्णव भक्तों की तो इन पदों को गाकर ऐसी अवस्था होती थी कि उनको अपने शरीर की भी सुधि नहीं रहती थी।

विद्यापति के पदों की मधुरता और कोमलता के कारण ही हिन्दी में गीतों की परम्परा चली। वैष्णव भक्तों ने, जो बंगाल से आकर ब्रजभूमि में इन पदों

को गाया करते थे, बल्लभ सम्प्रदाय के अन्य भक्तों को भी प्रभावित किया। सूरदास ने अपने पदों की रचना विद्यापति के अनुकरण पर ही की। उन्होंने कृष्ण की लीलाओं को अपने पदों में गाया। सूरदास के पदों के भावों का कहीं-कहीं तो विद्यापति के पदों के भावों से इतना साम्य है कि यह स्पष्ट प्रतीत हो जाता है कि सूर ने विद्यापति के अनुकरण पर ही मुक्तक रचना प्रारम्भ की।

सूर के पश्चात तो मुक्तक काव्य रचना का समुद्र सा उमड़ पड़ा। अष्ट-छाप के अन्य कवियों ने भी अपने हृदय के उद्‌गारों को गीतों में ही प्रकट किया। मीरा भी कृष्ण भक्तों में अपने मुक्तक काव्य के कारण ही अमर हो गई।

इस गीतों की परम्परा का श्रेय हमको विद्यापति को ही देना पड़ेगा। विद्यापति ने ही सबसे पहले अपनी पदावली की रचना की और उसके उपरांत तो अनेकों कवियों ने इस परम्परा को आगे बढ़ा दिया। विद्यापति मुक्तक-काव्य की परम्परा के जनक हैं। उन्होंने अपनी पदावली में मुक्तकों को जो रूप दिया उसी को आगे के लोगों ने अपनाया। उनके गीतों में सफल गीतों के सम्पूर्ण लक्षणों का समावेश है। हृदय की वृत्तियों का जितना सुन्दर चित्रण विद्यापति ने किया उतना सूर और मीरा के अतिरिक्त हिन्दी के अन्य कवियों में नहीं। संगीत विद्यापति के गीतों में पूर्णरूप से है। संक्षिप्तता और मधुरता भी इनके पदों में प्रचुर मात्रा में पाई जाती है। इसलिये विद्यापति को एक सफल गीतकार मानने में हम गौरव का अनुभव करते हैं।

कृष्ण का विकास और विद्यापति के कृष्ण

कृष्ण का विकास

कृष्ण का नाम भारतीय साहित्य के प्राचीन इतिहास से सम्बन्धित है। किंतु ईसा के पूर्व ही कृष्ण का नाम जनता में काफी फैल चुका था। महाभारत में कृष्ण का चरित्र अनेक रूपों में है। वह एक राजनीतिज्ञ है, एक विद्वान है और साथ ही एक योद्धा और सच्चा मित्र। गीता जो कि हिन्दुओं की अत्यंत धार्मिक पुस्तक है, कृष्ण के मुख से निस्सरित वह उपदेश हैं जो कि उन्होंने युद्धस्थल में अपने प्रिय मित्र अर्जुन को दिये थे। महाभारत में भी इन गीता के उपदेशों को यत्र-तत्र देखा जा सकता है। महाभारत के कृष्ण एक कर्मठ व्यक्ति ही हैं किंतु बाद में उनको देवत्व की मान्यता दे दी गई।

पाणिनि जो एक प्रसिद्ध व्याकरणकार है, अपने व्याकरण में वासुदेव (कृष्ण) और अर्जुन को देवयुग्म कहा है। इससे स्पष्ट है कि ईसा की चौथी शताब्दी में कृष्ण को देवत्व मिल चुका था। प्रसिद्ध यात्री मैगस्थनीज़ ने भी लिखा है कि कृष्ण की पूजा मथुरा और कृष्णपुर में होती थी। मैगस्थनीज़ का काल ईसा से ३०० वर्ष पूर्व है और उस समय मौर्य साम्राज्य था। इससे अनुमान किया जा सकता है कि कृष्ण की उपासना मौर्यकाल से पूर्व ही भारत में होती होगी। सम्भवतः उपनिषद् काल में इस पूजा को महत्व दे दिया गया हो क्यों कि महानारायण उपनिषद् में विष्णु का पर्यायवाची शब्द वासुदेव है। कृष्ण भी वासुदेव का पर्यायवाची है अतः कृष्ण विष्णु का भी द्योतक है।

सर भंडारकर की राय में कृष्ण और वासुदेव दो भिन्न-भिन्न पात्र हैं। उनका कथन है, "शात्वत एक क्षत्रियवंश का नाम था जिसे 'वृष्णि' भी कहते थे। वासुदेव उसी शात्वत वंश के एक महापुरुष थे और इनका समय ईसा से ६०० वर्ष पूर्व है। उन्होंने ईश्वर के एकत्व भाव का प्रचार किया था। उनकी मृत्यु के पश्चात उसी वंश के लोगों ने वासुदेव को ही साकार रूप से ब्रह्म मान

लिखा है। 'भगवद्गीता' उसी वंश का ग्रन्थ है।" भंडारकर के अनुसार वासुदेव का प्रथम रूप नारायण था, बाद में विष्णु और अंत में गोपाल कृष्ण हुआ।

ऋग्वेद के अष्टम मण्डल की रचना करने वाले ऋषि का नाम भी कृष्ण था। छान्दोग्य उपनिषद् में कृष्ण को देवकीपुत्र और घोर आंगिरस का शिष्य कहा है। देवकीपुत्र से स्पष्ट है कि महाभारत का कृष्ण और छान्दोग्य उपनिषद् का कृष्ण एक ही हैं। महाभारत में ही कृष्ण को एक दैवी अवतार के रूप में मान लिया जाता है। सभा पर्व में भीष्म ने कृष्ण को अव्यक्त प्रकृति एवं सनातन कर्त्ता कहा है। वे उनको समस्त भूतों से परे मानते हैं।

एव प्रकृतिरव्यक्ता कर्त्तांचैव सनातनः।
परञ्च सर्व भूतेभ्यः तस्मात्पूज्य तमोऽच्युतः॥

भीष्म ने अपनी प्रशंसा में कृष्ण की उन लीलाओं की चर्चा नहीं की जो कि उन्होंने गोकुल में की थी। इससे स्पष्ट है कि महाभारत के कृष्ण परब्रह्म हैं गोपाल कृष्ण नहीं। महाभारत में 'गोविंद' शब्द आया है किंतु इसका अर्थ गो (गाय) से सम्बन्धित नहीं। महाभारत में कृष्ण को विष्णु का अवतार मान लिया है।

महाभारत के पश्चात 'भगवद्गीता' में भी कृष्ण विष्णु के ही अवतार माने गये हैं।

'नारायणीय' नामक ग्रन्थ में अवतार-भावना का विस्तार किया गया है। उसमें अन्य अवतारों के साथ कंस-बध के निमित्त वासुदेव का अवतार अवश्य निर्देशित किया गया है, पर गोकुल में असुर-बध का या गोपाल कृष्ण के व्यक्तित्व का कोई उल्लेख नहीं। गोपाल कृष्ण की कथाओं को अधिक महत्व हरिवंश पुराण, वायु पुराण और भागवत पुराण में हुआ है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि गोपाल कृष्ण की कथा पुराणों के पूर्व भी जनता में प्रचलित होगी तभी तो उसको बाद में लिपिबद्ध किया गया। 'हरिवंश पुराण की रचना ईसा की तीसरी शताब्दी में हुई। इस पुराण में कृष्ण के चरित्र को गोपियों के चरित्र से सम्बद्ध कर दिया गया। विष्णु पुराण, पदम पुराण, वायु पुराण में कृष्ण की कथा संक्षेप में ही आई है। किंतु ब्रह्मवैवर्त पुराण के

तृतीय खण्ड तथा श्रीमद्भागवत के दशम और एकादश स्कन्ध में कृष्ण कथा को विस्तार के साथ लिखा गया।

रास लीला का उल्लेख हरिवंश पुराण व विष्णुपुराण दोनों में ही है। इस प्रकार कृष्ण की लीलाओं का उल्लेख प्रारम्भ हुआ।

कृष्ण का लीलाओं से संबंध

पाश्चात्य विद्वान कृष्ण को क्राइस्ट का रूपान्तर मानते हैं। ग्रियर्सन के मतानुसार ईसाइयों का एक दल ईसा की दूसरी शताब्दी में सीरिया से चलकर मद्रास प्रान्त में आकर बस गया। उनका प्रभाव दक्षिण की वैष्णव आड्यार शाखा पर पड़ा। इन ईसाइयों की अनेक बातों को हिंदुओं ने अपना लिया। ग्रियर्सन साहब ने अपने मत की पुष्टि में कहा है कि बंगाली कृष्ण को क्रिष्टो ही कहते हैं। इस प्रकार क्राइस्ट से क्रिष्टो और क्रिष्टो से कृष्ण बन गया था। ग्रियर्सन ने वैष्णवों की दास्यभक्ति, प्रसाद और पूतना-स्तन-पान को ईसाइयों की देन कहा है। किंतु हम कृष्ण का अस्तित्व ईसा से कई सौ वर्ष पूर्व दिखा चुके हैं। उस समय ईसा का नाम भी नहीं था फिर न जाने क्यों पाश्चात्य विद्वान प्रत्येक भारतीय कथा का संबंध अपने धर्म ग्रन्थों से लगाकर एक भारी भ्रम उत्पन्न कर देते हैं।

कृष्ण की लीलायें गोपियों के साथ हुई थीं गोपी शब्द का संबंध बहुत से विद्वान, जिनमें पाश्चात्य और हमारे देश के सर भंडार कर भी हैं, उस आभीर जाति से जोड़ते हैं जो ईसा से पूर्व ही भारत में आ चुकी थी। किंतु हमारे यहाँ के किसी भी ग्रन्थ में आभीरों को विदेशी नहीं माना गया। वायुपुराण में आभीर राजाओं की वंशावली दी है जिसमें कहा है कि इन राजाओं ने भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश में शक और हूणों के आक्रमण से पूर्व दस पीढ़ियों तक राज्य किया। अनुमान किया जाता है कि आभीरों में बाल गोपाल की पूजा प्रचलित रही हो। एक विद्वान ने आभीर शब्द को दक्षिण की भाषाओं का बताया है जिसका अर्थ गोपाल होता है।

यह निश्चित है कि कृष्ण और गोपियों की लीलाओं का स्रोत किसी वाह्य धर्म और देश में नहीं। क्योंकि ईसवी सन् के पूर्व ही भारतीय धर्म ग्रंथों

में और साहित्यिक पुस्तकों में इस कथा को लेकर काफी चर्चा हुई है। गाथा-सप्तशती जो प्रथम शताब्दी का काव्य है उसमें भी कृष्ण और गोपियों का उल्लेख है। इससे स्पष्ट है कि जनता में यह लीलायें इससे बहुत पूर्व ही प्रचलित हो चुकी होंगी। महाकवि भास द्वारा रचित नाटकों में भी कृष्ण के बाल-चरित्र की लीलाओं का उल्लेख है। श्री जायसवाल के मतानुसार भास का समय ईसा से कई सौ वर्ष पूर्व है। इससे स्पष्ट है कि कृष्ण की लीलायें बाहर का प्रभाव नहीं।

संभव है कि आभीर दक्षिण भारत के ही हों और दक्षिण से उत्तर भारत में आये हों। यह भी हो सकता है कि बाल-कृष्ण की गोपियों के साथ की लीलाओं का प्रचार प्रथमतः उन्हीं में हुआ हो और बाद में भागवत धर्म स्वीकार हो जाने पर उनकी यह लीलायें कृष्ण-भक्ति के साथ जोड़ दी गई हों। यदि आभीर दक्षिण के हैं और कृष्ण की बाल लीलाओं के उपासक हैं तो निस्सन्देह उत्तराखण्ड की कृष्ण की लीलाओं का समस्त श्रेय इन्हीं को देना पड़ेगा। भागवत में एक श्लोक है वह भी इस बात की पुष्टि करता है—

कलौ खलु भविष्यन्ति नारायण परायणाः।
क्वचित-क्वचित महाराज द्रविड़ेषु च भूरिशः॥

वैष्णव धर्म के सम्पूर्ण आचार्य दक्षिण के हैं इससे भी इस भक्ति की उत्पत्ति का स्रोत दक्षिण देश ही प्रतीत होता है। भण्डारकर का यह कथन कि आभीर बाहर से आये निराधार है। हाँ, इतना अवश्य हो सकता है कि सीरिया की कुछ जातियाँ आईं और आकर आभीरों में अन्तर्भुक्त हो गईं। एक सीरियन जाति ही नहीं वरन् और भी अनेकों विदेशी जातियों की अन्तर्भुक्ति के उदाहरण मिलते हैं। वेस नगर के एक शिलालेख में ग्रीक राजदूत हेलियोडोरस को भागवत धर्म का अनुयायी कहा गया है। इसी प्रकार भविष्य-पुराण में कृष्ण की मिश्र यात्रा का उल्लेख है कि वह वहाँ से दस सहस्र लोगों को लेकर आये थे। इससे सिद्ध है कि बाहर के लोग भारत में आकर रहते थे और यहाँ के धर्म को स्वीकार कर लेते थे। इस प्रकार की अन्तर्भुक्ति के अनेक उदाहरण हैं। यह कृष्ण भक्ति का प्रथम स्रोत इतिहासकारों एवं धार्मिक ग्रन्थों

के आधार पर है। कृष्ण भक्ति का एक दूसरा स्रोत वेदों में आये विष्णु से संबंधित है। कृष्ण की उपासना को वैष्णव भक्त विष्णु की उपासना ही मानते हैं। वेदों में विष्णु का नाम अनेकों स्थान पर आया है। विष्णु को कितने ही नामों से विभूषित किया गया है। विष्णु को त्रिविक्रम, उरुगाय और गोपा कहा गया है। ऋग्वेद के एक श्लोक में (ऋ० १–१५४–६) अनेक सींगों वाली गायें आती हैं और 'कृष्ण' शब्द भी आया है। इसके अतिरिक्त पुराणों में कृष्ण को विष्णु का अवतार कहा गया है। और उनको वृष्णि वंश का कहा है। विष्णु का एक अवतार वामन का भी है जिसमें उन्होंने तीन पैरों से ही सम्पूर्ण पृथ्वी को नाप लिया था। वेदों में कई स्थान पर 'राधा,' 'गोपा', अहि, वृषभानु, रोहिणी, कृष्ण और अर्जुन शब्द आये हैं।

१—स्तोत्रं राधानां पते। ऋग्वेद—१—३०—२९

२—तमेतदाधार यः कृष्णासु रोहिणीसु। ८—९३—१३

उपर्युक्त राधा कृष्ण, रोहिणी से कोई भी मनुष्य जो वेदों की परम्परा से परिचित नहीं तुरन्त ही कहने लगेगा कि वेदों की रचना कृष्ण के समय में हुई। किंतु जिस समय उसे यह प्रतीत होगा कि महाभारत में कृष्ण वेदवेत्ता होते हैं और कृष्ण के पूर्व ही वेदों की रचना हो चुकी थी तो वह एक साथ अपने भ्रम का निवारण कर लेगा।

वास्तव में वेदों में आये राधा, कृष्ण, रोहिणी, गोप, अर्जुन, वृषभानु, आदि शब्द भागवत में आये नामों के अर्थमें नहीं वरन् अन्य अर्थों में ही हैं। राधा धन, अन्न और नक्षत्र का नाम है। गो किरणें हैं, कृष्ण रात्रि तथा अर्जुन दिन के अर्थ में आया है। वृष्ण शब्दका अर्थ वेदोंमें वृष्णि वंशमें से नहीं वरन बलवान होने से है! अतः यह निश्चित है कि वेद में आये राधा, कृष्ण, अर्जुन, वृषभानु आदि नाम ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम नहीं, ऐतिहासिक नामों का आधार अवश्य हो सकते हैं और ऐसा ही है भी। ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम वेद के शब्दों को देखकर रख लिये गये हैं। वेद के शब्द प्राचीन हैं और ऐतिहासिक नाम उनके बाद के हैं।

आर्यों ने जब अवतारों की कल्पना की तो विष्णु, नारायण, वामन

आदि वेदों के नामों को ही लेकर काव्योपयुक्त कल्पना से विभूषित कर के अपना लिया। किसी मनोरंजन के लिये यह सब नहीं किया गया वरन् उनको आदर्श रूप में प्रस्तुत करके मानवता के कल्याण की भावना की गई। किंतु इसका यह अर्थ नहीं लेना चाहिये कि इन नामों से सम्बद्ध सम्पूर्ण इतिहास ही कल्पित है। राम, परशुराम, कृष्ण, व्यास आदि सम्पूर्ण नाम ऐतिहासिक ही हैं। राधा, कृष्ण और गोप शब्दों का भी ऐसा ही इतिहास है। वेदों में विष्णु का अर्थ सर्व व्यापक ईश्वर लिया जाता था। किंतु जिस समय अवतारवाद की प्रतिष्ठापना हुई तो ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषद में वर्णित नारायण को कृष्ण रूप में अवतार मान लिया गया और नारायण को विष्णु का पर्याय मान लिया गया। कृष्ण के पिता का नाम वसुदेव होने के कारण वे वासुदेव कहलाये अतः विष्णु, नारायण, वासुदेव और कृष्ण इन चारों का एक ही अर्थ में प्रयोग होने लगा। जो कृष्ण महाभारत में वेदों के ज्ञाता, राजनीति-निपुण और योद्धा के रूप में चित्रित किये गये हैं। छान्दोग्य उपनिषद में जो कृष्ण घोर आँगिरस ऋषि से विद्या सीखते हैं, वे ही सात्वत धर्म के उपदेष्टा एवं गुरु बनते हैं और कालान्तर में भगवान और ईश्वर के नाम से प्रसिद्ध होते हैं।

भक्ति के द्वितीय उत्थान काल तक कृष्ण का यही रूप है किंतु तृतीय और चतुर्थ उत्थान काल के समय कृष्ण के इस रूप में अन्तर पड़ता है। कृष्ण के साथ लीलाओं का सम्बन्ध जुड़ता है। वेद में आये गोप और ब्रज शब्द को लेकर गोप लीला प्रारम्भ होती है। सूतों की कल्पना के द्वारा इस गोप लीला का संबंध कृष्ण के बाल्यकाल से कर दिया जाता है। गोप लीला का दार्शनिक पक्ष है। मानव की चितरंजिनी वृत्ति को ही गोपलीला के नाम से घोषित किया गया। गोपियों के साथ कृष्ण की लीलायें इसी चितरंजिनी वृत्ति का विकसित रूप है। इन लीलाओं के लिये प्रकृति की सुरम्य गोद को चुना गया। कृष्ण की मुरली और मन्द मन्द हास से सम्पूर्ण चराचर विमुग्ध हो गया। विष्णु पुराण तक यह गोप लीला ही थी और उसमें अत्यन्त पवित्र भावना के साथ ही उसका चित्रण था। हरिवंश पुराण में इन लीला और क्रीड़ाओं का वेग तीव्र हो जाता है। श्रीमद्भागवत में इसका रूप और प्रखर है किंतु वैवर्त्त-पुराण में राधा के आने से इन लीलाओं में एक और अपूर्व शक्ति आगई

प्रकृति और पुरुष की कल्पना भी हुई। प्रेम और अनुराग की मूर्ति राधा के आने से भक्ति की तरंगिनी में लहर पर लहर आने लगी। जन-समाज आनंदातिरेक में थिरक उठा। भक्ति की इस आनंददायिनी त्रिवेणी के स्नान के लिये जनता में भगदड़ मच गई और देखते देखते भारतवर्ष का कोना-कोना इस रस से मग्न हो गया।

निम्बार्क और विष्णु स्वामी ने इस भक्ति का सूत्रपात भागवत पुराण के आधार पर किया। उनके अनन्तर उनके अनुयायी चैतन्य और बल्लभ ने इस भक्ति में प्रेम की सरलता का मिश्रणकर देशव्यापी रूप दे दिया। उन्होंने आत्म चिंतन की अपेक्षा आत्म समर्पण को अधिक महत्व दिया। इन्होंने शुद्धाद्वैत मत का प्रतिपादन किया और पुष्टिमार्गी भक्ति का सूत्रपात किया।

विद्यापति के कृष्ण—विद्यापति के कृष्ण किसी भक्ति सम्प्रदाय के कृष्ण नहीं। उन्होंने न तो कृष्ण को निम्बार्क स्वामी से लिया और न विष्णु स्वामी से। उनके कृष्ण तो संस्कृत के कवि जयदेव के आधार पर थे। विद्यापति के कृष्ण की लीलायें वृन्दाबन और गोकुल की वे लीलायें नहीं जिनको वैष्णव सम्प्रदायों ने अपनी भक्ति में रखा वरन् नायिका के अङ्ग-प्रत्यङ्गों को देखकर विभोर होने की लीलायें करते रहे। विद्यापति ने कंस बध, पूतना, माखनचोर आदि किसी भी लीला का वर्णन नहीं किया। उन्होंने तो कृष्ण की केवल वासना-जनित क्रियाओं का ही उल्लेख किया है। विद्यापति ने कृष्ण को देवत्व की कोटि में न लेकर मनुष्यत्व की कोटि में ही लिया है। इस प्रकार कृष्ण के जिस रूप को हम विद्यापति में देखते हैं वह एक घोर विलासी और कामुक मनुष्य का चित्र है। वह न तो दुष्टों का दलन करने वाला है और न इन्द्र के कोप से गोप और गोपियों की रक्षा करने वाला कृष्ण है। विद्यापति के कृष्ण तो सदा अपनी प्रेमिका राधा से मिलने की तरकीब में ही व्यस्त रहते हैं। कभी वह राधा के पास उस समय पहुँचते हैं जबकि वह अपनी सास के पास सोई हुई है। कृष्ण चुपके से राधा की पीठ का स्पर्श करके ही अपनी इच्छा की तृप्ति कर लेते हैं। सखो और राधा (नायिका) अनेकों स्थान पर कृष्ण को रति-विशारद कहकर उनके रूप को प्रकट कर देती हैं।

पदावली में माधव, कृष्ण और कान्ह शब्द आये किंतु वह सब एक नायक

के नाम ही हैं। राधा, गोकुल, वृन्दावन, जमुना आदि नामों का भी यत्र-तत्र प्रयोग हुआ है। किंतु इन सब से यह नहीं कहा जा सकता कि विद्यापति ने कृष्ण की लीलाओं को ही चित्रित किया है। विद्यापति ने एक नायक को कृष्ण नाम देकर अपने हृदयकी सम्पूर्ण विलासिता और कामुकता को उनमें भर दिया है। सम्पूर्ण पदावली में कृष्ण का चित्र एक विलासी मनुष्य का चित्र है।

विद्यापति के कृष्ण जयदेव के कृष्ण के समान ही दक्षिण नायक हैं। यदि कहीं पर बाम नायक हैं तो केवल कुछ ही स्थानों पर जहाँ पर कि राधा को खंडिता नायिका बनाया है। जैसे, 'लोचन अरुण बुझल बड़ भेद' आदि।

कृष्ण का वर्णन पदावली में स्वतंत्र रूप में नहीं। यह राधा के वर्णन के साथ ही आये हैं। अब प्रश्न यह है कि विद्यापति ने जब कृष्ण को न तो भागवत के आधार पर प्रचलित किसी सम्प्रदाय से ही लिया और न किसी पुराण के आधार पर ही, फिर इस प्रकार के शृङ्गारिक और वासनाजन्य रूप के कृष्ण का क्या मूल श्रोत जयदेव ही थे?

दक्षिण के वैष्णव धर्म के उदय के पूर्व का इतिहास बज्रयान और सहजयान का इतिहास है जिसने एक लम्बे समय तक समाज को विलासिता और कामुकता में ही रँग दिया था। योनिपूजा को ही महत्व दिया जाता था। तंत्रवाद का प्रभाव इतना बढ़ा हुआ था कि सम्पूर्ण इच्छाओं और सिद्धियों की प्राप्ति का केन्द्र स्त्री को बना रखा था। जब शाक्त धर्म विकसित हुआ तो उस पर भी वज्रयान की ऐंद्रिकता का प्रभाव पड़ा। जन समाज पूर्ण रूप से वज्रयानियों की उन अश्लीलताओं को नहीं छोड़ सका और उन्होंने समाज में दूसरे रूप में घर कर लिया। जिस प्रकार योनि और लिंग को शिव-शक्ति का रूप मिला उसी प्रकार के अन्य युग्म भी जन-समाज में प्रचलित हो गये। राधा और कृष्ण की कथा को जो ऐंद्रिकता मिली उसमें वज्रयान और सहजयान का बड़ा प्रभाव है। विद्यापति स्वयं एक स्मर्त शाक्त थे इसलिये उन्होंने जनता में प्रचलित इन कथाओं को अपना लिया और इस प्रकार अपने विलासी और रसिक आश्रय दाता राजा शिवसिंह के हृदय को प्रसन्न करते रहे।

विद्यापति के अन्दर हमको राधा और कृष्ण का यही रूप मिलता है जो कि प्रथम शताब्दी की गाथा सप्तशती में है।

वही शृंगारिक भावना जो कि गाथा सप्तशती में कृष्ण के प्रति है उसी को पुष्पदंत नामक १० वीं शताब्दी के कवि ने भी अपनाया।

> दुलई - धूली धूसिरैण नर मुक्कसरैणतिणामुराहिणा
> कीलादस वसेण गोवालय गोवी हियय हारिणा॥

इससे स्पष्ट है कि जनता में कृष्ण और राधा की कथायें शिव और शक्ति का आधार लेकर वज्रयान के उत्कर्षकाल में ही प्रचलित हो चुकी थीं। उन्हीं कथाओं के आधार पर जयदेव ने अपने काव्य में कृष्ण और राधा के चरित्र का द्विग्दर्शन कराया। विद्यापति को राधा और कृष्ण का यह रूप अपनी दरबारी परिस्थित के अनुकूल लगा क्योंकि उनको राजा की इच्छाओं को अपनी कविता के माध्यम से संतुष्ट करना था।

विद्यापति ने पदावली की रचना एक कृष्ण भक्त कवि के रूप में नहीं की। यहाँ तो हम उनके शृंगारी रूप का ही दर्शन करते हैं। इसके अतिरिक्त कविने अपनी अन्य संस्कृत रचनाओं में भी कृष्ण का नाम कहीं नहीं लिया। शिव, पार्वती, दुर्गा, गंगा आदि सभीके नाम हैं। इससे स्पष्ट है कि पदावली के कृष्ण का रूप एक साधारण नायक का ही रूप है और कवि को यह चरित्र अन्य रचनाओं के आधार पर मिल गया। गाथा सप्तशती, अमरूक शतक शृङ्गारतिलक और शृङ्गार शतक अपनी शृङ्गारिकता के कारण जनतामें आदर पाचुके थे। विद्यापति जयदेव की पदावली के माधुर्य को देख चुके थे, जनता ने कृष्ण और राधा की इन शृङ्गारिक क्रिया-कलापों को कितने उल्लास के साथ सुना। यह भी उन्होंने देखा अतएव विद्यापति ने कृष्ण के जन-परम्परा में प्रचलित रूप को अपना कर जन भाषा में ही जनता के सन्मुख प्रस्तुत कर दिया। उन्होंने कृष्ण और राधा अथवा उनकी लीलाओं का कोई दार्शनिक पक्ष नहीं लिया वरन् एक नायक नायिका के प्रेम और विलास मय जीवन के भिन्न २ चित्रों को अपनी कल्पना के रंगों से रंग कर पदावली में संग्रहीत कर दिया। विद्यापति के कृष्ण में काम शास्त्र की सम्पूर्ण चतुरता और ज्ञान का अपरमित भण्डार है। पदावली के कृष्ण के प्रति श्रद्धा नहीं उत्पन्न होती वरन् उनके चरित्र में एक कामुक नायक के चरित्र की पूर्ण झाँकी मिल जाती है। सम्पूर्ण पदावली में इस प्रकार के चित्र अनेक हैं। केवल कुछ स्थानों पर ही कृष्ण को एक

संयत नायक के रूप में चित्रित किया है। पदावली में कृष्ण को राधा से अधिक महत्व नहीं दिया। विद्यापति को राधा के सौंदर्य में अधिक आकर्षण था इसीलिये उन्होंने राधा को ही अपनी पदावली का मुख्य पात्र रखा। कृष्ण के वर्णन राधा के मुख से ही अधिक हुए हैं। एक दो स्थान पर कृष्ण का रूप अत्यन्त ही भावुक प्रेमी का रूप है अन्यथा सब स्थानों पर वह साधारण नायक है। कृष्ण का प्रेमी रूप कितना सुन्दर है—

नन्दक नन्दन कदम्बक तरुतर
धिरे धिरे मुरलि बजाव।
समय सँकेत - निकेतन बइसल
बेरि बेरि बोलि पठाव॥

सामरि तोरा लागि
अनुखन विकल मुरारि
जमुनाक तिरे उपवन उदवेगल
फिर फिर ततहि निहारि

गोरस बेचए अवइत जाइत
जनि जनि पुछ बनमारि
तोंहे मतिमान सुमति मधुसूदन
वचन सुनहि किछु मोरा।

भन विद्यापति सुन वर जौवति
बन्दह नन्द किसोरा।

कृष्ण का यह रूप अत्यन्त ही भावुक और संयत प्रेमी का रूप है। प्रेमिका की प्रतीक्षा में कृष्ण किस प्रकार शांत वातावरण में बैठे विकल हो रहे हैं और मुरली बजाकर अपनी उपस्थित का ज्ञान करा रहे हैं अर्थात् राधा को बुलाने के लिये मुरली की ध्वनि कर रहे हैं।

इस पद में कृष्ण का जो रूप है यदि ३०-४० पदों में भी होता तो हम विद्यापति के कृष्ण को भी सूर के कृष्ण की कोटि में ले सकते थे। किन्तु विद्यापति में आगे बहुत कम पदों में ही कृष्ण को इस शुद्ध और पवित्र प्रेमी के रूप में देखा है।

विद्यापति कई स्थानों पर तो अपने कृष्ण को विलास करने को उकसाते हैं ।

'भनइ विद्यापति सुनहु मुरारि ।
सुपुरुख विलसए से बरनारि ॥'

इसी प्रकार एक और स्थान पर अपने कृष्ण को नायिका के विषय में समझाते हैं—

विद्यापति कह सुन वर कान ।
तरुनिम सैसव चिह्नइ न जान ॥

कभी-कभी कृष्ण दूती के द्वारा नायिका के सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर तुरंत ही चल देते हैं । एक स्थान पर नायिका (राधा) की दूती कृष्ण (नायक) से आकर कहती है—

'पीन पयोधर दूबरि गता ।
मेरु उपजल कनकलता ॥
ऐ कान्हु ऐ कान्हु तोरि दोहाई ।
अति अपूरब देखल सांई ॥

दूती की इस बात को सुनकर कृष्ण इतने कामातुर हुये कि तुरंत ही वहाँ से प्रस्थान कर देते हैं—

भन विद्यापति दूति बचने ।
एत सुनि कान्ह कएल गमने ॥

विद्यापति ने अपने कृष्ण को नायिका की सम्पूर्ण अवस्थाओं से परिचित करा दिया है—

विद्यापति कह सुनहु मुरारि ।
बसन लागल भाव रूप निहारि ?

अर्थात् हे मुरारी यदि अवसर मिले तो बाला को उस समय देखो जिस समय कि वह स्नान के उपरांत भीगे वस्त्र, जो कि उसके शरीर से चिपक गये हैं, पहिने है ।

कृष्ण राधा को प्रत्येक स्थान पर मिले हैं—रास्ते में, यमुना के तीर पर, घर में और संकेत स्थल पर । कोई भी ऐसा स्थान नहीं जहाँ पर कि विद्यापति

ने कृष्ण को नहीं देखा हो। एक दिन मार्ग में दोनों का मिलन हुआ और दोनों ही कामदेव के शिकार हो गये—

पथ-गति नयन मिलल राधा कान।
दुहु मनसिज पूरल संधान॥

कृष्ण के हृदय में राधा ने घर बना लिया। कृष्ण अपनी इस मिलन-कथा को अपने किसी रसिक मित्र को सुना रहे हैं—

'पथगति पेखल मो राधा।
तखनुक भाव परान पए पीड़लि।
रहल कुमुद - निधि साधा॥
ननुआ नयन नलिनि जनि अनुपम।
बंक निहारइ थोरा॥
जनि शृंखल में खगवर बाँधल।
दीठि नुकायल मोरा॥'

कृष्ण एक रसिक युवक के समान अपने अनुभव को अपने किसी अंतरंग मित्र को सुना रहे हैं। इस प्रकार के अनेकों चित्र विद्यापति ने अपनी पदावली में कृष्ण के विषय में प्रदर्शित किये हैं। उनसे हमको कृष्ण के उस रूप का बोध नहीं होता जो कि एक लोक-रंजक और लोक-रक्षक कृष्ण का रूप सूर और अन्य भक्त कवियों ने दिखाया है। विद्यापति के कृष्ण का रूप एक कामुक युवक का रूप है। उनको देखकर हृदय की वासनाओं में आसक्ति होती है, विरक्ति नहीं। विद्यापति ने कृष्ण को रति-विशारद, काम-क्रीड़ाओं का चतुर नायक और एक विलासी नायक के रूप में ही चित्रित किया है।

पदावली के कृष्ण को इष्टदेव मानकर उनके प्रति पवित्र भावनायें नहीं हो सकतीं। कृष्ण यौवन से उन्मत्त एक नायक के रूप में ही दिखाई देते हैं। उनका राधा के प्रति जो प्रेम है वह आध्यात्मिक प्रेम नहीं वरन् भौतिक प्रेम का विस्तृत वर्णन है। वह सौंदर्य के उपासक हैं, पार्थिव प्रेम के पुजारी और शारीरिक विलास में रत रहने वाले नायक।

राधा का विकास और विद्यापति

राधा का विकास—

राधा हिन्दी साहित्य की प्राणदायिनी शक्ति के रूप में अवतरित हुई। राधा के प्रसंग को लेकर शताब्दियों से शृंगार रस की जो सरिता प्रवाहित हुई उसने हिन्दी काव्य को एक ऐसी मधुरिमा प्रदान की कि आज भी उसकी रस-धारा में लाखों रसिक हृदय निमग्न होते हैं। जिस राधा का हमारे साहित्य में इतना महत्वपूर्ण स्थान है उस राधा के विकास के मूल स्रोत को देखना हमारा कर्त्तव्य है।

राधा और कृष्ण दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं। बिना राधा के कृष्ण का कोई महत्व नहीं और बिना कृष्ण के राधा भी अपना कुछ महत्व नहीं रख सकती। अब देखना यह है कि इन दोनों का हिन्दी काव्य में किस प्रकार से मेल हुआ।

महाभारत कृष्ण के जीवन का एक ब्यौरा है। उसमें कृष्ण के सम्पूर्ण क्रिया कलापों का विस्तृत विवरण मिलता है। किन्तु इस इतने बृहद् ग्रन्थ में 'राधा' का कहीं नाम नहीं। राधा ही नहीं वरन् अन्य गोपियों अथवा कृष्ण के गोप-जीवन का कोई चित्रण नहीं। इसके अतिरिक्त हरिवंश पुराण, ब्रह्म पुराण, विष्णु पुराण आदि में भी राधा का कहीं नाम नहीं।

महाभारत के पश्चात् सबसे अधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'भागवत पुराण' में भी राधा का कहीं उल्लेख नहीं। भागवत के दशम स्कन्ध के तीसवें अध्याय में एक ऐसी गोपी की चर्चा है जो कि कृष्ण को अत्यधिक प्यारी थी—"रास-लीला के बीच में गोपियों का गर्व दूर करने के लिये जब कृष्ण अन्तर्ध्यान हो गये तो गोपियाँ वृन्दावन के वृक्ष, लता आदि से श्रीकृष्ण का पता पूछने लगीं। इसी समय उन्होंने एक स्थान पर भगवान् के चरण-चिह्न देखे। वे आपस में कहने लगीं—'अवश्य यह चरण-चिह्न नन्दनन्दन श्यामसुन्दर के हैं, क्योंकि

इनमें ध्वजा, कमल, वज्र, अंकुश और जौ आदि के चिह्न स्पष्ट ही दृष्टिगोचर हो रहे हैं।" उन चरण-चिह्नों को देखकर यह उनके साथ-साथ आगे चलीं और उनको कृष्ण के चरण-चिह्नों के साथ अन्य किसी व्रज युवती के चरण-चिह्न भी दिखाई दिये। उनको देखकर गोपियाँ व्यथित हो गईं और कहने लगीं, "जिस प्रकार हस्तिनी अपने प्रियतम गजराज के संग गई हो, उसी प्रकार ब्रजवल्लभ श्यामसुन्दर के साथ उनके कंधे पर हाथ रख कर चलने वाली किस भाग्यशालिनी के यह चरण-चिह्न हैं?" इसके आगे इस प्रकार का एक श्लोक है—

अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद्रहः ॥२८॥

अर्थात् उसने अवश्य ही परमशक्तिमान् परमात्मा श्री कृष्ण की आराधना की है। तभी तो कृष्ण हमको त्यागकर प्रसन्नतापूर्वक उसे एकान्त में ले गये हैं।

भागवतकार ने इतना संकेत तो कर दिया कि एक गोपी कृष्ण की आराधना में अधिक अनुरक्त थी इसलिये कृष्ण उसको अधिक प्रेम करते थे। राधा नाम का उल्लेख भागवतकार ने कहीं नहीं किया। सम्भव है कि राधा शब्द की व्युत्पत्ति आराधितः शब्द से हुई हो।

भास संस्कृत का मशहूर नाटककार हो चुका है। उसका रचनाकाल ईसा की दूसरी शताब्दी माना जाता है किन्तु उसके नाटकों में भी राधा का कहीं नाम नहीं।

ऊपर हम अपने धार्मिक ग्रंथों में राधा के विकास को दसवीं शताब्दी तक देख चुके और उनमें राधा का उल्लेख किसी भी ग्रंथ में नहीं किन्तु जब हम लोकभाषा अर्थात् प्राकृत और अपभ्रंश के ग्रंथों में राधा के विकास को देखते हैं तो प्रथम शताब्दी के लिखे ग्रंथ गाथासप्तशती ही में राधा का नाम आया है।

मुहमारूपण तं कह्न गोरअं शहिआएँ अवणेन्तो।
एताणँ बलवीणं अराणाणाँ वि गोरअं हरसि॥

(गाथा सप्तशती)

अर्थात् हे कृष्ण तुम राधा के नेत्रों की धूल को अपने मुँह की हवा से दूरकर (इस प्रकार राधा को चूमकर) दूसरी स्त्रियों का अभिमान दूर करते

हो या उसकी गोराई दूर करते हो अर्थात् वे दुःख से काली हो जाती हैं।

इससे स्पष्ट है कि समाज में राधा और कृष्ण विषयक कथा प्रथम शताब्दी से पूर्व भी प्रचलित होगी। राधा का कोई धार्मिक महत्व उस समय नहीं होगा वरन् एक सुन्दरी नायिका के रूप का प्रतीक बन चुका होगा। इससे स्पष्ट है कि जनता में राधा के विषय में बहुत पहले से ही कोई कथा अवश्य प्रचलित होगी।

लोक-भाषायें जनता के भावों की वास्तविक प्रतिबिम्ब होती हैं। किन्तु धार्मिक पुस्तकें तो जनता की परिमार्जित रुचि को ही लेकर चलती हैं। संस्कृत भाषा एक धार्मिक रूप धारण कर चुकी थी और उसका सम्बन्ध समाज के कतिपय विद्वानों और धर्माचारियों से ही रह गया था इसलिये वह जनता में प्रचलित इस राधा-कृष्ण की कथा की अवहेलना करती रही। इसके अतिरिक्त यह भी सम्भव हो सकता है कि राधा का विकास किसी अवैदिक संप्रदाय में हुआ हो और इस कारण संस्कृत के वेदानुगत धार्मिक ग्रंथों में उसको स्थान नहीं मिला हो। क्योंकि भारतवर्ष में बौद्ध धर्म और वाममार्ग के प्रभाव से इस प्रकार की अनेकों मान्यतायें चल पड़ी थीं और उनको संस्कृत के ग्रन्थों में स्थान नहीं दिया गया था।

गाथा सप्तशती के पश्चात् पंचतंत्र में भी राधा का नाम आता है किन्तु यह राधा भी गाथा सप्तशती की सी ही राधा है।

संस्कृत के धर्म ग्रन्थों में राधा का पहला विशद चित्र ब्रह्मवैवर्त पुराण में मिलता है जो भागवत के बाद का ग्रंथ है।

पुष्पदंत ने भी कृष्ण और गोपियों की लीला और विलास का चित्रण अपने काव्य में किया है। उसका रचनाकाल सं० ९५२ से ९७२ के आसपास है।

दुतई धूली धूसिरेण नरमुक्कसरेण तिणा मुरारिणा।
कीला रसवसेण गोवालय गोवी हियय हारिणा॥

पुष्पदंत ने कृष्ण की पूतना लीला, गोवर्धन धारण, कालिअदमन आदि अनेक लीलाओं का चित्रण किया है। कृष्ण और राधा की इन विभिन्न कथाओं के आधार पर यह धारणा बनाई जा सकती है कि भागवतकाल से पूर्व ही राधा और कृष्ण की कथा विभिन्न रूपों में समाज में प्रचलित थी। इस प्रकार हिंदी साहित्य में राधा की कथायें दो मार्गों का अवलम्बन करती हुई

चलीं—१—लोक भाषाओं में राधा का परकीया रूप और २—ब्रह्मवैवर्त पुराण वाला धार्मिक रूप।

'गाथा सप्तशती' की राधा का रूप जनता में प्रचलित राधा के रूप के आधार पर है। यह राधा एक सुन्दरी नायिका है और साथ ही परकीया भी। अब प्रश्न यह है कि यह रूप जनता में उस समय कहाँ से आया? स्पष्ट है कि समाज में राधा के विषय में अवश्य लोकगीत और लोक कथायें पहलेसे ही प्रचलित होंगी और यह शाक्तों की शक्ति की कथाओं के रूप में ही प्रचलित रही होंगी। यह हम पहले कहीं कह चुके हैं कि मध्यकालीन भारत बहुत अवैदिक परम्पराओं को अपना चुका था। तन्त्रवाद के विकसित रूप वाम मार्ग का प्रभाव भारतीय धर्म और संस्कृति पर पड़ा उसके फलस्वरूप अनेकों प्रकार से धार्मिक और साँस्कृतिक परिवर्तन भी हुये। वाम मार्ग में स्त्री को अधिक महत्व दिया गया। उसको प्रत्येक साधना का आधार बनाया गया और यहाँ तक कि उसे शक्ति का रूप दे दिया गया। स्त्री के द्वारा ही मनुष्य सम्पूर्ण सिद्धियों को प्राप्त कर सकता है—स्त्री ही सम्पूर्ण उपासनाओं और साधनाओं का केन्द्र थी। वाममार्ग की एक शाखा कौल धर्म का मूल तो स्त्री पर ही आधारित था। जिस पुरुष के बायें ओर स्त्री नहीं, जिसके दाहिने हाथ में मदिरा का पात्र नहीं वह कौल धर्म में सच्चा भक्त नहीं माना जाता था। इन धर्मों ने समाज में विलासिता और कामुकता को जन्म दिया। स्त्री को शक्ति (योनि को शक्ति) और पुरुष को शिव (अर्थात लिंग) कहा गया और इस प्रकार कालान्तर में शिव और शक्ति का युग्म बनकर उपासना के क्षेत्र में आया, शाक्त सम्प्रदाय वाममार्ग से ही निकला था इस कारण इसमें विलासिता और कामान्धता को ही धार्मिकता की संज्ञा दे दी गई थी। कालान्तर में स्त्री को शक्ति और पुरुष को शिव कह कर जनता में धार्मिक मनोवृत्ति का परिचय दिया जाने लगा।

भारत का प्रत्येक संप्रदाय शाक्त सम्प्रदाय से प्रभावित है इसलिये अन्य सम्प्रदायों ने भी शिव और शक्ति के इस रूप को अपना लिया, और शिव शक्ति के युग्म के समान राधा कृष्ण और सीता-राम युग्म बने। शाक्तों की शृङ्गारिकता ने कालान्तर में समाज की रुचि का रूप धारण कर लिया और इस प्रकार राधा कृष्ण भी समाज की शृङ्गारिक मनोवृत्ति के परिचायक के रूप

में आगे चलकर मान लिये। 'गाथा सप्तशती' में राधा का रूप कोई धार्मिक नहीं वरन् एक परकीया नायिका का रूप है। श्री मुन्शीराम शर्मा सूर सौरभ के पृष्ठ ६८ पर लिखते हैं—"चौथी और पाँचवीं शताब्दी तक शिव और पार्वती हिंदुओं में उपास्य देव के रूप में प्रचलित हो गये थे। कुछ विद्वानों की सम्मति में इन्हीं शिव और पार्वती के अनुकरण पर संभवतः हिंदुओं में विष्णु और श्री की पूजा आरंभ हुई। विष्णु पुराण में विष्णु के साथ श्री अर्थात् लक्ष्मी जुड़ी हुई है। महाभारत के नारायणीय अध्याथ में विष्णु को श्वेतद्वीप का निवासी कहा गया है। नारायण का निवास स्थान भी जल है। अतः नारायण और विष्णु एक ही हैं। नारायण के साथ भी लक्ष्मी ही रहती है। यजुर्वेद के पुरुष सूक्त में "श्रीश्चते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ" कह कर रूपक द्वारा यज्ञपुरुष विष्णु की श्री और लक्ष्मी दो पत्नियाँ मानी गई हैं। कृष्ण विष्णु और नारायण के अवतार हैं। अतः लक्ष्मी का संबंध कृष्ण के साथ भी स्थापित हुआ। इसी लक्ष्मी को निम्बार्क ने वृषभानुजा राधा कह कर, जो एक सहस्र सखियों के साथ विहार करती है, कृष्ण की शाश्वत पत्नी के रूप में उपस्थित किया।

आगे लिखते हैं, "तंत्रवाद में स्त्री पूजा इसी शक्ति का प्रतीक मानी जाती है। शाक्तमत का यह प्रभाव पूर्व तथा समस्त उत्तरा खण्ड में फैल चुका था। संभवत इसी शक्ति के अनुकरण पर राधा का निर्माण हुआ हो।"

इसी प्रकार अवैदिक सम्प्रदायों के प्रभाव के फलस्वरूप राधा की कल्पना वैदिक सम्प्रदायों में भी हुई और फिर हिंदी साहित्य के भक्तिकाल और रीति-काल के काव्य की एक प्राणदायिनी शक्ति बन गई।

हमारे धर्म ग्रन्थों में सर्वप्रथम धर्म ग्रन्थ ब्रह्मवैवर्त पुराण है जिसमें राधा का वर्णन विस्तृत रूप में किया गया है। ब्रह्मवैवर्त पुराण की रचना विद्वानों के मतानुसार बहुत पीछे की है। इस पुराण में बंगला के बहुत से शब्दों का मिश्रण है इससे अनुमान किया जाता है कि ब्रह्मवैवर्त पुराण किसी बङ्गाली विद्वान के द्वारा लिखा गया है। इसमें आकर राधा के चरित्र को भक्ति के उपयुक्त गढ़ा गया। राधा को कृष्ण के साथ प्रतिष्ठित कर के उनकी लीलाओं को अलौकिक रूप दे दिया गया। महात्मा चैतन्यदेव ने भी इसी पुराण के आधार पर माधुर्य-भाव की भक्ति को अपनाया और इस प्रकार रागानुगा

भक्ति को प्रधानता दी गई। इस प्रकार शाक्तमत की शक्ति रूपिणी राधा ब्रह्मवैवर्तकार ने एक नवीन रूप में रंग दी। जनता में प्रचलित राधा का असं-यत रूप इस प्रकार कुछ संयत रहा और वैष्णव भक्तों में इसका रूप इसी प्रकार रहा। किंतु आगे रीतिकालीन परिस्थितियों में आकर राधा फिर सामान्य नायिका की कोटि में आगई। और शाक्तमत की स्थूलता की पुनरावृत्ति रीति काल के काव्य में आकर उस चरम सीमा पर पहुँची कि राधा केवल अश्लील चित्रों की चितेरी समझी जाने लगी।

१४ वीं शताब्दी में निम्बार्क और विष्णु स्वामी ने राधा को कृष्ण की उपासना के साथ एक प्रमुख स्थान दिया। निम्बार्क ने राधा को कृष्ण की मूल प्रकृति कहा है।

जयदेव ने ग्यारहवीं शताब्दी में संस्कृत में एक गीतकाव्य राधा और कृष्ण की केलि क्रीड़ाओं को लेकर लिखा। किंतु उन पर दक्षिण के वैष्णव सम्प्रदाय का प्रभाव नहीं था। संभवतः उन्होंने जन परम्परा में प्रचलित राधा कृष्ण की कथा को ही अपने काव्य का आधार बनाया, उन्होंने राधा और कृष्ण के यौवन काल को लेकर ही अपने काव्य की रचना की। उनकी रचना का उद्देश्य उन्होंने स्वयं अपने काव्य में यह कह कर स्पष्ट कर दिया है।

'यदि हरि स्मरणे सरसं मनो यदि विलास कलासु कुतूहलम्।
मधुर कोमल कान्त पदावलीं श्रृणु तदा जयदेव सरस्वतीम्॥

किंतु यह स्पष्ट है कि उनके ऊपर किसी संप्रदाय विशेष का प्रभाव नहीं था। उन्होंने तो अपनी श्रृंगार प्रिय मनोवृत्ति की तृप्ति के लिए ही शता-ब्दियों से जनता में प्रचलित प्रसंग को ही लिया। यदि जयदेव पर वैष्णव सम्प्र-दाय का प्रभाव होता तो वह कृष्ण और राधा के शैशवकाल के चित्रों को भी उपस्थित करते—जैसा कि सूरदास आदि अन्य अष्टछाप के कवियों ने किया। जयदेव की राधा कामकला प्रवीणा एक विलासिनी राधा है उसमें सूर की राधा की झाँकी नहीं।

विद्यापति की राधा—

विद्यापति ने अपनी राधा को जयदेव के अनुकरण पर ही रंग और रूप दिया। उन्होंने भी राधा के जन परम्परा वाले रूप को ही लिया। उन्होंने राधा

की रचना में इतना कौशल दिखाया, इतने भावों का संसार भर दिया कि हिंदी, भाषा भाषी ही नहीं, वरन् विदेशी विद्वान भी उनकी प्रतिभा की प्रशंसा करते नहीं अघाये ।

विद्यापति ने राधा के चित्रण में उसके उस भोले रूप को लिया जिस समय कि एक स्त्री के हृदय में नाना प्रकार के भावों का आलोड़न-विलोड़न होता है । वह समय होता है नायिका की वयःसन्धि की अवस्था । यह वह अवस्था है जिसमें नवीन २ विचार उठते हैं । शरीर में नवीन २ अवयवों का ही विकास नही होता वरन् हाव भाव इंगित प्रकट करने की एक नई शक्ति का उदय होता है ।

विद्यापति की राधा भी परकीया नायिका ही थी । उन्होंने भी राधा को जयदेव के समान जन परम्परा में प्रचलित कथाओं और गीतों के आधार पर ही चित्रित किया । निम्बार्क और विद्यापति के काल में अधिक अन्तर नहीं इसलिये स्पष्ट है कि उन्होंने वैष्णव आचार्यों के प्रभाव से राधा कृष्ण की लीलाओं का चित्रण नहीं किया । उन्होंने अपनी पदावली को केवल जयदेव के आधार पर ही नहीं लिखा वरन संस्कृत और प्राकृत की सम्पूर्ण शृङ्गारिक रचनाओं को आधार बनाया । यही कारण है कि उनकी राधा अनेक रूपा है । राधा के बहुत से वर्णन तो उन्होंने ज्यों के ज्यों अन्य ग्रन्थों से ले लिये । गाथा सप्तशती, अमरुक शतक अथवा शृङ्गार शतक के बहुत से रूप चित्र विद्यापति की पदावली में दृष्टिगोचर होते हैं । इतना अवश्य है कि कवि ने अपनी प्रतिभा से उन चित्रों की सुन्दरता में चार चाँद लगा दिये ।

विद्यापति ने राधा को अनेक रूपों में देखा । सर्व प्रथम राधा एक अज्ञात यौवना है । वह एक ऐसी अवस्था में है जब कि उसका शैशव उसको छोड़ना चाह रहा है और यौवन अठखेलियाँ करना प्रारम्भ कर रहा है । उसके दोनों नेत्र श्रवणों तक फैलने लगे हैं । अब उसकी चंचलता जो कि चरणों में दिखाई देती थी वह नेत्रों में दिखाई देने लगी है । ऐसा प्रतीत होता है कि मानो कामदेव अपनी नींद को तो त्याग चुका किन्तु, अभी उसके नेत्र बन्द ही हैं---

'चंचल चरन, चित चंचल भान
जागल मनसिज मुदित नयान'

विद्यापति राधा की वयःसन्धि की दशा का परिचय माधव (कृष्ण) को देते हैं।

सुनइत रस-कथा थापये चीत
जैसे कुरंगिनी सुनए संगीत
सैसव जौबन उपजल वाद
केओ न मानए जय अबसाद

अर्थात् हे कृष्ण, राधा की वयःसन्धि की अवस्था है, यौवन उसके शरीर में वलात प्रवेश करना चाहता है किंतु शैशव भी अभी अपना आधिपत्य उसके शरीर पर जमाये हुये है। राधा के शरीर में कामदेव के आगमन के चिह्न दृष्टि-गोचर हो रहे हैं इसीलिये आज उसको केलि-क्रीड़ा की बातों में आनन्द आने लगा है। वह स्थिर मन से इन रस-कथाओं को इस प्रकार सुनती है जिस प्रकार हरिणी संगीत की लहरी पर आत्म विभोर हो जाती है।

कभी राधा तीव्रगति से चलती है तो कभी मंद गति से यौवन के भार को वहन करती चलती है। कभी वह अपने अंकुरित कुचों को देखने लगती है और कभी लज्जा से उनको ढँक लेती है।

चउंकि चले खने खन चलु मंद।
मनमथ पाठ पहिल अनुबन्ध ॥
हिरदयं-मुकुल हेरि हेरि थोर।
खने आँचर दए खने होत भोर ॥

राधा का शरीर अत्यन्त दुबला है परन्तु उसके कुच पुष्ट एवं कठोर हैं। विद्यापति उसके शरीर को देखकर कहते हैं कि सुवर्ण की सी कान्ति वाली देह में कुच ऐसे लगते हैं मानों सुवर्ण की लता में मेरु पर्वत (कुच) उत्पन्न हो गया हो।

महाकवि विद्यापति अपनी राधा के पूर्ण विकसित यौवन को देखकर विचलित हो गये और असंयत भाव से चिल्लाने लगे—

'कि आरे ! नवजौबन अभिरामा।

जत देखल तत कहए न पारिअ—
छओ अनुपम एक ठामा ।।'

आहा ! कितनी सुन्दर जवानी है। कवि ने जैसी जवानी देखी उसका वह वर्णन भी करने में असमर्थ है।

कवि को हरिण, चंद्रमा, कमल, हस्तिनी, सुवर्ण और कोयल सब राधा के अङ्गों के रूप में एक ही स्थान पर दिखाई दे रहे हैं। यही नहीं उसके अधरों की लालिमा के सन्मुख बिम्बाफल की लालिमा फीकी है। राधा की भौंहें भ्रमर के समान हैं और नासिका तो ऐसी सुन्दर है कि सुए को भी लज्जित करती है। लेकिन यह राधा कवि सूरदास की कृष्ण की प्रेयसी राधा नहीं वरन् इस राधा के सौंदर्य और रूप का रसास्वादन कवि के आश्रयदाता राजा शिवसिंह भी कर लेते हैं—

'भनइ विद्यापति से वर नागरि।
आन न पावए कोई ।।
कंस दलन नारायण सुन्दर।
तसु रंगिनि पए होई ।।'

इस प्रकार महाकवि विद्यापति की राधा एक सामान्य नायिका है। वह भक्तों को विभोर करने वाली राधा नहीं वरन् विलासी और शृंगारप्रिय लोगों के मन को आनन्द देने वाली एक प्रेम विह्वला राधा है। सम्पूर्ण पदावली में राधा का चित्र एक परकीया नायिका का है जो अपने यौवन और रूप की छटा से सहस्रों मनुष्यों के हृदय को बरबस जीत लेती है। राधा के रूप में भक्ति नहीं वरन् आसक्ति है, उपासना और आराधना नहीं वरन् वासना है, धार्मिकता नहीं वरन् मादकता है। पदावली में राधा के मादक चित्रों की भरमार है। उसके रूप की प्रशंसा करते २ कवि नहीं तृप्त होता। वह उसकी वयःसंधि अवस्था को देखता है और फिर उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग की शोभा को देखकर विभोर हो जाता है। वह राधा के नग्न रूप को देखने का भी बहुत ही इच्छुक है और एक दिन उसकी मनोकामना पूर्ण हो जाती है और वह अपने जीवन को सार्थक समझता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि के जीवन का उद्देश्य

राधा के नग्न शरीर को ही देखना था--

"आजु मझु सुभ दिन भेला।
कामिनि पेखल सनानक बेला॥
चिकुर गरए जल धारा।
मेह बरसि जनु मोतिम हारा॥
बदन पोंछल परचूरे।
माजि धएल जनि कनक-मकूरे॥
तैइ उदसल कुच-जोरा।
पलटि वैसाओल कनक कटोरा॥
निबि बँध करल उदेस।
विद्यापति कह मनोरथ सेस॥"

राधा का कितना मादक चित्र है। उसके शरीर के वर्णन में विद्यापति के हृदय-गत भावों की कितनी सुंदर झाँकी है। क्या अब भी कोई इस राधा को भक्ति की मूर्ति मानेगा? यदि मानता है तो उसको इन दो पंक्तियों पर अवश्य दृष्टि डालनी चाहिये—

'निबि बँध करल उदेश।
विद्यापति कह मनोरथ सेस॥'

जिस कवि की इच्छा पूर्ति राधा के निबि बँध को शिथिल करते ही पूर्ण हो जाय क्या वह कवि राधा को एक आराधना की मूर्ति बना सकता है? कदापि नहीं। विद्यापति की राधा एक काम-केलि-रता नायिका के रूप में ही है। उसको देखकर भक्ति कभी नहीं उमड़ सकती। अब वह पूर्ण युवती है और कृष्ण अथवा नायक से मार्ग में चलते कटाक्ष करती है। यौवन की दीप्ति उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग से झलक रही है।

ससन-परस खसु अम्बर रे,
देखल धनि देह।
नव जल धर-तर संचर रे,
जनि बिजुरी-रेह॥

वायु के स्पर्श से उस नायिका का वस्त्र हट गया। उसके झीने वस्त्रों से उसके शरीर की कमनीयता इस प्रकार झलक रही थी जिस प्रकार नव-मेघों में विद्युत की छटा दिखाई देती है।

विद्यापति की राधा अपने नायक के लिये बेचैन होने लगती है। नायक की प्रतीक्षा में अपने मुख को हथेली पर रखे हुये उदास मुद्रा में बैठी है। वह अपने हृदय के भावों को किसी पर प्रकट भी नहीं करती है। राधा की सखी नायक से कहती है—

निसिदिन जागि जपय तुअनाम।
थर-थर कांपि पड़ए सोइ ठाम॥
जामिनि आध अधिक जब होइ।
बिगलित लाजं उठए तब रोइ॥

महाकवि अपनी राधा को, नायक से मिलने पर किस प्रकार के हाव-भाव प्रकट करने चाहिये अथवा कैसी मुद्रायें दिखानी चाहिये, सब सिखा देता है—

प्रथमहि सुन्दरि कुटिल कटाख।
जिव जोखे नागर दे दसलाख॥

कटाक्ष के पश्चात् जो राधा क्रिया करेगी उनका ज्ञान भी कवि राधा को करा देता है।

पहिलहि बैठवि सयनक-सीम।
हेरइत पिया मुख मोड़बि गीम॥

अर्थात् तुम शय्या के किनारे पर ही पहले बैठना और जब प्रियतम तुम्हारे मुख को देखने की चेष्टा करे तो अपनी गर्दन दूसरी ओर मोड़ देना।

इस प्रकार एक नहीं राधा के अनेक चित्र पदावली में मिलेंगे जिनसे कामुकता और विलासता का ही परिचय मिल सकता है। प्रेमकी वह विशुद्धता जो कि आगे चलकर सूर और अष्टछाप के अन्य कवियों में मिलती है उसका विद्यापति में नाम भी नहीं।

मिलन, सखी सम्भाषण, कौतुक, अभिसार, छलना, मान, विदग्ध विलास, विरह, भावोल्लास, आदि के प्रसङ्गों में राधा का ऐसा चित्रण किया है जो

रीतिकालीन कवियों की कविता को भी श्रृङ्गारिकता एवं अश्लीलता में पीछे छोड़ जाता है।

काम-कला के जितने ढङ्ग और तरीके हैं उन सभी को कवि ने राधा को सिखाने का प्रयास किया है। वास्तव में कवि की मूल प्रवृति अपने आश्रय-दाताओं की कुत्सित विचारधाराओं को सन्तुष्ट करने के लिये ही राधा के इस चित्र को प्रस्तुत करने में लगी है। अनेक स्थानों पर कवि राधा के रूप का उपयोग शिवसिंह के लिये करता है। इससे स्पष्ट है कि विद्यापति की राधा जन परम्परा में प्रचलित काल्पनिक सुन्दरी का प्रतीक है। विद्यापति पर वैष्णव धर्म का प्रभाव नहीं था। वह एक स्मार्त शाक्त थे। इसलिये उन्होंने राधा के उस रूप को लिया जिसका उल्लेख गाथा सप्तशती अथवा अन्य श्रृङ्गारिक गीतों में था। वही रूप जयदेव ने भी अपनाया था। यह कहना नितांत भ्रमोत्पादक होगा कि राधा का रूप कवि ने निम्बार्क और विष्णुस्वामी के आधार पर चित्रित किया है। यह राधा शाक्तों की उस श्रृङ्गारिक भावना का प्रतीक है जो कि वाम मार्ग और कौलधर्म में होती हुई उनमें आई थी।

इसलिये विद्यापति की राधा एक काम-केलि में विशारद नायिका है। उसका धर्म और सम्प्रदाय से कोई नाता नहीं। विद्यापति ने उसके चरित्र को गाथा सप्तशती, अमरुक शतक, श्रृङ्गार शतक और श्रृङ्गार तिलक के आधार पर गढ़ा। उसकी रचना राजा शिवसिंह के लिये तथा अन्य रसिक जनों केलिये हुई। उसका सौंदर्य ध्यानावस्थित भक्तों को नहीं वरन् रूप-सौंदर्य के पारखियों के लिये है। उनके लिये है जो विश्व की स्थूलता में ही विश्वास करते हैं, जिनके नेत्र अपलक होकर सौंदर्य का पान करते हैं। डा० रामकुमार वर्मा ने राधा का चित्र जो खींचा है वह बिल्कुल ठीक है। "राधा का प्रेम भौतिक और वासनामय प्रेम है। आनन्द ही उसका उद्देश्य है और सौंदर्य ही उसका क्रिया-कलाप। यौवन ही से जीवन का विकास है।" ....'राधा का शनैः शनैः विकास, उसकी वयः संधि, दूती की शिक्षा, कृष्ण से मिलन, मान, बिरह आदि उसी प्रकार लिखे गये हैं, जिस प्रकार किसी साधारण स्त्री का भौतिक प्रेम। ....

कृष्ण और राधा साधारण पुरुष-स्त्री हैं। राधा तो उस सरिता के समान है जिसमें भावनाएँ तरंगों का रूप लेकर उठा करती हैं। राधा स्त्री है और केवल स्त्री। उसका अस्तित्व भौतिक संसार में ही है। उसका वाह्यरूप जितना आकर्षक है, आंतरिक नहीं।..................उसकी चितवन में कामदेव के बाण हैं, पाँच नहीं वरन् सभी दिशाओं में छूटे हुये सहस्रबाण।"

वियोग वर्णन

पदावली में विरह-वर्णन—

विरह प्रेम की कसौटी है। संयोग की अवस्था में हृदय में आशा निराशा का उतना द्वंद्व नहीं होता जितना कि विरह की अवस्था में। वियोगावस्था एक ऐसी अवस्था है जिसमें प्रेम तपकर सुवर्ण के समान उज्ज्वल हो जाता है। हृदय की सम्पूर्ण कलुषतायें घुलकर नष्ट हो जाती हैं। प्रेमी और प्रेमिका की यह शारीरिक दूरी उनकी अन्तःवृत्तियों को जगा देती है। संयोग के शारीरिक सुख को विरहिणी इतना महत्व नहीं देती। विरह में उसके हृदय में अपने प्रियतम की झाँकियाँ स्वतः होने लगती हैं। वासनाओं का अन्धकार प्रायः लुप्त हो जाता है और प्रेम की विशुद्ध अनुभूति में वह डूब जाती है। विद्यापति ने भी विरह-वर्णन को अपने काव्य में एक प्रमुख स्थान दिया है।

विद्यापति ने संयोग वर्णन में जो कुशलता दिखाई है वह उनकी भावुकता और पांडित्य दोनों का फल है, वरन् कहना चाहिये कि कहीं-कहीं पर तो वह एक अलङ्कार शास्त्री ही अधिक दृष्टिगोचर होते हैं। संयोग-वर्णन में कवि विद्यापति अपनी शृंगारिक प्रवृति के कारण स्थूल चित्रों में भी अपनी प्रतिभा को लगाये रहते हैं और इसी कारण उनके ऊपर अश्लीलता का दोषारोपण भी विद्वानों के द्वारा किया गया है। किंतु वियोग-वर्णन में कवि ने जिस मार्ग का अनुसरण किया है उसने उनके गौरव को अक्षुण्ण बनाये रखने में बड़ी सहायता दी है। वियोग-वर्णन की पद्धति में विद्यापति ने जो स्वाभाविकता और सरलता दिखाई है उसने कवि को इस दोष से भी मुक्त करा दिया कि वे एक अलङ्कार शास्त्री थे। हृदय के अनेक भावों को निरालङ्कारिक भाषा में इस सरलता से चित्रित किया है कि वे भाव हृदय पर बरबस ही अपना अधिकार कर लेते हैं। राधा के हृदय की सम्पूर्ण गहराइयों में बैठकर कवि ने उन भाव-रत्नों को खोजा

है जिन्हें देखकर रसिक पाठक रूपी जौहरी अपने सर्वस्व को लुटाने को तत्पर हैं।

संयोग में कवि ने जिस राधा को केवल विलास और केलि-क्रीड़ाओं का साधन बनाकर उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग पर अपने ध्यान को लगा रखा था। वियोग-शृङ्गार में कवि ने उसी राधा को एक आदर्श नारी के रूप में चित्रित किया है। उसकी अन्तर्वृत्तियों की उत्ताल तरंगों में कवि ने अपने को ही नहीं बहाया वरन् सम्पूर्ण कला-प्रेमियों को निमज्जित कर दिया। वियोग की जितनी अवस्थायें हो सकती हैं उन सभी का वर्णन कवि ने अपने काव्य में किया है।

१—विरहिणी को जो वस्तुएँ संयोग में आनन्द देने वाली थीं वही अब उसकी वियोगावस्था में उसकी वेदना को तीव्र कर रही है।

२—प्रकृति की सम्पूर्ण वस्तुएँ राधा को प्रियतम का स्मरण दिला रही हैं

३—विरहिणी अपने प्रेम की तीव्रता में इतनी तन्मय हो जाती है कि वह अपने अस्तित्व को भी भूल जाती है। राधा भी माधव के स्मरण में अपने आप को ही माधव समझने लगती है।

४—प्रिय दर्शन की लालसा विरह की अवस्था में राधा को जीवित रखे हुये हैं। वह संयोग की कल्पना में लीन होती है।

५—विरहिणी स्वप्न में अपने प्रियतम से मिलती है किंतु नींद के खुल जाने पर वह अत्यंत दुखी होती है।

६—विरहिणी पक्षियों को देखकर प्रियतम के आने के विषय में स्वप्न-विचार करती है।

७—अन्त में राधा की निराशा आत्म संतोष के रूप में परिणित हो जाती है और वह अपने प्रिय के कल्याण की इच्छा में अपनी चिंता नहीं करती।

राधा कुल-कामिनी है। उसका प्रियतम विदेश जा रहा है किंतु लज्जा के कारण वह स्वयं उसे न रोक कर अपनी सखी से कहती है कि वह उसे रोकले—

"सखि हे बालमु जितब विदेशे।
हमँ कुल कामिनि कहइते अनुचित तोंहहि देहुनि उपदेशे॥"

राधा के कथन में कितनी परवशता है? बेचारी क्या करे। लोकलज्जा के कारण कुछ कह भी नहीं सकती और अगर प्रियतम विदेश जाने से न रुका

तो आपत्ति का जो पहाड़ उस पर गिरेगा उसे भी वह अच्छी तरह जानती है। इसलिये वह सखी से कहकर ही प्रियतम को रोकने का उपक्रम करती है। किंतु सखी अपने प्रयास में असफल रही। राधा सम्पूर्ण बन्धनों से मुक्त होकर अपने प्रियतम से यथार्थ बात को कह देती है—

माधव तोहें जनु जाह विदेसे।
हमरो रँग रभस लए जएबह लएबह कौन संदेसे॥

राधा का कथन कितना तर्कमय है? वह पूछती है कि हे कृष्ण, आप विदेश में अपने साथ मेरे आनन्द-प्रमोद को ले जा रहे हैं। मैं उसके बदले में आपसे अवश्य कुछ चाहती हूं। हीरा, माणिक अमूल्य और कीमती होते हैं किंतु राधा तो अपने प्रिय हीरा कृष्ण को ही अपने हास-परिहास के बदले में चाहती है। उसे और कुछ नहीं चाहिये।

कृष्ण के गमन के समय राधा के नयनों से अश्रुधारा झर-झर करके प्रवाहित होती है।

'कानु मुख हेरइते भावनि रमनी, फुकरइ, रोअत झरझर नयनी।'

कितना करुणोत्पादक दृश्य है। राधा सुबक-सुबककर रोती है। उसके नयनों में वर्षा का सा झर लग जाता है।

कृष्ण निर्दय थे, वह नहीं रुके। सम्पूर्ण गोकुल में सन्नाटा छा गया। प्रकृति जो कि कृष्ण की उपस्थिति के समय आनन्द-दायिनी थी अब शोक-निमज्जित हो गई। पिंजरे का शुक रोने लगा, गायें मथुरा की ओर मुख करके भागने लगीं। यमुना का वही किनारा जो कि कृष्ण के संयोग में आनन्द का कारण था वही अब विरह की वेदना को और अधिक तीव्र कर रहा है। गोप और गोपियाँ इसी यमुना के किनारे पर आमोद-प्रमोद मनाते थे किंतु आज उनकी दशा विपरीत हो रही है। गोपियाँ और गोप कृष्ण के वियोग में आज रोते हैं—

'हरि मथुरा पुर गेल आजु गोकुल शून भेल।
रोदति पिंजर शुके, धेनु धावइ मथुरा मुखे।
अब सोइ जमुना कूले, गोप गोपी नहिं बूले।'

वियोग की अवस्था ऐसी ही अनोखी होती है। प्रिय के संसर्ग में आई

समस्त वस्तुयें वियोग को और भी अधिक उद्दीप्त कर देती हैं—

शृंगार किसके लिये किया जाय? जो इस शृंगार का प्रशंसक था वह तो चला गया फिर क्यों शरीर को कष्ट दिया जाय? हार को यमुना में बहा दो और सिंदूर को पोंछ दो—

संख कर चूड़ बसन कर दूर तोड़ह गज मोति हार रे।
पिया यदि तेजल कि काज शृंगारे यमुना सलिले सब डार रे।
सीथक सिंदूर पोंछि कर दूर पिया बिनु सबहिं निराश रे॥

प्रियतम के वियोग में चन्द्रमा और चन्दन शीतलता प्रदान करने के स्थान पर राधा के हृदय की वेदना को अधिक उद्दीप्त कर रहे हैं—

'चानन चान तन अधिक उतापए,
उपवन अलि उतरोले रे।
समय बसंत कंत रहु दुर देस,
जानल विधि प्रतिकूले रे॥'

विद्यापति ने विरह-वर्णन में बारह-मासा भी लिखा है। सम्पूर्ण महीने राधा के दुःख को उद्दीप्त करने को ही आ रहे हैं—

'मास असाढ़ उनत नव मेघ।
पिया विसलेख रहओं निरघेप॥'

सावन का महीना राधा के लिये अत्यन्त भयंकर है। उसका जीवन अब नहीं चलेगा—

साओन मास बरसि घन बारि।
पंथ न सूझे निसि आँधियार॥
चौदिसि देखिए बिजुरी रेह।
से सखि कामिनि जीवन सँदेह

इसी प्रकार जायसी की कलाकृति 'पदमावत' में नागमती को भी इन बारह महीनों में विरह के प्रचंड थपेड़ों को सहना पड़ा है। विद्यापति और जायसी दोनों ही विरह वर्णन में सिद्धहस्त महाकवि हैं।

भादों का महीना है। मेघ घनघोर गर्जन करके मूसलाधार वर्षा कर रहे हैं किंतु कृष्ण के वियोग में राधा को अपने दुःख में यह सब दुःखदायी प्रतीत

हो रहे हैं। समस्त पृथ्वी पानी से भर गई है। वर्षा की शोभा मन को लुभा रही है। किंतु राधा के लिये तो यह सब कामदेव के तीक्ष्ण बाणों के समान हैं। मस्त होकर मोर नाच रहा है। दादुर अपनी ध्वनि से समस्त वातावरण को सुन्दरता प्रदान कर रहे हैं। सघन अन्धकार छा गया है। बिजली क्षण-क्षण भर के अन्तर से दमक रही है। संयोगिनी तो इस अवस्था में आनन्द का उपभोग करेगी किंतु राधा के लिये तो यह सब दारुण दुःख के समान है। वह कहती है

"सखि हे हमर दुखक नहिं ओर।
इ भर बादर माह भादर,
सून मन्दिर मोर ॥
झंपि घन गरजंति संतत,
भुवन भरि बरसंतिया।
कंत पाहुन काम दारुन,
सघन खर सर हंतिया ॥
कुलिस कत सत पात मुदित,
मयूर नाचत मातिया।
मत्त दादुर डाक डाहुक,
फाटि जावत छातिया ॥
तिमिर दिग भरि घोर यामिनि,
अथिक बिजुरिक पाँतिया।
विद्यापति कह कइसे गमाओब,
हरि बिना दिन रातिया ॥

विरह में प्रकृति के सम्पूर्ण उपकरणों की शोभा राधा के हृदय में कामदेव का संचरण कर देती है। समस्त कुंज और कुटीर में बसंत के आगमन से सुंदरता का साम्राज्य है। पुष्प प्रफुल्लित हो रहे हैं। कोयल अपनी पंचम तान से समस्त बन-प्रांतर को रसमय कर रही है। सर्वत्र आनन्द ही आनन्द है। मलयानिल के स्थान पर दक्षिण की सुहावनी वायु बह रही है। लेकिन प्रियतम के बिना यह सब राधा के विरह को उद्दीप्तकारी ही हैं—

फुटल कुसम नव कुंज कुटिर बन,

कोकिल पंचम गावे रे ।
मलयानिल हिम सिखर सिधारल,
पिया निज देश न आवे रे ।।

प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रण ही विद्यापति के काव्य में अधिक हुआ है । प्रकृति के स्वतन्त्र रूप का चित्रण विद्यापति में अधिक नहीं । रस-सम्प्रदाय के आचार्यों ने रस-परिपाक में विभाव को एक महत्वपूर्ण स्थान दिया है । रसानुभूति में विभाव का बहुत हाथ होता है । विभाव के दो भेद होते हैं—आलम्बन-विभाव और उद्दीपन विभाव । शृंगार रस के आलम्बन विभाव के अन्तर्गत नायक व नायिका आते हैं । उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत नायक-नायिका की चेष्टायें और मुद्रायें आती हैं । इसके अतिरिक्त बहुत सी ऐसी भी बातें आती हैं जो पात्रों से बहिर्गत हैं । उसी बहिर्गत उद्दीपन में आचार्यों ने प्रकृति की सुरम्य गोद के उन चित्रों को लिया है जो वन, उपवन, नदी, स्रोत, पर्वत, घाटियाँ, द्रुमावली और अन्य रूपों में बिखरे पड़े हैं । महाकवि विद्यापति ने प्रकृति के इसी रूप को अपना कर शृंगार रस के स्थायी भाव रति को जाग्रत करने में परम कौशल दिखाया है ।

राधा कृष्ण के पास संदेश भेजने को उत्सुक है । उसे दुःख है कि यदि उसका प्रियतम विदेश में ही रहा तो उसका यौवन व्यर्थ ही नष्ट हो जायगा ।

"के पतिआ लए जाएत रे,
मोरा प्रियतम पास ।
हिअ नहिं सहए असह दुख रे,
भेल साओन मास ।।

जाग्रतावस्था में तो कृष्ण का मिलना असम्भव ही है यदि स्वप्न में ही उसका प्रियतम उससे मिलले तो उसको कुछ संतोष हो जाता । किंतु वह भी असम्भव ही है । क्योंकि विधाता इतना क्रुद्ध है कि उसने राधा की आँखों की नींद को ही चुरा लिया है । जब नींद ही नहीं आयेगी तो स्वप्न में प्रियतम के दर्शन वह किस प्रकार करेगी ?

प्रियतम के आने की कोई आशा नहीं । वह कोई समय भी तो निश्चित नहीं कर गया कि कब लौटेगा । राधा का यौवन विरह की वेदना से दिन प्रति

दिन क्षीण होता जा रहा है। राधा की व्यथा इस विचार से और भी वृद्धि पा रही है। सच भी है, इस क्षणिक जीवन में यौवन के दिन कितने हैं। राधा के हृदय का कितना मनोवैज्ञानिक वर्णन है—

अंकुर तपन तापे यदि जारव कि करब वारिद मेहे।
ई नव यौवन विरहे गमाओब कि करब से पिया नेहे॥

प्रिय को दोष देना व्यर्थ है। यह सब दुःख तो राधा के भाग्य के कारण ही उसको भोगना पड़ा। किंतु यह सब होते हुये भी उसके प्रेम में न्यूनता नहीं आती वरन् दिन प्रति दिन तीव्र ही होता जाता है। प्रेम उसने किया है तो उसके लिये वह सब प्रकार की आपत्तियों को सहन करने को तैयार है। वह अपने प्रियतम को दोष न देकर अपने कर्मों का फल ही इसे मानती है।

नागर हमर रहल दुर देश, केओ नहिं कह सखि कुशल सँदेश।
ए सखि काहि कहब अपतोस, हमर अभाग पिया नहिं दोष॥

राधा आशा-निराशा के झूले पर झूल रही है। कभी तो उसको प्रियतम के आने की कोई सम्भावना नहीं किंतु दूसरे ही क्षण उसे कुछ-कुछ आशा का संचार होने लगता है। काग को देखकर वह स्त्रियों की प्रकृति के अनुसार शकुन का विचार करती है। उससे कहती है कि यदि मेरा प्रियतम लौटकर आ जायेगा तो मैं तेरी चोंच को सोने से मढ़ा दूँगी। वह काग से कहती है, बोल! मेरा प्रियतम कब आयेगा? यदि मेरा प्रियतम आ गया तो मैं तुझको सोने के कटोरे में भर कर खीर खिलाऊँगी—

'सोने चंचु बँधाए देव वाएस जओ पिआ आओत आज रे।'

कौए को पुकारती है—

काक भाष निज भाषह रे, पिअ आओत मोरा।
क्षीर खीर भोजन देव रे, भरि कनक कटोरा॥

विरहिणी की यह अवस्था उसके प्रेमोन्माद की प्रथम सीढ़ी है। कवियों को इस प्रकार विरहिणी की पक्षियों से बात कराने में बड़ा आनन्द आया है। संस्कृत के कवि कालिदास ने भी इस पद्धति को अपने विरह-वर्णन में स्थान दिया है। हिन्दी में जायसी, तुलसी, सूर सभी की विरहिणी नायिकाएँ पक्षियों के द्वारा प्रियतम के विषय में कुछ न कुछ जानना चाहती हैं। जायसी की

नागमती भी भ्रमर और कौए से प्रियतम को सन्देश ले जाने को कहती है—

'पिय सों कहेउ सँदेसड़ा हे भौंरा हे काग।'

तुलसीदास के राम भी सीताजी के विषय में खग, मृग और मधुकरों की श्रेणी से पूछते हैं। सूर ने भी कई स्थानों पर इस प्रकार की उक्तियाँ अपनी नायिकाओं के द्वारा कहलवाई हैं।

बिरह की वेदना ने राधा के शरीर को क्षीण कर दिया है। वह मृणाल तन्तु के समान क्षीण हो गई है। सखी साहस करके भी छूने से डरती हैं कि कहीं स्पर्श से उस विरहिणी का शरीर न टूट जाय। विरह की ताप से राधा तप्त हो गई है। उसकी सखियाँ उसको शीतलता प्रदान करने के लिए नील कमल से हवा करना चाहती है किन्तु सखियों को भय है कि कहीं कमल की वायु के वेग से ही वह विरहिणी उड़ न जाए—

'नील नलिनि लए जब कर वाए, हृदय रहए भय उड़ि जनु जाए।'

इस प्रकार के ऊहात्मक वर्णन भी विद्यापति ने संस्कृत कवि-परम्परा से अपना लिए थे। उस प्रकार के वर्णन हम कालिदास में भी पाते हैं। तुलसी ने भी उंगली की मुंदरी को नायिका के कंकण का स्थान दे दिया। इस प्रकार के ऊहात्मक वर्णनों को इसलिये विरह-वर्णन में स्थान दिया गया है कि इससे विरह-जन्य कृशता का चित्रण सुन्दरता से हो जाता है। विद्यापति को पाँडित्य के प्रदर्शन में कुछ आनन्द आता है इसी कारण वे यहाँ पर अतिशयोक्ति अलंकार को प्रयोग करने की इच्छा को नहीं रोक सके। इस प्रकार के वर्णन विद्यापति में अधिक नहीं, कुछ स्थलों पर ही हैं।

राधा की प्रेम की तन्मयता इतनी बढ़ चुकी है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वह कृष्ण का नाम प्रतिक्षण पुकारते पुकारते इतनी तन्मय हो गई है कि अपने को स्वयं ही कृष्ण समझने लगी है और कृष्ण के नाम के स्थान पर वह राधा राधा रट लगाने लगती है। किंतु तत्क्षण ही उसको अपनी वास्तविक दशा की स्मृति हो जाती है और फिर विरह की तीव्र वेदना उसको दग्ध करने लगती है। राधा फिर 'माधव' 'माधव' की रट लगाने लगती है—

"अनुखन माधव माधव सुमिरत
सुन्दरि भेलि मधाई ।
ओ निज भाव सुभावहिं विसरल
अपने गुन लुबुधाई ॥"

इस पद में विद्यापति ने प्रेम की तन्मयता का ऐसा चित्र उपस्थित किया है जो संसार के सम्पूर्ण साहित्य में अपनी समता नहीं रखता ।

राधा को सखियाँ समझाती हैं कि जिसने तुम को इस दशा में पहुंचा दिया उसको तुम क्यों नहीं भुला देतीं । राधा इस बात को सुनने को तैयार नहीं । किस मार्मिक ढङ्ग से राधा सखियों से कहती है—

'पासरइते बदन होएत अवसान, कहि न जात बूझत व्यवधान ॥'

कृष्ण के भूलते ही इस शरीर का अवसान हो जायेगा, इसलिये मैं तुम्हारी बात को नहीं मान सकती । यहाँ तक कि राधा को यह निश्चय है कि अब वह किसी प्रकार नहीं बचेगी तब भी वह कृष्ण को छोड़ने की व्याकुलता से बेचैन हो जाती है और वह बड़े मार्मिक ढंग से कहती है—

'मरिब मरिब सखि निश्चय मरिब
कानु हेन गुण निधि कारे दिय जाय ।'

अर्थात् हे सखी, मैं मरूंगी अब मैं निश्चय मरूंगी । किंतु कृष्ण के समान गुण-निधि को किसको दे जाऊँ ।

विद्यापति ने राधा के विरह की सूक्ष्म से सूक्ष्म दशा को देखा और उससे अपने हृदय का संबंध स्थापित किया । विरह की ऐसी कोई दशा नहीं जिसका वर्णन महाकवि विद्यापति ने न किया हो । कोई भी मनोभाव कवि की सूक्ष्म दृष्टि से बच नहीं सका । आचार्यों द्वारा वियोग की १० अवस्थायें निर्धारित की गई हैं । किन्तु विद्यापति ने उन दस अवस्थाओं के अतिरिक्त भी अनेकों भावों को देखा और उनका समावेश राधा के द्वारा अपनी पदावली में कराया संस्कृत साहित्य के आचार्यों ने वियोग की निम्नलिखित १० अवस्थाओं का उल्लेख किया है—१—स्मरण, २—गुण-कथन, ३—अभिलाषा, ४—मूर्च्छा, ५—व्याधि, ६—उद्वेग, ७—प्रलाप, ८—जड़ता, ९—उन्माद और १० मरण ।

विद्यापति के विरह-चित्रण में इन दस अवस्थाओं का वर्णन बड़ी योग्यता

के साथ किया गया है। विरह के वर्णन में कवि का अनुभूति पक्ष सर्वथा उच्च-स्तर पर रहा। कवि ने अलङ्कारों के मोह को भी कुछ अधिक महत्व नहीं दिया। इसलिये कवि की अभिव्यक्ति में एक स्वाभाविकता और सरलता पाई जाती है। इन विरह के गीतों में कवि की पैठ अन्तस्तल के प्रत्येक कोने में रही है। राधा कृष्ण का स्मरण करके अपने दुःख के दिन व्यतीत करना चाहती है किन्तु फिर भी उसका दुःख द्रौपदी के चीर की तरह बढ़ता ही जाता है। उसका शरीर कृश हो गया है। प्रिय की प्रतीक्षा में नेत्रों की ज्योति मंद हो गई है। दिन लिखते २ उसके नख घिस गये हैं। यह सब होते हुये भी वह अपने प्रियतम को कुछ दोष नहीं देती वरन् उसका विरह अन्त में आत्मसंतोष का रूप ग्रहण कर लेता है। राधा के अन्दर त्याग की भावना जाग्रत होती है और वह अपने प्रियतम की कुशलता की कामना करती है। वह कहती है कि जहाँ कहीं हों ईश्वर उसको कुशल पूर्वक रखे—

"माधव हमरो रहब दुर देश।
केओ न कहे सखि कुसल सदेश॥
जुग जुग जिवथु बसथु लख कोस।
हमर अभाग हुनक नहिं दोस॥
हमर करम भेला विहि विपरीत।
तें जलन्सि माधव पुरबिल प्रीति॥
हृदयक वेदन बान समान।
आनक वेदन आआ न जान॥

कितनी मार्मिक व्यंजना है। चाहे प्रियतम लाख कोस पर रहे, परन्तु चिर अमर रहे। कृष्ण का कोई दोष नहीं, दोष तो मेरे ही भाग्य का है। विधाता ने ही हमारे प्रेम में वाधा डाल दी वरना माधव कभी भी पुरानी प्रीत को नहीं भुलाता। मेरे हृदय में यह बात बाँण के समान चुभ रही है किन्तु कौन मेरी वेदना को जान सकता है। घायल की गति को तो घायल ही जानेगा।

कवि ने भारतीय नारी के चरित्र का आदर्श चित्रण किया है। वह अपने प्रिय की कुशलता चाहते हुए ही अपने जीवन को समाप्त कर देने में अपने को

गौरवान्वित करना चाहती है। त्याग की भावना भी विद्यापति की राधा में उत्कृष्ट कोटि की है।

१—स्मृति—

ऊपर हम शास्त्रीय दृष्टिकोण से वियोग की दस अवस्थाओं का उल्लेख कर चुके हैं। विद्यापति में भी वह सब अवस्थायें पाई जाती हैं। विद्यापति की राधा कृष्ण का स्मरण सर्वदा करती रहती है। रात दिन प्रियतम के स्मरण में ही तो व्यतीत होते हैं। यदि स्मरण न करती रहती तो अब तक उसके प्राण पखेरू न जाने कहाँ उड़ जाते। कभी वह उनके पास जाने की इच्छा करती है—

'मोहन मधुपुर वास रे
हमहुँ जायब तनि पास रे
भल लनि कुवजा के नेह रे
तजलनि हमरो सनेह रे'

उसे संयोग की अवस्था की स्मृति होती है और वह कहती है कि उसकी यह विरह जनित वेदना कब समाप्त होगी। और चन्द्रमा, पुष्प, कमल और भ्रमर उसे उतने ही अच्छे कब लगेंगे जितने पहले लगते थे—

'कत दिन घूघव यह हहकार
कत दिन घूघव गुरु दुख भार॥
कत दिन चाँद कुसम हव भेलि।
कतदिन कमल भ्रमर करू केलि॥'

२—गुण-कथन

विरह में अपने प्रिय के गुणों की याद आना भी स्वाभाविक है। विरहिणी की असीम वेदना के कारण उसका समय काटे नहीं कटता इसलिये वह प्रियतम के गुणों को ही स्मरण करती है और इस प्रकार अपने समय को व्यतीत करती है। सूरदास और जायसी आदि अन्य कवियों के विरह वर्णन में भी गुण-कथन का समावेश किया गया है। विद्यापति की राधा भी कृष्ण के गुणों को स्मरण करती है—

''पहिले पिया मोर सुख मुख हेरि हेरि तिलयक छोड़लन अङ्ग ।
अपरुब प्रेमपास तनु गाँथल, अब तेजल मोर संग

३—अभिलाषा—

प्रियतम से मिलने की अभिलाषा तो विरहिणी के लिये जीवन देने वाली ही है । अगर उसकी अभिलाषाओं का अन्त हो जायेगा तो उसी दिन उसके जीवन का भी अन्त हो जायेगा । विद्यापति की राधा को विरह के यज्ञकुण्ड में उसकी अभिलाषायें ही भस्म नहीं होने देतीं अन्यथा इस बाला का जीवन न जाने किस समय नष्ट हो जाता—

कत दिन पिय मोर पुछब बात
कबहु पयोधर देहब हाथ
कत दिन लेइ बैठाइब कोर
कत दिन मनोरथ पूरब मोर

विद्यापति की राधा यहाँ साधारण नायिका के रूप में आकर स्थूलता की ओर फिर बढ़ गई । लेकिन जहाँ विरहिणी की अनुभूति का प्रश्न है वहाँ इस प्रकार की अनुभूति भी स्वाभाविक ही है । मूलतः विरहिणी को जितनी वेदना इस शारीरिक अतृप्ति के कारण होती है उतनी मानसिक के लिये नहीं ।

४—मूर्च्छा

विरह की तीव्रता में कृष्ण को मूर्च्छा भी आजाती है । उसको अपने शरीर का होश तक नही रहता ।

'सो रामा हे ! सो किय विछुरन जाय
कर धरि माथुर अनुमति माँगलि ततहि पड़लि मुरछाय
नहिं बहे नयनक नीर
मुरछि पड़े तरु तीर ?

५—व्याधि

विरह की इस अवस्था में भी नायिका की अवस्था प्राय : मरण के समीप ही होती है । राधा की इस व्याधि अवस्था का चित्रण भी कवि ने बड़ी मार्मिकता के साथ किया है—

कि कहब सुन्दरि तोहर काहिनी
कहहि न पारिअ देखलि जहिनी
अनिल अनल सम मलअज वीरव
जे छल सीतल से भेला तीख
चाँद सँतावय सविताहु जीनि
नहिं जीवन एकमत भेला तीनि
किछु उपचार न मानव आन
एही वेआधि अधिक पंचवान

अर्थात् सखि कृष्ण से कहती है कि उस सुन्दरी की कथा क्या कहूँ। उसकी जो दशा देखी है वह अकथनीय है। मलयानिल उसे दग्ध करता है, वायु भी अग्नि के समान है। जो शीतल वस्तुएं हैं वही उसके लिये दग्धकारी हैं चन्द्रमा और सूर्य सभी उस विरहिणी के लिए दुखदाई हैं। अब उसका जीवन छिन्न-भिन्न हो गया है। कोई उपचार काम नहीं आता। उसकी व्याधि को अब कामदेव ही ठीक करेगा।

६—उद्वेग—

विरह में उद्वेग की अवस्था बड़ी दयनीय है। विरहिणी अपने जीवन को प्रिय की प्रतीक्षा में व्यतीत करती है। उसे आशा होती है कि उसके प्रियतम अवश्य आयेंगे किन्तु वह फिर भी नहीं आये उस समय विरहिणी का जो हाल होता है वह बड़ा हृदय द्रावक होता है—

"सजनी, के कह आओब मधाई।
बिरह पयोधि पार किए पाओब
मझुमन नहिं पति आई॥
एखन-तखन करि दिवस गमाओल
छोड़लूँ जीवन आसा
बरस बरस कर समय गमाओल
खोयलूँ कानुक आसे।"

७—प्रलाप—

कह तु कह सखि बोल तु बोल तु रे

हमर पिया कौन देश रे
मदन सरानल इह तनु जरजर
कुसल सुनत सन्देस रे

× × ×

× × ×

पिय यदि तेजल, सोलह सिंगार सब
यमुन सलिल सब डार रे
सीसक सेंदुर सजनी दुर करु
पिय बिन सकल निरास रे ।,

संसार के सम्पूर्ण भोग विरहिणी के लिये व्यर्थ हैं। इसलिये वह अब अपने शृङ्गार की वस्तुओं को देख २ कर खीजने लगती है और फिर वह रो रोकर अपने सम्पूर्ण उपकरणों को फेंकना चाहती है—

८—जड़ता— नीकर पुरुष पिरीती। जिव दय सन्तर युवती
नोचल नयन चकोर। ढरिए ढरिए पलनीर
पथए वहे हेरि हेरी। पिय गेला अवधिपिसेरी

९—उन्माद—राधा के उन्माद की अवस्था का चित्रण कवि ने बड़ी सफलता से किया है। एक नहीं अनेक स्थानों पर प्रेमोन्माद की अवस्था का ऐसा सुन्दर चित्रण किया है जो किसी भी साहित्य को गौरव प्रदान कर सकता है—

'अनुखन माधव माधव सुमरत
सुन्दरि भेलि मधाई।'

प्रेमोन्माद का यह वर्णन हिन्दी साहित्य में अनूठा है। प्रेम की तन्मयता की चरम सीमा उन्माद का रूप धारण कर जाती है।

१०—**मरण**—राधा की दशा दयनीय है। कृष्ण को अनेक बार सन्देश भी भेज दिया गया है किन्तु उन्होंने फिर भी उस प्रेम विह्वला की सुधि नहीं ली। राधा नहीं चाहती कि वह अपने जीवन को समाप्त कर दे क्योंकि अगर उसका जीवन ही समाप्त हो गया तो फिर उसके जीवन-धन की कौन याद करेगा। कितना मोह है। किन्तु आपत्तियों ने उसके शरीर को क्षीण कर दिया

और अन्त में राधा को अपनी मृत्यु भी समीप ही दिखलाई देने लगी—

'माधव अब न जीउत राही'

'मधुपुर गेल भगवान रे
हुन बिनु त्यागब प्रान रे'

विरह की मरणावस्था सबसे अधिक दयनीय होती है। विरहिणी जीवन पर्यंत अपने प्रिय के वियोग में तड़प तड़प कर व्याकुल रहती है और उसका शरीर भी धीरे २ क्षीण हो जाता है। अन्त में उसके प्राण पखेरू उड़जाते हैं और उसकी जीवन की साधना व्यर्थ हो जाती है।

विद्यापति ने राधा की वियोगावस्था का वर्णन तो किया ही है साथ ही उन्होंने कृष्ण को भी राधा के वियोग में व्यथित दिखाया है। कृष्ण भी राधा की दयनीय दशा को सुनकर मूर्च्छित हो जाते हैं। वे राधा की सखी के द्वारा राधा के पास संदेश भेजते हैं—

'दुइ एक दिवस निचय हम जा ओब
तुहु परबोधबि राई।'

राधा की संयोग स्मृति भी कृष्ण को बेचैन कर रही है। वे राधा की सखी के सन्मुख अपने हृदय के सम्पूर्ण उद्‌गारों को प्रकट करते हैं।

'सजनी कोन परि जीबए कान।
राहि रहल दुर हम मथुरा पुर
एतहु सहए परान'

।वेद्यापति का विरह वर्णन कवि की सफलता का मूल कारण है। बिरह के पदों के कारण ही कवि को वैष्णव भक्तों ने भी इतना आदर दिया जितना अन्य किसी भी कवि को नहीं मिला। विरह के पदों की गहरी अनुभूति ने चैतन्यदेव को तो इतना प्रभावित किया कि वह अपनी तन्मयता में मूर्न्छित हो जाते थे। वैष्णव भक्तों ने इनके अनेकों पदों को अपने कीर्त्तन में स्थान दे दिया।

संयोग के वर्णन में कवि वाह्य-सौन्दर्य में इतना रमा है कि उसके ऊपर एक यह दोष लगा दिया गया कि कवि अश्लीलता को प्यार करता है। किन्तु विरहके पदों की गम्भीर रसानुभूति के कारण उसके ऊपरसे यह दोष हट गया।

राधा और नागमती का विरह

महाकवि विद्यापति हिन्दी में वियोग-वर्णन की परम्परा के यदि प्रवर्तक कहे जायँ तो अत्युक्ति नहीं। इन्होंने विरह की अवस्थाओंका बड़े मनोवैज्ञानिक ढङ्ग से वर्णन किया जिसे आगे के कवियों ने अपना लिया और फिर यह परम्परा विकसित और पल्लबित होती रही। जायसी और सूरदास ने उन्हीं के अनुकरण पर अपनी बिरहिणी नागमती और राधा की आन्तरिक अवस्थाओं का बड़े मार्मिक ढङ्ग से चित्रण किया। अब हमको देखना चाहिये कि विद्यापति के परवर्त्ती कवियों ने कहाँ तक विद्यापति का अनुकरण किया और कहाँ पर नवीनता का सम्मिश्रण किया।

मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने 'पदमावत' नामक महाकाव्य में नागमती के विरह को बड़ी व्यापकता दी है। हिन्दी साहित्य में नागमती के विरह बर्णन को उच्च कोटि का माना जाता है। इसलिये यह आवश्यक है कि बिद्यापति की राधा और जायसी की नागमती के बिरह की उन अवस्थाओं को देखा जाय जिनके कारण दोनों कवियों को महाकवि के नाम से विभूषित किया गया।

विद्यापति और जायसी के विरह वर्णनकी तुलना में यह देखना आवश्यक है कि दोनों कवियों में किस कवि ने मानसिक स्थितियों को अधिक स्पष्ट करके देखा है। किसने प्रेम की तीव्रता को अधिक कुशलता पूर्वक दिखलाने में सफलता पाई है।

विद्यापति की राधा और जायसी की नागमती दोनों ही अपने प्रियतमों के प्रेम में विभोर हैं और दोनों ही स्वकीया हैं। विद्यापति और जायसी ने बड़े मनोवैज्ञानिक ढङ्ग से उन दोनों की आंतरिक अवस्थाओं का दिग्दर्शन कराया है। विरह की तीव्रता ने राधा और नागमती दोनों को ही कृशांगी बना दिया है। राधा की दशा को उसकी सखी कृष्ण से कहती है—

'कातर दिठि करि चौदिसि हेरि-हेरि,
नैन गरए जलधारा।
तोहर बिरह दिन छन - छन तनु छिन,
चौदसि चाँद समान ॥

इसी प्रकार जायसी की नागमती भी विरह से इतनी क्षीण और दुर्बल हो गई है कि उसके शरीर में हड्डियाँ ही शेष रही हैं—

'रकत न रहा बिरह तन जरा,
रती - रती होइ नैनन्ह ढरा।'

जायसी ने नागमती की कृशता को दिखाने के लिये अत्युक्ति से काम लिया है। किन्तु फिर भी उस वर्णन में गाम्भीर्य का लोप नहीं हो सका। विरह-जन्य दुर्बलता को ही कवि ने अधिक दिखलाया है। बिहारी की तरह अत्युक्ति को खिलवाड़ और मज़ाक का विषय नहीं बनाया। जायसीके वर्णन में नायिका की कृशता का चित्र उपस्थित हो जाता है। उसको पढ़कर हृदय द्रवीभूत हो जाता है। नागमती की कृशता कवि ने इस प्रकार वर्णित की है—

''हाड़ भये सब किंगरी, नसें भई सब तांति।
रोवँ-रोवँसों धुनि उठै, कहौं बिथा केहि भांति

जायसी और विद्यापति के विरह वर्णन में सबसे बड़ा अन्तर यह है कि जायसी का विरह वर्णन भारतीय पद्धति से प्रभावित न होकर फारस की पद्धति से प्रभावित था। इसलिये जायसी के विरह वर्णन में कहीं २ पर वीभत्स वर्णन भी मिलता है। किन्तु विद्यापति का विरह वर्णन शुद्ध भारतीय है। जायसी में अनेक स्थान पर इस फारस के प्रभाव को देख सकते हैं—

'बिरहसरागन्हि भूजै माँसू। गिरि गिरि परै रकत के आँसू॥'

जहाँ तक विरह की अवस्थाओं का चित्रण है वहाँ जायसी की नागमती विद्यापति की राधा से अधिक प्रभावोत्पादक है। नागमती विरह की अवस्था में व्याकुल है। वह अपने प्रियतम की प्रतीक्षा करते २ थक गई है। अन्त में वह प्रेमोन्माद की अवस्था में पशु, पक्षियों से सहानुभूति दिखलाती है। वह कौए और भ्रमर से कहती है—

"पिउ सों कहउ संदेसड़ा हे भौंरा हे काग ।
उहि धनि बिरहैं जरिमुई तेहिक धुँआ हम लागि ।।"

विरह की दग्धावस्था को कवि ने अतिशयोक्ति के द्वारा चित्रित कर दिया है। इस वर्णन में कवि की चमत्कार प्रियता दिखलाई नहीं देती वरन् विरह की वास्तविक अवस्था के ही दर्शन होते हैं।

राधा भी काग के द्वारा अपने प्रियतम के आने के विषय में जानना चाहती है। किन्तु इस वर्णन में उतनी तीव्रता और मनोवैज्ञानिकता नहीं जितनी कि जायसी के वर्णन में है। जायसी की नागमती अपनी दशा का भी ज्ञान करा देना चाहती है किन्तु विद्यापति की राधा केवल स्त्री हृदय की सरलता के ही दर्शन करा सकती है—

'काक भाष निज भाषह रे, पिअ आओत मोरा ।
छोर खीर भोजन देव रे, भरि कनक कटोरा ।।

नागमती अपनी सपत्नी पद्मावती के प्रति जो ईर्षा रखती है उसको स्पष्ट करके अपने पत्नी हृदय की सच्ची झाँकी देती है। जायसी ने नागमती को एक साधारण स्त्री के रूप में देखा और उसका सच्चा वर्णन करके नारी के हृदय-गत भावों को प्रदर्शित किया।

'पद्मावति सौं कहेउ बिहंगम । कँत लोभाइ रही कर संगम ।।'

यह विवशता विद्यापति की राधा में भी है जिस सरलता पूर्वक जायसी ने नागमती के हृदय को दिखाया है उसी प्रकार विद्यापति राधा के हृदय को दिखलाने में पूर्ण रूप से सफल हुए हैं। राधा भी कुब्जा के प्रति ईर्षा का भाव दिखलाती है।

'कत कहबो कत सुमिरब रे
हम भरिए गरानि ।
आनक धन सों धनवंती रे
कुबजा भेल रानि ।।'

विद्यापति और जायसी दोनों ने ही विरह में प्रकृति को उद्दीप्तकारी ही देखा है। विद्यापति ने सर्वप्रथम बारहमासा लिखा। उसी प्रकार जायसी ने भी बारह महीनों का वर्णन करके विरहिणी के दुःख को दिखाने का प्रयत्न किया

है। दोनों के बारहमासे में बड़ी समानता है। विद्यापति ने भी सबसे प्रथम आसाढ़ का वर्णन किया है। उसी प्रकार जायसी ने भी अपने काव्य में बारह मासे का प्रारम्भ आसाढ़ से ही किया है। दोनों ने प्रकृति को उद्दीपन रूप में देखा है। भाव साम्य भी दोनों के वर्णन में मिलता है—

"मास आसाढ़ उनत नव मेघ।
पिय बिसलेख रहओं निरथेघ॥
कौन पुरुष सखि कौन से देस।
करब मोय तहाँ जोगिन भेष॥"

अर्थात् आसाढ़ मास में जब नवीन मेघ छा जाते हैं तो राधा प्रियतम के बिना व्यथित हो जाती है। राधा अपनी सखी से कहती है कि प्रियतम के वियोग में मैं जोगिन के वेश में हो गई हूँ और प्रिय न जाने किस देश में जाकर बैठ गया है।

जायसी की नागमती की दशा भी इसी प्रकार विरह के कारण बिगड़ गई है। उसे भी आसाढ़ मास के मेघों को देखकर अत्यन्त दुख होता है। बिजली की चमक उसे तलवार के समान लगती है और बूंदें बाणों के समान उसके हृदय को वेध देती हैं। कामदेव के कारण उसकी दशा अत्यन्त दयनीय हो जाती है। जायसी की नागमती विरह की तन्मयता में अपने आप को सामान्य भाव भूमि पर लाकर एक आदर्श उपस्थित करती है। वह रानी न रह कर एक साधारण स्त्री के दृष्टिकोण से ही प्रकृति को देखती है। उसके हृदय की दशा सामान्य भाव भूमि पर होने के कारण उस की वेदना संसार की वेदना हो जाती है। वह एक नारी है इसलिये जो दुर्बलतायें एक नारी हृदय में हो सकती हैं वह सब नागमती में विद्यमान हैं। प्रिय के वियोग में रानी और दासी दोनों बराबर हैं। हृदय का साम्राज्य दोनों का समान है। यही कारण है कि जायसी की नागमती की विरह दशा का चित्रण रसाभिव्यक्ति में इतना सफल है। पुष्प नक्षत्र के आते ही गाँव के लोग अपने २ छप्पर और छत की मरम्मत करने लगते हैं। जायसी ने नागमती से एक रानी के समान महल की बात न कहलवा कर साधारण स्त्री की ही बात कही है। यही कारण है कि जायसी के विरह वर्णन में लोक पक्ष की ओर अधिक ध्यान है—

पुष्प नखत सिर ऊपर आवा । हौं बिनु नाह मन्दिर को छावा ।"

विद्यापति इस सामान्य भाव भूमि को नहीं पहँचान सके । इसी कारण उनकी पदावली में राधा का चित्रण एकांगी अधिक है । राधा को लोक धर्म और अन्य किसी से कोई मतलब नहीं । वह तो केवल कृष्ण को चाहती है और वह भी अपनी व्यक्तिगत तृप्ति के लिये । किन्तु नागमती एक आदर्श गृहिणी है ।

विरहिणी को अपने दुख में दूसरों के सुख को देखकर भी अपनी दशा पर खीज पैदा होती है । वे उन स्त्रियों को, जो कि अपने प्रियतम के साथ हैं, देखकर भी दुखी होती हैं । यह दशा राधा और नागमती दोनों में पाई जाती है—

राधा— "भादव मासि बरसि घन घोर ।
सभदिसि कुहुकए दादुर मोर ॥
चेंहुक चेंहुक पिया कोद समाय ।
गुन मति सूतलि अङ्क लगाय ॥"

राधा भादों के महीने में प्रियतम के वियोग में अधिक दुखी होती है । वर्षा काल वैसे ही वियोगिनी के लिये दुखदाई है उस पर भी दादुर और मोर की ध्वनि और भी कामदेव को उत्तेजित करती है । संयोगिनी तो घनघोर वर्षामें चौंक चौंक कर अपने प्रियतम की गोद से चिपकँ जाती है लेकिन वियोगिनी के पास कोई चारा नहीं ।

नागमती— "सखिन्ह रचा पिउ सङ्ग हिंडोला ।
हरिअर भूमि कुसुंभी चोला ॥
हिअ हिंडोल अस डोलै मोरा ।
बिरह झुलाइ देइ झकझोरा ॥"

विरहिणी की दशा अत्यन्त दयनीय है । यह स्वाभाविक ही है कि वह संयोगावस्था में किसी को देखकर ईर्ष्या करे ।

जायसी के बारहमासे में सबसे बड़ी प्रमुखता यह है कि इसमें हिन्दू दाम्पत्य जीवन की अत्यन्त ही मार्मिक और हृदय स्पर्शी झाँकी है । इसको वियोग में उद्दीपन की दृष्टि से रखा गया है और उसने अपने कार्य को पूरा भी किया

है। इसी उद्देश्य से विद्यापति का भी बारहमासा है। किन्तु जो सफलता जायसी को मिली वह सफलता विद्यापति को नहीं मिल सकी। इसका कारण यही है कि जायसी ने जिन सूक्ष्म वृत्तियों को नागमती के विरह वर्णन में देखा उनको विद्यापति नहीं देख सके। इसका यह तात्पर्य नहीं कि विद्यापति के काव्य में मानसिक स्थितियों को और अन्तःवृत्तियों को स्थान नहीं है। विद्यापति ने भी अनेकों मर्मस्पर्शी भावनाओं को चित्रित किया किन्तु इस क्षेत्र में जायसी की पैठ उनसे अधिक थी। विद्यापति ने आश्विन मास का वर्णन किया है और जायसी ने भी किन्तु जायसी में जो गहरी पैठ है वह विद्यापति के वर्णन में नहीं—

"आसिन मास आस धर चीत
नाह निकारन न भेलाह हीत
सर--बर खेलए चकवा हास
बिरहिन बैरि भेल आसिन मास

राधा सखी से कहती है कि आश्विन के मास तक तो मुझ विरहिणी ने धैर्य रखा किन्तु फिर भी निष्ठुर प्रियतम नहीं आया। सरोवरों के किनारे चकवा चकवी प्रसन्न मन से केलि-क्रीड़ा में रत हैं। परन्तु विरहिणी के लिये तो आश्विन का महीना शत्रु के समान है।

जायसी का क्वार मास का वर्णन अधिक प्रभावोत्पादक है—

"लाग कुवार, नीर जगघटा।
अबहूं आउ, कंत ! तन लटा॥

+ + +
+ + +

स्वांति बूँद चातक मुख परे।
समुद सीप मोती सब भरे॥
सरवरि सँवरि हंस चलि आये।
सारस कुरलहिं खंजन देखाए॥
बिरह हस्ति तन सालै, घाय करै चित चूर।
बेगि आइ, पिउ ! बाजहु, गाजहु होइ सदूर॥

निस्संदेह जायसी के वर्णन में अधिक प्रभावोत्पादकता है। संसार की सम्पूर्ण विरहिणियाँ तो अब संयोगावस्था में हो गई किन्तु बेचारी नागमती का प्रियतम अब भी नहीं आया। बिरह का हाथी उसके शरीर को वेदना दे रहा है।उसके अत्याचार से छुटकारा सिंह रूपी प्रियतम ही दिला सकते हैं। विद्यापति के वर्णन में इतनी व्यापकता नहीं। जायसी की नागमती की वेदना में अत्यन्त गहराई है।

फाल्गुन का महीना हैं। शीत का प्रकोप अभी जारी है। नागमती का शरीर विरह जन्य दुःख के कारण पीला हो रहा है उस पर भी अभी वियोग उसका पीछा नहीं छोड़ता। सम्पूर्ण प्रकृति में पतझर हो जाने के पश्चात् नवीन कोंपल और फूल आने लगे। प्रकृति आनन्द से हरी भरी है लेकिन विरहिणी नागमती को अभी वियोग का फन्दा ही नहीं छोड़ता। सखियाँ फाग गा गाकर आनन्दित हो रही हैं लेकिन वियोगिनी का शरीर तो होली की भांति जल रहा है। यदि प्रियतम इस दशा में भी आजाय तब भी वियोगिनी नागमती अपना सौभाग्य समझेगी। अब तो दिन रात उसके यही रट है कि उसका शरीर प्रियतम के काम में आये। इसीलिये उसकी इच्छा है कि उसका शरीर विरहाग्नि से जलकर भस्म हो जाये और हवा उसकी राख को उड़ा ले जाये, तो सम्भव हो सकता है कि उसका प्रियतम उसके ऊपर कम से कम पैर तो रख देगा—

फागुन पवन झकोरा बहा।
चौगुन सीउ जाइ नहिं सहा॥
तन जस पियर पात भा सोरा।
तेहि पर बिरह देइ झकझोरा॥

× × ×
× × ×

यह तन जारों छार कै कहौं कै पवन उड़ाय।
सकु तेहि मारग उड़ि पड़ै कन्त धरै जहँ पाँव॥

विद्यापति की राधा को फाल्गुन दुःखदायी प्रतीत होता है। किन्तु उसकी वेदना अधिक तीव्र नहीं। होली के आमोद प्रमोद को देखकर राधा का हृदय

दुख से प्लावित हो गया और वह बाला उत्सुकता पूर्वक अपने प्रियतम की प्रतीक्षा करने लगी । कुसुम सौरभ से मस्त बनी कोकिला के पंचम स्वर को सुनकर उस बाला की वियोग जनित पीड़ा में और अधिक वृद्धि हो जाती है ।

"फागुन मास धनि जीव उचार ।
बिरह-बिखिन भेल हेरओं बाट ।।
आयल मत्त पिक पँचम गाय ।
से सुनि कामिनिजीवहु सताय ।।"

नागमती अपने शरीर की उपयोगिता इसी में समझती है कि उसका शरीर न सही पर उस शरीर की भस्म पर ही प्रियतम के पैर गिर पड़ें तो उसका जीवन धन्य हो जायेगा । कितनी संवेदनीय अवस्था है । विद्यापति के बारह मासे में कवि ने राधा के भग्न हृदय का स्पष्टीकरण किया है किंतु जायसी के समान वह अपने हृदय को नहीं उंडेल सके ।

अपने बारह मासे में जायसी ने वेदना के अत्यन्त मृदुल और कोमल स्वरूप को देखा । हिंदू दाम्पत्य जीवन का माधुर्य तथा मर्मस्पर्शी भावों की गम्भीरता का जितना सुन्दर चित्रण जायसी ने किया उतना हिन्दी साहित्य के किसी भी वियोग वर्णन में नहीं । लेकिन इससे यह नहीं समझना चाहिये कि विद्यापति का वियोग वर्णन जाँयसी से प्रत्येक दशा में निम्न कोटि का है । विद्यापति के वियोग वर्णन में अनेकों मर्मस्पर्शी स्थल हैं और वह भी हिन्दी साहित्य में अपनी समानता नहीं रखते । किंतु जहाँ तक बारह मासे का प्रश्न है वहाँ तक जायसी की प्रतिभा की कोई समानता नहीं कर सकता । विद्यापति के वियोग वर्णन में भी राधा की अनेक दशाओं का चित्रण है । उनमें कुछ भाव तो ऐसे हैं जो संसार के साहित्य में अपनी क्षमता नहीं रखते । प्रेम की तन्मयता की जो भावना विद्यापति में पाई जाती है वह अनूठी है—

अनुखन माधव माधव सुमरत,
सुन्दरि भेलि मधाई ।
ओ निज भाव सुभावहि बिसरल,
अपने गुन लुबुधाई ।।

प्रत्येक क्षण माधव का नाम रट-रटकर राधा अपने आप को ही माधव समझने लगी। उसने अपने गुणों को भुला दिया और अपने को माधव समझ कर अपने ही गुणों पर मुग्ध होने लगी। फिर अपने को माधव और माधव को राधा मानकर राधा-राधा की रट लगाने लगी—

'अनुखन राधा राधा रटइत
आधा आधा बानि।'

किन्तु थोड़ी देर में उसकी यह तन्मयता हट गई और वह फिर अपने वास्तविक रूप को समझकर माधव-माधव की रट लगाने लगी किन्तु उसी क्षण उसको मूर्छा आ गई और अपनी अचेतन अवस्था में वह फिर माधव होकर राधा का नाम लेने लगी। इस प्रकार राधा अपनी दोनों अवस्था में माधव की ही रट लगाये रहती हैं। इस प्रकार की तन्मयता की दशा अन्य किसी भी कवि में नहीं पाई जाती। इसके अतिरिक्त विद्यापति ने वियोग की शास्त्रीय अवस्थाओं का भी चित्रण किया गया है। यह अवस्थायें दस हैं। जायसी ने भी इन अवस्थाओं का चित्रण बड़ी सफलता के साथ किया है। वियोग में दोनों की विरहिणी नायिकायें अपने प्रियतम के गुणों का स्मरण करती हैं—

राधा— 'मोहन मधुपुर वास रे,
हमहुँ जायब तनि पास रे।'

नागमती— जिन्ह घर कंता ते सुखी तिन्ह गारौ औ गर्व।
कंत पियारा बाहिरै, हम सुख भूला सर्व॥

इसी प्रकार कभी गुणों की याद करती हैं। कभी प्रियतम के मिलने की अभिलाषा करती हैं। दोनों ही विरह की दस अवस्थाओं को पार करती हैं। अन्तःवृत्तियों के स्पष्टीकरण में भी दोनों कवियों ने बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है। विद्यापति मुक्तक रचनाके कारण अपनी भावनाओं को उतनी व्यापकता नहीं दे सके जितनी कि जायसी दे सके। इसलिये यह कहना ही अधिक उचित होगा कि जायसी ने नागमती की वेदना को एक विस्तृत और व्यापक क्षेत्र में देखा किंतु विद्यापति ने मुक्तक के कलेवर में ही राधा के हृदय सागर से अनेकों रत्न खोज निकाले। दोनों कवि अपने-अपने क्षेत्र में सफल ही समझने चाहिये।

साथ ही यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि विद्यापति का काव्य भारतीय दृष्टिकोण पर ही आधारित है किन्तु जायसी के काव्य में फारस की ऊहात्मक शैली का मिश्रण है। यह रही कवि की व्यक्तिगत चतुरता जिसके कारण उसने उस ऊहात्मक पद्धति को भी भाव-व्यंजना की दृष्टि से अधिक सफल बना दिया है। बिरह दशा की गहराइयों में पाठक को पहुँचाने में इस ऊहात्मक पद्धति ने सहायता ही दी है।

विद्यापति और सूर का विरह वर्णन

विद्यापति और सूरदास दोनों ने ही शृंगार-रस के दोनों पक्ष-संयोग और वियोग को अपनी कविता का विषय बनाया। संयोग शृंगारमें जहाँ तक मिलन सुख का वर्णन है वहाँ पर विद्यापति ने अपनी प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया है किन्तु विप्रलंभ शृंगार में विद्यापति एक सफल कवि होते हुये भी सूरदास के समान हृदय के व्यापक क्षेत्र को नहीं अपना सके। विप्रलंभ शृंगार में हृदय की जितनी दशायें हो सकती हैं, और जिनका जिक्र साहित्य में हुआ है, सूर के विरह-वर्णन में वह सब मिल सकती है। विद्यापति ने केवल राधा और कृष्ण के वियोग को लेकर ही अपना विरह-वर्णन लिखा किंतु सूरदास ने वात्सल्य रस में भी वियोग को स्थानदिया। कृष्ण के मथुरा जाने पर जो यशोदा और नन्द की दशा होती है, उनके हृदय में जो दुःख का अपार सागर उमड़ता है उस सब का वर्णन सूर ने हृदय को छूकर किया है। एक माँ किस प्रकार अपने प्रिय पुत्र के वियोग से दुखी होती है। इन सब अन्तर्रहस्यों को सूर ने अत्यन्त सरल ढङ्ग से प्रदर्शित किया है।

विद्यापति में इस पक्ष की झाँकी भी नहीं। कृष्ण वियोग का प्रभाव केवल राधा ही पर पड़ता है। केवल कुछ पंक्तियों में इतना दिखला दिया है कि पिंजर का शुक भी कृष्ण की याद में व्यथित है और गायों के झुण्ड मथुरा की ओर मुख करके भागते हैं। कुंज, कुटीर और यमुना का किनारा वही है किन्तु अब वहाँ पर आनन्द-प्रमोद की वह लहरें नहीं जो कृष्ण के गमन से पूर्व वहाँ पर उठती थीं। सम्पूर्ण गोकुल सूना हो गया—

"हरि मथुरा पुर गेल आज गोकुल शून भेल।
रोदति पिंजर शुके धेनु धाइव मथुरा मुखे॥
अब सोइ जमुना कूले, गोप - गोपो नहिं वूले॥"

लेकिन सूरदास के विरह वर्णन में सम्पूर्ण ब्रज मेदिनी और वहाँ पर रहने वाले नारी-नर, पशु, प्रकृति सभी कृष्ण के वियोग से व्याकुल हैं। यशोदा नंद से कहती हैं—

'छाँड़ि सनेह चले मथुरा, कत दौरि न चीर गह्यौ।
फाटि न गई बज्र की छाती, कत यह सूल सह्यौ॥'

यशोदा के कथन में बड़ी मार्मिक और हृदयस्पर्शी वेदना है। नंद इसका कुछ उत्तर न देकर उसी स्वाभाविक ढंग से कहते हैं जिससे यशोदा ने कहा था

'तब तू मारिबोही करति।
रिसनि आगे कहैं जो आवत, अब लै भांड़े भरति॥
रोस कै कर दांवरी लै फिरति घर घर धरति।
कठिन हिय करि तब जो बांध्यो, अब वृथा करि मरति॥'

इस झुँझलाहट में पति-पत्नी के प्रेम की कितनी मधुर झलक है। साथ ही उस वेदना की भी जो एक पिता के हृदय में पुत्र-वियोग के अवसर पर हो जाती है। कभी यशोदा अपने पुत्र की चिन्ता से व्याकुल होकर देवकी के समीप सँदेश भिजवाती हैं। उन्हें चिन्ता है कि कहीं वह मेरे 'लाल' की प्रकृति से अभी पूर्ण रूप से परिचित न होने के कारण उसे मन पसंद चीज़ न दे सकें और इस प्रकार कृष्ण भूखे ही रह जायें। इसीलिये वह कृष्ण की आदतों की खबर भी उसकी माँ देवकी के पास पहुँचा देना चाहती हैं—

'सँदेसौ देवकी सों कहियौ।
हों तो धाय तिहारे सुत की, कृपा करति ही रहियौ॥
तुम तौ टेब जानत हैहौ तऊ मोहि कहि आवै।
प्रात उठति मेरे लाल-लड़ैतहिं माखन रोटी भावै॥'

माँ के हृदय की कितनी सच्ची और स्वाभाविक झाँकी है। माँ अपने बेटे को जो कुछ करती है वह निस्वार्थ भाव से करती है इसलिये उसके बराबर-उसके पुत्र की और कोई भी फिक्र नहीं कर सकता। देवकी कृष्ण की माँ है। किन्तु यशोदा ने भी उसको अपना स्नेह देकर पाला है इसलिये जो कुछ दर्द उसे हो

सकता है वह देवकी को भी यशोदा की दृष्टि में नहीं हो सकता।

यह तो रही वात्सल्य रस के अन्दर वियोग की दशा, अब यदि विप्रलंभ शृंगार के उस अगाध सागर को आप देखें जिसमें सूर की गोपियाँ गोताखोर बनी हुई प्रेम के सच्चे मोतियों की खोज में उस सागर के अन्तस्तल को छू रही हैं और साथ ही नाना प्रकार के भाव-मोतियों को निकाल-निकाल कर संसार के रसिक जन रूपी जौहरियों को प्रदान कर रही हैं तो आपका हृदय भी रस मग्न होकर उसी वेदना के सागर में निमज्जित होने लगेगा। विप्रलंभ शृंगार को जो व्यापकता सूरदास के हाथों में मिली वह विद्यापति आदि अन्य कवियों के हाथों में नहीं। विद्यापति ने केवल कृष्ण के प्रेम को रखकर राधा को हृदय-गत दशाओं को ही व्यापकता दी किंतु सूर ने प्रकृति के कण-कण में वियोग की व्यथा को दिखलाया। सूर ने गोपियों के हृदय के स्वाभाविक भावों की सरल व्यंजना की। अपने प्रिय के वियोग में प्रेमिका संयोगके क्रिया-कलापों को याद करती है—

'ऐहि बेरियां बनतें ब्रज आवते।
दूरहि तें वह बेनु अधर धरि बारम्बार बजावते॥'

किंतु विद्यापति में हम इस प्रकार संयोग की अवस्थाओं का स्मरण नहीं पाते। उन्होंने तो केवल वियोग के कारण जो वेदना हुई है और उसके कारण वियोगिनी के हृदय में जो भाव तरंगें उठी हैं उन्हीं का वर्णन किया है—

'सखि हे बालम जितब बिदेस।
हम कुल-कामिनि कहियत अनुचित
तोहहुँ दे उपदेस॥'

विद्यापति की राधा को संयोग की अवस्था में सुख देने वाली केवल कुछ वस्तुओं की ही याद आई जैसे चन्दन और चन्द्रमा के सुख की जो कि संयोग की अवस्था में राधा को मिलता था। जिस प्रकार सूरदास ने संयोग के स्मरण से राधा और गोपियों के वियोग को उद्दीप्त किया है वह विद्यापति करने में समर्थ नहीं हुये। सूर ने संयोग की अनेक अवस्थाओं का चित्र सा उपस्थित करके वियोग की वेदना को अधिक उद्दीप्त किया है।

सूरदास की वियोगिनी अपनी वेदना में प्रकृति को हरा-भरा नहीं देख सकती। वह द्रुमों और वनों से कहती है—

“मधुबन तुम कत रहत हरे।
बिरह - बियोग स्यामसुन्दर के ठाड़े क्यों न जरे॥
तुमहौ निलज, लाज नहिं तुमकों, फिर सिर पुहुप धरे।
ससा स्यार और बन के पखेरू धिक-धिक सबन करे।
कौन काज ठाड़े रहे बन में काहे न उकठि परे॥”

कृष्ण के वियोग में काली रात्रि भी वियोगिनी को साँपिन के समान लगती है। जिस प्रकार काली साँपिन काटकर पलटती है और उसके नीचे के भाग की सफेदी दिखाई दे जाती है उसी प्रकार यह काली रात्रि भी वियोगिनी को व्यथा से व्यथित करके कभी-कभी बादलों के हट जाने पर स्वच्छ निकल आती है—

पिया बिनु साँपिनि कारी रात।
कबहुँ यामिनी होंत जुन्हैया डसि उलटी ह्वै जात॥

विद्यापति की विरहिणी को भी प्रकृति अधिक बेचैन करती है। मोरों के शब्द को सुनकर विरहिणी के हृदय में काम की पीड़ा होने लगती है। आसाढ़ के महीने में घनघोर मेघों को देखकर वियोगिनी के हृदय में मोहन की अनुपस्थिति खटकती है। वसंत के आगमन पर कुंज, कुटीर और बन-प्रान्त तथा संपूर्ण प्रकृति भी प्रफुल्लित हो रही है। किन्तु विरहिणी की दशा उस सम्पूर्ण उल्लास को देखकर और अधिक बिगड़ जाती है। वह बारह महीनों में प्रकृति के परिवर्तन के साथ-साथ अपने व्यथित हृदय के परिवर्तन को भी देखती है। कभी वह कहती है—

‘मोर बन बन सोर सुनइत,
बढ़त मनमथ पीर।’

कभी अपने सूने गृह में प्रकृति की शोभा को देखकर डरती है—

‘सखि हे हमर दुखक नहिं ओर।
इ भर बादर माह भादर,
सून मन्दिर मोर॥’

बसंत भी बिरहिनी का शत्रु ही है—

"फुटल कुसुम नव कुंज कुटिर बन,
कोकिल पंचम गावे रे।
मलियानिल हिम सिखर सिधारल,
पिया निज देश न आवे रे॥
चानन चान तन अधिक उतापत,
उपवन अलि उतरोले रे।
समय बसंत कंत रहु दुर देस,
जानल बिधि प्रतिकूले रे॥"

सूर की विरहिणी को भी प्रकृति अग्नि के समान दग्धकारी प्रतीत हो रही है। जो वस्तुएँ संयोगावस्था में सुख दायक थीं वही अब वियोगावस्था में अग्नि की शिखायें होकर वियोगिनी के शरीर को दग्ध कर रही हैं। उसे यमुना का बहना, पक्षियों का कलरव और कमलों के ऊपर भ्रमरों की गुंजार अच्छी नहीं लगती। हवा, पानी, कपूर, चन्दन आदि शीतल वस्तुएँ सूर्य की किरणों के समान जलाने वाली प्रतीत हो रही हैं—

"बिनु गोपाल बैरिन भई कुँजें।
तब ये लता लगति अति सीतल, अब भई विषम ज्वालकी पुंजें॥
बृथा बहत जमुना खग बोलत, बृथा कमल फूले अलि गुँजें।
पवन पानि घनसार सँजीवनि, दधि सुत किरन भानु भई भुँजें॥
ए ऊधो कहियो माधव सों बिरह कदन करि मारत लुँजें।
सूरदास प्रभु कौ मग जोवत अँखियां भई बरन ज्यों गुन्जें॥"

सूर की गोपियाँ उद्धव से कृष्ण की कुशलता के लिये मथुरा में रहने के लिये ही कहती हैं। गोकुल में चन्द्रमा सूर्य के समान होगया है। इसलिये यदि कृष्ण यहाँ आयेंगे तो उनका कोमल शरीर यहाँ की दग्धकारी प्रकृति से दुःख पायेगा। मोर और कोयल भी अब यहाँ पर कठोर शब्द बोल कर हृदय को दुःख ही देते हैं। इसी प्रकार ब्रज में शृंगार की सामिग्री भी वेदना को उद्दीप्त करने वाली ही हैं--

ऊधो इतनी जाय कहौ।

सब वल्लभी कहति हरिसों ये दिन मधुपुरी रहो ।
आजकालि तुमहूँ देखत हो तपत तरनि सम चंद ।
सुन्दर स्याम परम कोमल तनु क्यों सहि है नंदनंद ।।
मधुर मोर पिक परुष प्रबल अति बन उपबन चढ़ि बोलत ।"

विरह की वेदना का कितना व्यापक और हृदयस्पर्शी प्रभाव है । गोपियों के कथन का ढङ्ग भी अनूठा है । वे अपने प्रेम की तीव्रता को भी विरह की वेदना के साथ २ प्रदर्शित कर रही हैं । कृष्ण की शुभ चिन्तिका होने के कारण वह उनको अपनी आपत्ति दिखाकर व्याकुल नहीं करना चाहतीं । यहीं प्रेम में त्याग का संमिश्रण हो जाता है । प्रेमिका स्वयं ही सम्पूर्ण वेदना को सहन करने को तैयार है किंतु अपने प्रियतम को उस वेदना से तप्त देखना नहीं चाहती ।

विरहिणी की दशा विचित्र होती है । कभी वह भाव मग्न होकर अपने हृदय की अन्तर्दशाओं को प्रकृति के बीच छाया और प्रतिच्छाया के रूप में देखती है । अपनी भिन्न २ भावनाओं के अनुकूल वह प्रकृति को अनेक रूप में देखती है । बादलों में कभी तो भीषणता के दर्शन होते हैं और कभी वह बादल सुखदायी हो जाते हैं । सूर की विरहिणी प्रकृति के इन दोनों रूपों को देखती है—

"देखियत चहुँ दिसि तें घन घोरे ।
मानों मत्त मदन के हथियन बल करि बंधन तोरे ।।
कारे तन अति चुवत गंड मद, बरसत थोरे थोरे ।
रुकत न पवन महावत हू पै, मुर तन अंकुश मोरे ।।

कभी वही बादल सुखदाई प्रतीत होते हैं और उनके बनिस्वत कृष्ण निठुर हैं—

"बरु ये बदराऊ बरसन आए ।
अपनी अवधि जानि, नंद नंदन ! गरजि गगन घन छाये ।।
कहियत है सुरलोक बसत, सखि ! सेवक सदा पराए ।
चातक कुल की पीर जानिकैं, तेउ तहाँ ते धाये ।।
तृन किये हरित हरित बेली मिलि, दादुर मृतक जिवाए ।"

सूरदास की राधा को अपने विरह की दशा वर्षा ऋतु के समान प्रतीत होती है—

"निशदिन बरसत नैन हमारे ।
सदा रहत पावस रितु हम पर जब तें स्याम सिधारे ।।
दृग अंजन लागत नहिं सजनी उर कपोल भये कारे ।"

कभी उसके नेत्रों की अश्रुधारा को देखकर उनसे बादल भी हार जाते हैं-

"देखो माई नयनन सों घन हारे ।
बिन ही रितु बरसत निसि बासर सदा सजल दोऊ तारे ।।"

वर्षा के समान ही विद्यापति की विरहिणी नायिका के नेत्र भी हैं—

"विपत अपत तरु पाओल रे
पुन नव नव पात ।
बिरहिन-नयन विहल विहि रे
अविरल बरिसात ।।
सखि अन्तर विरहानल रे
नित बाढ़ल जाय ।
बिनु हरि लख उपचारहु रे
हिय दुख न मिटाय ।।

सूरदास ने विद्यापति की अपेक्षा बिरह-वर्णन को अधिक सजीव और व्यापक रूप में देखा । प्रकृति के अन्दर उन्होंने अनेकों भावों का सृजन किया । कहीं प्रकृति के अन्दर उनको अपने प्रिय के रूप का दर्शन होने लगा तो कहीं अपनी व्यथित दशा की झलक प्रकृति में दिखलाई दी । विद्यापति ने प्रकृति के इतने रूपों को अपने विरह वर्णन में नहीं देखा । उनके काव्य में प्रकृति केवल वेदना को उद्दीप्त करने को ही प्रयुक्त हुई है । परन्तु सूर अनेक रूपों में प्रकृति को देखते हैं ।

विरहिणी को स्वप्न में अपने प्रियतम के दर्शनों पर बड़ा आनन्द होता है । सूर की विरहिणी ने अपने प्रियतम को स्वप्न में देखा किंतु अनायास ही उसकी नींद गायब हो गई । विरहिणी इस बात पर अत्यन्त दुखी हुई—

"हमकौ सपनेहु में सोच ।

जा दिन तें बिछुरे नंदनंदन ता दिन तें यह पोच ॥
मनों गोपाल आये मेरे घर, हँसि करि भुजा गही।
कहा करौं बैरिन भई निंदिया, निमिष न और रही ॥
ज्यों चकवी प्रतिबिंब देखिकें आनंदी पिय जानि।
सूर पवन मिसि निठुर विधाता चपल कियौ जल आनि ॥"

विद्यापति ने भी अपनी बिरहिणी के द्वारा इसी भाव की व्यंजना इस प्रकार कराई है—

"सपनहु संगम पाओल
रंग बढ़ाओल रे
से मोरा बिहि विघटाओल
निंद ओ हेराएल रे ॥"

जहाँ तक वेदना का प्रश्न है वहाँ तक दोनों कवियों ने बड़ी सफलता पूर्वक चित्रण किया है। किंतु सूर ने अपने काव्य में जिन मनोवैज्ञानिक तथ्यों को खोजा है वह विद्यापति के काव्य में नहीं। नीचे कुछ उदाहरणों से इस सत्य के दर्शन कराये जायेंगे—

सूर— बिछुरत श्री ब्रजरात आजु इन नयनन की परतीत गई।
उठि न गई हरि संग तबहितें है न गई सखि स्याम मई ॥

विद्यापति— लोचन धाइ फेंधाइल हरि नहिं आएल रे।
शिव शिव जिबयो न जाय आस अरुझायल रे ॥
मन करि तहाँ उड़ि जाइय जहाँ हरि पाइअ रे।
प्रेम परसि मनि जानि आनि उर लाइअ रे ॥

सूर— तब तें पनिघट जाऊँ सखी री वा यमुना के तीर।
भरि भरि यमुना उमड़ चलति है इन नयनन के तीर ॥

विद्यापति— हरि हरि बिलपि बिलापिन रे लोचन जलधारा।
तिमिर चिकुर घन परसल रे जनि विजुरि अंकारा ॥
उठि उठि खसए कत जोगिनि रे विछिआ जुगजाती।
पवन पलटि पुनि आओत रे जनि भादव राती ॥

सूर और विद्यापति दोनों ही ने विरह की दस शास्त्रीय अवस्थाओं

का चित्रण भी किया है। हृदय की वृत्तियों के चित्रण में भी दोनों कवि कुशल हैं। किंतु सूर ने अपने विरह वर्णन में जिन अन्तर्दशाओं को देखा है उनकी चर्चा विद्यापति के विरह वर्णन में नहीं मिलती, सूरदास ने उद्धव को बीच में रखकर जिस प्रकार की सुन्दर उक्तियाँ कहलवाई हैं वह उनकी भावुकता का परिचय देती हैं। विद्यापति में केवल विरहिणी की व्यक्तिगत भावनाओं पर ही अधिक जोर दिया गया है। फिर भी हम को यह तो अवश्य मानना पड़ेगा कि दोनों कवि अपने काव्य के विस्तार के अनुसार अपने २ दृष्टिकोण से सफल कवि हैं। सूर एक संप्रदाय विशेष में दीक्षित थे जिसमें विरह की अधिक महत्ता थी और यही कारण है कि उनकी विरहिणी जितने भावों का विस्तार अपने हृदय में करती है उतनी विद्यापति की विरहिणी नहीं कर पाई। इसका कारण मूलतः यही है कि विद्यापति की विरहिणी अपने प्रियतम को केवल अपने तक ही सीमित देखती है। उसे व्रज के अन्य लोगों से कोई तात्पर्य नहीं। किंतु सूर ने कृष्ण के वियोग को व्यापक रूप में देखा है। गोप-ग्वाल, जमुना, गाय, कुंज, कुटीर ही नहीं वरन् समस्त चराचर वियोग के कारण दग्ध है। सूर ने अपनी वियोगिनी में प्रेम की मात्रा को अधिक देखा, शारीरिक वासना की तृप्ति को अधिक महत्व नहीं दिया।

विद्यापति और सूर दोनों ने राधा की वियोगावस्था के अतिरिक्त कृष्ण की वियोगावस्था का भी परिचय दिया है। विद्यापति के कृष्ण राधा के वियोग में इतने व्याकुल हैं कि वह वृक्ष, लता, गिरि, कोयल आदि सब से राधा का पता पूछते हैं और पक्षियों की मधुर आवाज़ को सुनकर वह व्याकुल हो जाते हैं उन्हें सन्देह होता है कि सम्भवतः यह ध्वनि उसकी प्रेमिका के नूपुर की है। कृष्ण की दशा की चर्चा राधा की सखी राधा से आकर करती है—

रामा हे, से किए बिसरल जाई।
कर धरि माथुर अनुमति मंगइत
ततहि परल मुरुझाई॥
किछु गदगद सरे लहुलहु आखरे
जे किछु कहल वर रामा।

कठिन कलेवर तेंई चलि आओल
चित रहलि सोइ ठामा ॥

मथुरा के स्वामी कृष्ण जो हाथ जोड़ कर तुम्हारे दर्शनों की भिक्षा माँग रहे थे उसे हे राधे मैं तुमसे किस प्रकार कहूँ। प्रेमाधिक्य के कारण भी कृष्ण ने जो गद्‌गद् होकर कहा उसे मैं अब भी नहीं भुला सकती।

सूरदास के कृष्ण भी उद्धव से अपनी दशा का चित्रण करते हैं। उनको गोकुल की उन सम्पूर्ण लीलाओं की याद अब भी आती है। नन्द, यशोदा तथा अन्य ग्वाल और गोपियाँ उनको अब भी याद रहती हैं।

ऊधो मोहि ब्रज बिसरत नाहीं।
हंस सुता की सुन्दर कगरी और कुंजन की छाँही ॥
ग्वाल बाल सब करत कोलाहल नाचत गहि गहि बाँही।

\+ + +
× × ×

सूरदास प्रभु रहे मौन ह्वै यह कहि कहि पछिताँही ॥

कृष्ण रुकिमिणी से ब्रज चलने को कहते हैं। द्वारिका के सम्पूर्ण सुख मथुरा के सुखों के सन्मुख तुच्छ हैं। कृष्ण गोकुल के जीवन की सुखद स्मृतियों के विषय में चर्चा करते हुये कहते हैं कि वे सुख अब संसार में कहीं नहीं मिल सकते।

'रुकिमिनी चलहु जनमभूमि जाँही' आदि विद्यापति के कृष्ण भी अपनी संयोगावस्था की उन मधुर स्मृतियों को याद करके अधीर होने लगते हैं—

"तिल एक सयन ओत जिउन सहए
न रहए दुहु तन मीन।
माँझे पुलक गिरि अन्तर मानिए
अइसन रहु निसि-दीन ॥
सजनी कोन परि जीवए कान।
राहि रहल दुर हम मथुरा पुर
एतहु सहए परान ॥"

कृष्ण और राधा रात्रि में सोने के समय एक क्षण का भी वियोग नहीं

सहन कर सकते थे और न उनके शरीर ही एक क्षण एक दूसरे से अलग रह सकते थे वही कृष्ण अब राधा के वियोग को सह रहे हैं। कितनी व्यथितावस्था है।

अन्त में हम यही कहेंगे कि सूर और विद्यापति दोनों ही सफल महाकवि हैं। उन्होंने वियोग की सम्पूर्ण अवस्थाओं को अपने काव्य में चित्रित किया। दोनों ने ही हृदय की अनेक दशाओं को देखा, भावों की गहराई को बड़े मनोवैज्ञानिक ढङ्ग से अभिव्यक्त किया, वेदना की कसक को विरहिणी के शब्द शब्द से निस्सरित किया। किंतु सूर का क्षेत्र व्यापक होने के कारण तथा पुष्टिमार्गी भक्ति के प्रचारक होने के कारण उन्होंने विरह की मर्मव्यथा को अधिक सामान्य—भाव-भूमि पर लाकर परखा। यही कारण है कि हिंदी साहित्य में जो सफलता सूर को अपने विरह-वर्णन में मिली वह अन्य किसी कवि को नहीं मिली।

सौंदर्य का व्यापक रूप

भारतीय काव्य परम्परा में नारी के सौंदर्य का एक महत्व पूर्ण स्थान रहा है। महाकवि कालिदास में इस परम्परा का पूर्ण विकास हुआ और फिर तो संस्कृत के अनेक कवियों ने अपनी कविता में नारी के अङ्ग प्रत्यङ्ग के सौंदर्य का चित्रण किया। प्राकृत और अपभ्रंश काल में भी सौंदर्य का केन्द्र नारी ही रही। विद्यापति में भी हम इसी परम्परा के दर्शन पाते हैं। उन्होंने संस्कृत के लोकप्रिय गीतकार जयदेव के अनुकरण पर ही अपनी पदावली की रचना की। जयदेव के काव्य में भी सौंदर्य का चित्रण अपनी चरम सीमा तक पहुँच गया है। नारी के अङ्ग प्रत्यङ्ग के चित्रण में कवि ने सौंदर्य की ऐसी सृष्टि की जो कि आगे के कवियों के लिये भी पथ-प्रदर्शन का काम करती रही। यही नहीं, जयदेव ने सृष्टि के कण कण में सौंदर्य को ही देखा। प्रकृति के दृश्यों में कवि की आत्मा इतनी रमी कि उन्होंने प्रकृति के सौंदर्य को भी अपने काव्य में उतना ही स्थान दिया जितना कि नारी के सौंदर्य को। जयदेव ने अपने काव्य में वाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार के सौंदर्य को चित्रित किया।

विद्यापति ने भी जयदेव का पूर्णरूप से अनुकरण किया। उन्होंने जयदेव के समान ही अपनी पदावली को शृङ्गार रस से ओत प्रोत कर दिया। शृङ्गार रस की अभिव्यक्ति के लिये यह आवश्यक था कि नारी के वाह्य और आन्तरिक सौंदर्य का चित्रण किया जाय। नारी का सौंदर्य हमारी राष्ट्रीय परम्परा में चला आ रहा था। संस्कृत के आचार्यों द्वारा जो सौंदर्य के मान दड निर्धारित किये जा चुके थे वह लोकानुभूति की वस्तु बन चुके थे। इनके अतिरिक्त विद्यापति ने जिन अन्य रचनाओं का आधार लिया वे थीं—गाथा सप्तशती, अमरूक शतक शृङ्गार शतक, शृङ्गार तिलक आदि। यह सब रचनायें भी शृङ्गार रस की रचनायें थीं। इन सम्पूर्ण रचनाओं में भी नारी के शारीरिक सौंदर्य और आंतरिक सौंदर्य के दर्शन होते हैं। विद्यापति मुक्तककार थे। मुक्तक रचना में रसा-

भिव्यक्ति के लिये विस्तृत क्षेत्र नहीं जैसा कि प्रबन्ध काव्य और खण्ड-काव्य के कथानक में मिल जाता है। इसलिये मुक्तक कवियों के लिये आवश्यक होता है कि वह रसराज शृङ्गार को अपने काव्य में स्थान दें। शृङ्गाररस और नारी सौन्दर्य का अटूट सम्बंध है। शृङ्गार रस के उद्दीप्त करने में स्त्री आलंबन होती है तथा उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग का सौंदर्य रसानुभूति को तीव्र करने में सहायक होता है। प्रकृति का सौंदर्य भी शृङ्गार की अभिव्यक्ति में अत्यन्त सहायक होता है। इन्हीं सब कारणों से महाकवि विद्यापति ने अपने काव्य में सौंदर्य को एक व्यापक रूप दिया है। उन्होंने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से सौंदर्य को देखा और इस प्रकार अपनी व्यक्तिगत अनुभूति को लोकानुभूति के रूप में परिवर्तित कर दिया महाकवि विद्यापति ने इस विशाल देश की सौंदर्य सम्बन्धी मान्यताओं को अपने काव्य में स्थान दिया। संयोग और वियोग की अनेकों अवस्थाओं का चित्रण कवि ने अपनी लेखिनी से इस कुशलता से किया है कि पाठक को उनकी रचना में सर्वत्र सौंदर्य की सृष्टि ही दृष्टिगोचर होती है। कहीं कहीं तो ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने अपनी रचना में सौंदर्य को ही एक रस की संज्ञा दे दी है।

कवि ने कृष्ण और राधा की ही सुन्दर कल्पना नहीं की वरन् उनके संसर्ग में आने वाली प्रत्येक वस्तु को सुंदर ही देखा है अपने काव्य में राधा की हृदयगत सुन्दरता के चित्रण में भी कवि ने उतनी ही कुशलता दिखलाई है जितनी कि वाह्य अङ्गों और वाह्य वस्तुओं के चित्रण में दिखलाई है। भाषा, अलङ्कार, छन्द, संगीत सब में कवि ने सुन्दरता की ही झाँकी देखी है। यही कारण है कि विद्यापति के लिये सौन्दर्य ही जीवन है और जीवन ही सौन्दर्य है। कवि ने राधा और कृष्ण की जो युगल मूर्ति बनाई है उसकी रचना उसने सौन्दर्य के तत्व को लेकर ही की है। कवि के सौन्दर्य को हम कितने ही रूपों में देख सकते हैं—

१—शारीरिक सौंदर्य, २—प्रकृति का सौंदर्य, ३—काव्य के उपकरणों में सौंदर्य, ४—आंतरिक सौंदर्य।

शारीरिक सौन्दर्य—ऊपर हम कह चुके हैं कि विद्यापति शृंगार के कवि हैं। शृंगार रस के आलम्बन हैं, राधा और कृष्ण की युगल मूर्ति। कवि ने

राधा के सौंदर्य-अंकन में ही अधिक ध्यान दिया है कृष्ण के सौंदर्य में नहीं। कृष्ण के सौंदर्य को कवि ने कितने ही स्थानों पर वर्णन किया है किन्तु जो आनन्द उसे राधा के चित्रण में आया वह कृष्ण के में नहीं। राधा और कृष्ण के संयोग और वियोग की जितनी अवस्थायें हो सकती हैं उन सब का चित्रण कवि ने किया। राधा के संपूर्ण अङ्गों का चित्रण करने में कवि ने संस्कृत की परम्परा को अपनाया। संस्कृत के जितने शृंगार रस के काव्य हैं उनमें नायिका के सौंदर्य को एक महत्वपूर्ण स्थान दिया है। विद्यापति ने उस परम्परा को अपनाकर ही अपने काव्य में नख-शिख वर्णन को स्थान दिया है। हिन्दी में नख-शिख वर्णन की परम्परा के वे यदि जनक कह दिये जायँ तो इसमें अति-शयोक्ति नहीं होगी। नख-शिख वर्णन में विद्यापति ने अनेक नवीनताओं का अपने काव्य में समावेश किया और बहुत सी प्राचीन मान्यताओं को अपनाकर भी सौंदर्य का चित्रण किया।

शारीरिक सौंदर्य के अन्तर्गत कवि ने राधा और कृष्ण दोनों के सौदर्य का अङ्कन किया। राधा के रूप सौंदर्य का चित्रण कवि ने इस प्रकार किया है मानो वह एक अतीन्द्रिय जगत की सुन्दरी है—

देख देख राधा रूप अपार।
अपरुब के विहि आनि मिलाओल।
खिति - तल लावनि सार॥
अङ्गहि अङ्ग अनंग मुरछायत।
हेरए पड़ए अथीर॥
मनमथ कोटि-मथन करु जे जन।
सेहेरि महि - मधि गीर॥
कत कत लखिमी चरन-तल नेओछए
रगिनि हेरि विभोरि॥
करु अभिलाख मनहिं पद-पङ्कज
अहोनिसि कोर आगोरि॥

कामदेव और उनकी स्त्री रति काव्य परम्परा में सौंदर्य के देवता हैं किंतु

विद्यापति की राधा की सुन्दरता अपूर्व है उसे देखकर कामदेव भी मूर्च्छित हो जाता है।

विद्यापति ने स्त्री के जीवन के उस सुन्दर समय को देखा है जो सामंत-युगीन सभ्यता में सुन्दरता की चरम सीमा माने जाते थे—वह है नारी की वह अवस्था जब कि उसकी शैशवावस्था उसको छोड़कर जा रही है और यौवन का आगमन प्रारंभ है। मध्ययुगीन भारत में स्त्री की इस अवस्था को ही सबसे अधिक सुन्दर माना गया था। किंतु सुन्दरता के मान दण्ड भी परिवर्तित होते हैं। एक समय था जब भारत में पिंगल केश और नीली आँखों को ही सुन्दर समझा जाता था किंतु अब काले बाल और काली आँखों को ही सुन्दर माना जाता है। इसी प्रकार वयःसन्धि के उस काल को जिसको कि विद्यापति ने अपने काव्य में चुना है, आज उसमें हमको सौंदर्य नहीं दिखलाई देता वरन् तात्कालिक मानव-समाज की विकृति और अतृप्ति की ही झलक मिलती है। यह होता है समाज के दृष्टिकोण के परिवर्त्तन के फलस्वरूप। फिर भी उस वर्णन में कवि ने नायिका के अङ्ग प्रत्यङ्गों के वर्णन और उसकी आन्तरिक भाव राशियों का जो प्रदर्शन किया है वह अपनी कोटि का अनूठा चित्रण है। शैशव और यौवन का मेल हो रहा है। नेत्रों में कटाक्ष करने की शक्ति का उदय हो रहा है। नायिका अब वाग्चातुर्य में पूर्ण पण्डिता है। उसके हाव भाव प्रकट करने के ढङ्ग भी नवीन है। अब वह अट्टहास नहीं करती वरन् मंद मुस्कान के द्वारा ही मन को मुग्ध कर लेती है। यौवनागमन के कारण अब वह दर्पण में देखकर अपना शृङ्गार करती है तथा एकांत में अपने नव-विकसित उरोजों को देखकर हृदय में आश्चर्य से प्रसन्न होती है और फिर अपनी सखियों से केलि-क्रीड़ा की जानकारी करने का उद्योग करती है—

"सैसव जौबन दुहु मिलि गेल।
श्रवन क पथ दुहु लोचन लेल॥
बचन क चातुर लहु लहु हास।
धरनिये चाँद कएल परगास॥
मुकुर लई अब करई सिंगार।
सखि पुछइ कइसे सुरत बिहार॥

निरजन उरज हेरइ कत बेरि।
हंसइ से अपन पयोधर हेरि॥

नायिका के इन परिवर्तनों का कवि ने इस सुन्दर ढङ्ग से वर्णन किया है कि उसके वाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार के सौंदर्य के दर्शन स्पष्ट रूप से करा दिये हैं।

नख-शिख वर्णन में कवि ने शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्गों का चित्र अन्य उपमानों के सौंदर्य को हेय बताकर या उनसे समानता दिखाकर किया है। नायिका के कृश शरीर को देखकर और उसमें यौवन के पूर्ण विकास को देख कर कवि सौंदर्यानुभूति से ओत प्रोत हो जाता है—

पीन पयोधर दूबरि गता।
मेरु उपजल कनक लता॥

× × ×

मुख मनोहर अधर रंगे।
फूलिल मधुरी कमल संगे॥
लोचन जुगल भृङ्ग अकारे।
मधुक मातल उड़ए न पारे॥"

विद्यापति की सौन्दर्याङ्कन की प्रवृति के दर्शन इन पंक्तियों में स्पष्ट है। बाला के शरीर की दुर्बलता की समता लता से की है और कठोर कुचों की समता मेरु से की है। सुवर्ण के से रंग वाले उस दुर्बल शरीर में जो सुवर्णलता के समान है कुच ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे मेरु पर्वत निकल आया हो। उसके गौरवर्ण के मुख पर लाल ओष्ठ इस प्रकार लगते हैं मानो कमल (मुख) के साथ मधुरी पुष्प (ओष्ठ) एक ही स्थान पर खिल रहे हों। विद्यापति नेत्रों की तुलना भ्रमर से करते हैं और जिस प्रकार भ्रमर मधु के कारण उड़ नहीं सकता इसी प्रकार उस नायिका के नेत्र भी उसके मुख कमल का रस पीकर इतने मत्त हैं कि वह एक स्थिरता धारण किये हुए हैं कवि की सुन्दरता की पैठ की सराहना करनी ही पड़ेगी। मुख की कल्पना कमल के समान और ओष्ठों की कल्पना माधुरी के पुष्पों के समान करके कवि ने जो रस पीकर मत्त हुए भ्रमर की कल्पना की है वह कवि की सौन्दर्य की परख की परिचायक है।

विद्यापति के नख-शिख वर्णन में निम्नलिखित पद अपनी सुन्दरता के लिये अनुपम है। राधा के सौंदर्य का सर्वाङ्गीण चित्रण कवि की सूक्ष्म दृष्टि का एक अच्छा उदाहरण है। राधा के रूप सौंदर्य की रचना विधाता ने सम्भवतः स्वयं ही की है। उसके चरण इतने सुन्दर हैं किमानो कमल ही हों। उसकी गति में गजराज की सी मस्ती है। सुवर्ण-कदली-स्तम्भ के समान जंघाओं पर उस नायिका की सिंह के समान पतली कमर है और उसके ऊपर उसका उन्नत वक्षस्थल सुमेरु के समान शोभायमान है। उस सुमेरु पवर्त रूपी उरोजों का अग्रभाग फूले कमल के समान है। किन्तु इस कमल की सुन्दरता में कवि ने साधारण कमल की सुन्दरता से अन्तर दिखाकर जो उत्कर्ष दिखाया है वह सराहनीय है। क्योंकि वास्तविक कमल तो नाल के साथ ही शोभायमान होता है किंतु यह कमल अपनी शोभा को बिना नाल के ही प्रदर्शित कर रहा है। कवि ने अपनी कल्पना से प्रसूत इस कमल को बिना नाल के ही प्रफुल्लित दिखाया है। इसके लिये उसने नायिका के वक्ष पर पड़े मोतियों के हार की कल्पना गङ्गा से की है। यह गङ्गा ही उस कमल को बिना नाल के होने पर भी सर्वदा प्रफुल्लित रखती है।

नायिका के अधरों की सुन्दरता बिम्बाफल के समान है और दांत भी अनार के दानों की सी सुन्दरता रखते हैं। नायिका के मुख चन्द्र के ऊपर सिंदूर का जो टीका लगाया है वह बाल सूर्य के समान है। दोनों का उदय एक साथ हो रहा है। सूर्य और चन्द्र के साथ २ कवि राहु के होने की भी कल्पना केशों से करता है। किंतु यह राहु इन दोनों के एक साथ होने के कारण उनके भय से अलग ही हैं।

नेत्रों की सुन्दरता कवि हरिणी के नेत्रोंके समान बतलाता है। उसके ललाट की उपमा कमल से देकर कवि अलकों को, जो कि उसके मस्तक पर आ गई हैं, भ्रमरों की कल्पना करता है। गालों पर लटकी अलकों की कल्पना भी कवि भ्रमरों से करता है—

माधव कि कहब सुन्दरि रूपे
कतेक जतन विहि आनि समारल
देखल नयन सरूपे ॥

पल्लव-राज कमल जुग सोभित
गति गज राज क भाने ।
कनक कदलि पर सिंह समारल
ता पर मेरु समाने ॥
मेरु ऊपर दुइ कमल फुलाएल
नाल विना रुचि पाई ।
मनिमय हार धार बहु सुरसरि
तञो नहिं कमल सुखाई ॥
अधर बिम्बसम, दसन दाड़िम बिजु
रवि ससि उगथिक पासे ।
राहु दूर बस नियरो न आवथि
तैं नहिं करथि गरा से ॥
सारंग नयन बयन पुनि सारङ्ग
सारङ्ग तसु समधाने ।
सारङ्ग ऊपर उगल दस सारङ्ग
केलि करथ मधुपाने ॥

यह कवि ने नायिका के पार्थिव शरीर का चित्रण नहीं किया वरन् एक सौंदर्य की मूर्ति खड़ी कर दी है जिसकी रचना, कमल, केला, बिम्बाफल अनार आदि प्रकृति की वस्तुओं से की है। भ्रमर और हिरन, हाथी, सिंह भी उस सौंदर्य की अपार्थिव मूर्ति के चित्रण में कवि की सहायता करते हैं। यदि आप कल्पना करें तो सुन्दरी के शरीर के स्थान पर क्रमश: उन उपमानों की सुन्दरता से एक ऐसी मूर्ति की कल्पना हो जाएगी जो कि अतीन्द्रिय जगत की हो। इस प्रकार के अनेकों चित्र पदावली में राधा के रूप सौंदर्य के अङ्कन में मिलते हैं।

विद्यापति नायिका के रूप-सौंदर्य के अङ्कन करने में नये नये उपमानों का प्रयोग करके उसके सौंदर्य का जो चित्र उपस्थित करते हैं वह उनकी सौंदर्य प्रियता को स्पष्ट करने में सहायक है। उन्होंने सौंदर्य अङ्कन के कितने ही ढङ्ग अपनाये हैं। कहीं पर वह नायिका के अङ्गों की अन्य उपमानों से समता

दिखाते हैं तो कहीं पर उन उपकरणों का अपकर्ष दिखाकर नायिका के सौंदर्य का उत्कर्ष दिखाते हैं—

कबरी-भय चामरि गिरि-कन्दर ।
मुख भय चाँद अकासे ॥
हरिन नयन भय, सर भय कोकिल ।
गतिभय गज बनवासे ॥
+ + +
+ + +
कुच भय कमल-कोरक जल मुदि रहु
घट परवेस हुतासे ॥

नायिका के सौंदर्य का विश्व व्यापक प्रभाव दिखाने में कवि ने समस्त वस्तुओं को हेय दिखाया है और नायिका के सौंदर्य का वर्णन एक नवीन ढङ्ग से किया है ।

पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव–विद्यापति ने सौंदर्य की इस राशि को चुनने में अपने पूर्ववर्ती कलाकारों के भावों को ग्रहण किया है और कुछ मौलिक भावों का समावेश भी उन्होंने किया है । संस्कृत के महाकवियों के भावों को कवि ने ग्रहण तो अवश्य किया किंतु उन भावों में भी उत्कर्ष लाने की प्रवृति सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है । महाकवि कालिदास, माघ, श्रीहर्ष, अमरुक आदि कवियों की रचनाओं में से सौंदर्य के कण एकत्रित करके अपने काव्य में एक सौंदर्य की राशि का संग्रह किया । ऊपर के जितने कवि हैं उनके काव्यों के सुन्दर स्थलों का जो उपयोग कवि ने अपनी रचना में किया है उनको देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि दूसरों के भावों को मी सुन्दरता से सजाकर देखता है । संस्कृत साहित्य के महाकवि एवं कलाशास्त्री कालिदास के अनेक भावों को हम विद्यापति की पदावली की रचनाओं में पाते हैं । विद्यापति ने बहुत सी बातों में कालिदास का ही अनुकरण किया था । महाकवि कालिदास शृङ्गार रस के ही प्रणेता थे और विद्यापति ने भी अपने काव्य में सौंदर्य की सृष्टि के लिये शृङ्गार रस को ही अधिक महत्व दिया । जिस प्रकार कालिदास

ने सौंदर्याङ्कन के लिये उपमा अलंकार का अधिक प्रयोग किया था उसी प्रकार विद्यापति ने भी सौंदर्याङ्कन का माध्यम उपमा अलंकार को ही रखा। कालिदास के सौंदर्याङ्कन के ढङ्ग को विद्यापति ने अपनी मौलिकता का समावेश करके ही ग्रहण किया। कालिदास की इन्दुमती स्वर्ग जा रही है। वह अपने प्रियतम अज के प्रेम के विषय में पूर्ण रूप से परिचित है। उसे भय है कि उसका प्रिय उसके वियोग जन्य दुःख को कैसे सहन करेगा इसलिये वह अपने शारीरिक गुणों को अज के पास छोड़ गई जिससे उसके प्रिय को आश्वासन मिले। उसके स्वर के समान कोयल का स्वर था, राजहंसी की सुन्दर चाल उसकी गति के समान थी, उसके नेत्रों के समान हरिणी के नेत्र थे, वायु से सिक्त लताओं में उसका विलास था। किन्तु विरह वेदना से पीड़ित अज के लिये यह सब व्यर्थ थे—

> कलमन्यभृता सुभाषितं कलहंसीषु मदालसं गतम् ।
> पृषतीषु विलोलमीक्षितं पवनाधूत-लतासु विभ्रमाः ॥
> त्रिदिवोत्सुक याप्यवेक्ष्य माँ निहिताः सत्यमयी गुणास्त्वया ।
> विरहे तव मे गुरुव्यथं हृदयं नत्ववलंम्बितुं क्षमाः ॥

इसी भाव का एक पद विद्यापति का है, केवल अंतर इतना है कि कालिदास की नायिका स्वर्ग जा रही है और विद्यापति की नायिका प्रियतम के वियोग में मरणासन्न अवस्था में है। विद्यापति ने भी उपमा अलंकार के द्वारा इस दयनीय अवस्था में भी नायिका के सौंदर्याङ्कन का सफलता पूर्वक वर्णन किया है। नायिका की सखी माधव से उसकी करुणा जनक दशा का चित्रण कर रही है किंतु उस समय भी कवि का सौंदर्य प्रेम नहीं छूटता। वह नायिका के अङ्गों को उन्हीं सौंदर्य के तत्वों में मिला देती है जिनसे उनकी रचना हुई थी। वह अपने मुख के सौंदर्य को चन्द्रमा को सौंपती है और नेत्रों को हरिणी को सौंप देती है, केशों को चामर को दे देती है। दाँतों के सौंदर्य को अनार को देती है और अपनी मधुरवाणी को कोयल को देती है। इस प्रकार नायिका के शरीर का सौंदर्य छिन्न भिन्न हो जाता है। लेकिन यह सब वह नायिका इसीलिये करती है ताकि उसका नायक के प्रति जो प्रेम है वह उससे न छिप जाये। सखा माधव से कहती है कि वह उस नायिका को अपने

अधरों के अमृत को मिलाकर जीवन दान दे।

माधव अब न जीउत राही।
जतवा जनिकर लेने छलि सुन्दिर से सभ सोंपलक ताही॥
सरदक ससधर मुख रुचि सोंपलन्हि हरिन के लोचन लीला।
केस पास चामरु कें सोंपलन्हि पाए मनोभव पीड़ा॥
दसन बीज दाड़िम कें सोंपलन्हि पिक कें सोंपलन्हि बानी।
देह दसा दामिनि कें सोंपलन्हि ई सभ ऐलहु जानी॥
हरि हरि कए पुनि उठति धरणि धरि रैन गमावए जागी।
तो हर सिनेह जीव दए जापथि रहलिह धनि एत लागी॥
भनहि विद्यापति सुनि मथुरापति गमन न पुरिए विलम्बे।
जाइ पिआविए अधर सुधारस तों पए जीवन जीवे॥

सौंदर्य, प्रेम और वियोग की चरमावस्था का कितना सुन्दर समावेश किया गया है। इस उदाहरण से स्पष्ट है कि विद्यापति ने राधा की दयनीय दशा के चित्रण में भी सौन्दर्य का समावेश करके अपनी सौन्दर्याङ्कन की प्रवृति का अच्छा परिचय दिया है। एक महाकवि के भाव को लेकर भी कवि ने अपनी मौलिकता और सुन्दरता के प्रति जो अभिरुचि है उसको सफलता पूर्वक दिखाया है।

संस्कृत साहित्य में माघ ने भी सौन्दर्याङ्कन में बड़ी सफलता पाई है। नायिका के स्नान करने के समय के एक चित्र का वर्णन कवि माघ इस प्रकार करते हैं—

वासाँसि न्यवसत यानि योषितस्ताः शुभ्राभ्रद्युतिभिरहासितैर्मुदेव
अत्याक्षुःस्नपनगलज्जलानि यानि स्थूलाश्रस्रुतिभिररोदितैःशुचेव

सद्यः—स्नाता नायिका के सौंदर्य का चित्रण किया गया है। संस्कृत साहित्य में इस प्रकार का वर्णन बहुत कम कवियों ने किया है। नायिका अपने भींगे कपड़ों को बदल कर नवीन कपड़ों को धारण कर रही है। कवि भींगे कपड़ों का दुर्भाग्य बतलाता है और नवीन कपड़ों का सौभाग्य क्योंकि भींगे कपड़े तो अब उस नायिका के अंग के स्पर्श सुख से बंचित हो जायेंगे और नवीन कपड़े अब उस सौन्दर्य के सुख को भोगेंगे। यही कारण है कि भींगे कपड़े अपने दुःख के

आँसुओं को पानी की बूंदों के रूप में दिखा रहे हैं और स्वच्छ कपड़े अपनी स्वच्छता के मिस अपनी हार्दिक प्रसन्नता को प्रकट कर रहे हैं—

महाकवि विद्यापति ने भी सद्यः स्नाता का चित्रण किया है। माघ के भाव का अपहरण करके भी कवि की कल्पना अपनी मौलिक है—

जाइत पेखल नहाइत गोरी, कति सँय रूप धनि आनलि चोरी ॥
केस निगारइत बह जलधारा, चामरे गलय जनि मोतिम हारा।
अलकंहि तीतल तहिं अति शोभा, अलि कुल कमले बेढ़ल मधु लोभा।
नीर निरंजन लोचन राता, सिन्दुरे मण्डित जनि पंकज पाता ॥
सजल चीर रह पयोधर सीमा, कनक बेलि जनि पड़ि गेल हीमा।
ओ नुकि करतहिं चाहे किय देहा, अबहिं छोड़ब मोहि तेजब नेहा ॥
एसन रसनहिं पाओब आरा, इथे लागि रोइ गलय जलधारा।
विद्यापति कह सुनहु मुरारि, बसन लागल भाव रूप निहारि ॥

माघ की सद्य.स्नाता अपने वस्त्रों को बदल रही है और विद्यापति की सद्य:स्नाता सरोबर से नहाकर निकल रही है। भींगे वस्त्र नायिका के शरीर से छूटने के भय से रो रहे हैं। इसलिये उनसे जो पानी टपक रहा है वह भींगे वस्त्रों के आँसू हैं। भींगे वस्त्र उस नायिका के अङ्गों से चिपक गये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वह उसके अङ्गों को छोड़ने के कारण अत्यन्त दुखी होकर उन अंगों से चिपक कर यह कह रहे हों कि उनको अलग मत करो। विद्यापति के इस भाव में माघ के भाव से उत्कर्ष है। कपड़ों का चिपकना एक स्वाभाविक गुण है किन्तु कवि उसमें कल्पना के द्वारा यह भाव उत्पन्न कर देता है कि वस्त्र वियोग के भय से अङ्गों से चिपक गये हैं और रो-रोकर गिड़गिड़ा रहे हैं। विद्यापति ने नायिका के अङ्गों के सौन्दर्य के अङ्कन में जो उपमानों का प्रयोग किया है वह भी सुन्दर है। विद्यापति ने इस पद में नायिका के अङ्गों के सौंदर्य के अङ्कन के साथ साथ नायिका की भींगी साड़ी के चिपकने के सौंदर्य को भी नहीं छोड़ा है। साथ ही अलङ्कार, भाव, कल्पनाशक्ति को कवि ने इस पद में बड़ी सफलता के साथ दिखाया है। किसी के भाव को इस प्रकार से उपयोग करने के लिये कवियों में प्रतिभा की आवश्यकता होती है तभी वह अन्य किसी कवि के भाव को लेकर भी उसमें अपनी मौलिक उद्‌भावनाओं का समावेश

करके उसकी सुन्दरता में उत्कर्ष करते हैं। महाकवि विद्यापति की प्रतिभा की यही विलक्षण शक्ति थी जिसने उनको सौन्दर्य के अङ्कन में संस्कृत कवियों से पीछे नहीं रहने दिया।

संस्कृत में श्रीहर्ष एक महान कवि थे। उन्होंने अपनी रचना में सुन्दरता का ऐसा संग्रह किया जो संस्कृत साहित्य में आज भी उनके नाम को अमरता प्रदान कर रहा है। श्रीहर्ष ने दमयन्ती के नेत्र-वर्णन में अपनी कल्पना के द्वारा सौन्दर्य का सृजन किया है। उन्होंने नेत्रों को कमल मानकर पुष्प बाण का रूपक बाधा है—

इषुत्रयेणैव जगतत्रयस्य विनिर्जयात्पुष्पमयाशुगेन।
शेषाद्विबाणी सफलीकृतेयं प्रिया दृगम्भोज पदेभिषिच्य

महाकवि विद्यापति ने भी राधा के नेत्रों की सुन्दरता के चित्रण में इसी भाव को अपना कर अपनी कल्पना के द्वारा एक नवीनता दी है—

"सुधामुखि के बिहि निरमिल बाला।
अपरूप रूप मनोभव मंगल त्रिभुवन विजयीमाला॥

× × ×

तीन बान तिन भुवन मदन जिति अवधि रहल दुइ बाने।
बिधि बड़ दारुण बधिते रसिक जन सोंपल तोहर नयाने॥

श्रीहर्ष ने पुष्पबाण का रूपक बाँधा था किन्तु महाकवि विद्यापति ने अपनी राधा के नेत्रों में दो बाणों की कितनी सुन्दर कल्पना की है। कामदेव के पास पाँच बाँण थे जिनमें से तीन बाणों का प्रयोग तो वह तीनों लोकों को विजय करने में करता है, शेष दो बाँणों को उसने नायिका के दोनों नेत्रों को दे दिया उससे वह रसिक-जनों के हृदय को बेधती है। कवि की मौलिकता इसी को कहते हैं। यदि श्रीहर्ष ने पुष्पबाँण की कल्पना से नेत्रों को सुसज्जित किया तो विद्यापति ने कामदेव के दो बाणों की कल्पना करके नेत्रों को एक अपने ढङ्ग का सौन्दर्य प्रदान किया।

विद्यापति ने भारवि के भावों को भी अपनी रचना में कई स्थानों पर लिया है। किन्तु उन भावों में भी उन्होंने एक अपूर्व सौंदर्य दिखाया है—

तिरोहितान्तानि नितान्तमाकुलैरपां विगाहादलकैः प्रसारिभिः ।
ययुर्वधूनां वदनानि तुल्यतां द्विरेफवृन्दान्तरितैः सरोरुहैः ॥

इस श्लोक में भारवि ने नायिका को जल में स्नान करते दिखाया है। उसके केश उसके मुँह पर फैलकर उसे ढँक रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो भ्रमरों के समूह ने कमल को ढँक लिया हो।

इसी भाव का विद्यापति का पद है। किंतु विद्यापति की कल्पना सौन्दर्य के उन अनुपम मोतियों से अपने चित्र को सजाती है जो कि भारवि के चित्र से भिन्न है--

आइत पेखल नहाइल गोरी, कतिसँए रूप धनि आनलि चोरी।
अलकहि तीतल तेहि अति सोभा, अलिकुल कमले बेढ़ल मधुलोभा ॥

विद्यापति ने उसी भाव में कमल के रस का आरोप करके, भ्रमरों को उस रस के लोभ के कारण, उस मुख रूपी कमल से न हटने का भाव दर्शित किया है। यही उनकी मौलिकता है।

अमरुक भी संस्कृत के एक श्रृङ्गार प्रिय कवि हैं। विद्यापति के काव्य में उनके भावों को भी कई स्थानों पर पाया जाता है। अमरुक ने इस श्लोक में नायक के आने पर जो नायिका की दशा हुई है उसका चित्रण बड़ी सुन्दरता से किया है—

तद्वक्त्राभिमुखं मुखं विनमितं दृष्टिः कृता पादयोः।
तस्यालापकुतूहलाकुलतरे श्रोत्रे निरुद्धे मया ॥
पाणिभ्याञ्च तिरस्कृतः सपुलकः स्वेदोद्गमोद्गण्डयोः।
सख्यः किं करवाणी यान्ति शतधा यत कंचुके सन्धवः ॥

नायक के आगमन पर नायिका ने जो विचित्र चेष्टायें की हैं उनकी सुन्दरता से प्रभावित होकर कवि को अनुभूति हुई। उसने उस सौन्दर्यको अपने तक ही सीमित न रखकर सर्व साधारण को उस का रस पान करा दिया। नायक ने नायिका की ओर से मुख फेर लिया, दृष्टि को नीची रखा, कानों को भी बन्द कर लिया, यही नहीं उस नायिका ने नायक के सामीप्य सुख से आये स्वेद बिन्दुओं को भी पोंछ दिया किन्तु फिर भी उसकी चुस्त चोली का बन्द अचानक ही टूटकर उसके वास्तविक भावों को प्रकट करने का कारण बन

गया। यह नायिका के हृदयगत भावों के प्रदर्शित करने का सुन्दर चित्र है।

विद्यापति में भी इस प्रकार का एक भाव चित्र है किन्तु विद्यापति ने उसके सौन्दर्य की वृद्धि में जो कला-कौशल दिखाया है वह सराहनीय है—

"अवनत आनन कए हम रहलए वारल लोचन चोर।
पिया मुख रुचि पिवय धाओल जानि से चाँद चकोर॥
ततहु सओ हठे हठि मोए आनल धाएल चरन राखि।
मधुक मातल उड़ए न पारए तइअओ पसारए पाँखि॥
माधव बोलल मधुरी बानी से सुनि मुँदु मोए कान।
ताहि अवसर ठाम वाम भेल धारि धनुष पंचबान॥
तनु पसेवे पसाहनि भासलि तइसन पुलक जागु।
चुनि चुनि भए कांचुअ फाटलि बाहु बलया भांगु॥

अमरुक और विद्यापति में भाव का साम्य इतना है कि दोनों की नायिकाओं के सम्पूर्ण क्रिया-कलापों में कोई भेद ही नहीं। किन्तु फिर भी विद्यापति ने नायिका के नेत्रों के लिए चोरों की कल्पना करके उसके नेत्रों को अमरुक की नवीना से अधिक सौन्दर्य प्रदान कर दिया। चाँद और चकोर की उपमा द्वारा भी नायक के मुख के प्रति जो नायिका के नेत्रों में मोह है उसका बड़ा सुन्दर वर्णन है। नायिका के नेत्र 'मधुक मातल' हैं यह कहकर कवि ने उसके नेत्रों के सौन्दर्य को अङ्कन करके का कौशल दिखाया है।

ऊपर हम संस्कृत के उन कवियों से विद्यापति की रचनाओं की तुलना कर चुके जिनसे विद्यापति ने अपनी कविताओं के भावों को लिया है। हम देख चुके हैं कि महाकवि विद्यापति इन सम्पूर्ण कवियों के भावों को अपनाकर भी अपनी मौलिकता को नहीं खो सके हैं। सौंदर्य के अङ्कन में उनकी रुचि इन कवियों से निम्नकोटि की नहीं वरन परिष्कृत और नवीन है। हम उनकी कविताओं में यह भी देख चुके कि नायिका को आलम्बन बनाकर उन्होंने जो नख-शिख वर्णन किया है उसमें भी वह अपनी समता नहीं रखते। अब देखना चाहिये कि उन्होंने प्राकृतिक सौंदर्य को भी अपने काव्य में स्थान दिया है या नहीं।

प्रकृति का सौन्दर्य—महाकवि विद्यापति प्रकृति के सौंदर्य से भी प्रभावित

हुये। उन्होंने अपनी पदावली में प्रकृति के सौंदर्य को अनेकों स्थान पर चित्रित किया है। कवि ने नायिका के शारीरिक सौंदर्य की अभिवृद्धि के लिये प्रकृति के सुन्दर उपकरणों का प्रयोग किया है। कवि ने अपने काव्य में जो उपमानों का प्रयोग किया है वह प्रकृति की सुरम्य गोद से ही लिए हैं। विद्यापति ने बहुत से उपमान तो परम्परागत ही हैं परन्तु बहुत से उपमान उन्होंने नवीन भी लिये हैं। नख-शिख वर्णन में कवि ने जितने उपमानों का वर्णन किया है वह सब प्रकृति के उपादान ही हैं। मुख, अधर, दाँत, सिंदूर-विन्दु, केश, नयन, वाणी, ललाट, शरीर, नाक, भ्रू, कपोल, स्तन, आदि सबकी सुन्दरता में जो उपमान आये हैं वह प्रकृति के सुन्दर उपादान हैं।

मुख—कवि ने मुख के लिये जो उपमान प्रयुक्त किये हैं उनमें चन्द्रमा, कमल आदि हैं।

अधर—की सुंदरता के लिये कवि ने जिन प्राकृतिक उपमानों का प्रयोग किया है उनमें बिम्बाफल और मधुरि फूल हैं। इसी प्रकार दाँतों के लिये अनार के दाने, सिंदूर-विंदु के लिये सूर्य और केशों के लिये फणि, भ्रमर, शैवाल, चमरी, तथा यमुना आदि सुंदर उपमानों का प्रयोग किया गया है। जलधर और तिमिर को भी केशों के उपमान रूप में ही कवि ने प्रयुक्त किया है।

नेत्रों के लिये तो कवि ने प्रकृति के सम्पूर्ण उपकरणों का प्रयोग कर दिखाया है। कहीं उनके लिये सारंग (हरिण) कहीं चकोर और कहीं नलिन सफरि, भृङ्गि, खंजन, ज्योति, काजर सागर मदनुधनु, कमल, कुवलय आदि अनेक उपमान जुटाकर सौंदर्य की सृष्टि की है। कवि ने प्राकृतिक वस्तुओं की सुन्दरता को खोज खोजकर अपनी राधा के शरीर को सजाया है। ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवतः विद्यापति प्रकृति के उपकरणों से अलंकृत करके राधा को सौंदर्य की देवी बनाने में तत्पर रहते हैं। नीचे हम विद्यापति के उन उपमानों को दिखायेंगे जिनका प्रयोग उन्होंने अपनी पदावली में सौंदर्य के सृजन केलिए एक ही स्थान पर किया है और उनसे जो सौंदर्य की सृष्टि हुई है वह भी स्पष्ट हो जायगी। कवि राधा के शरीर के भिन्न-भिन्न अङ्गों की सुन्दरता के लिये प्रकृति के सुंदर उपादानों को किस प्रकार संग्रहीत करके सौंदर्य की सृष्टि करता है—

कि आरे ! नव यौवन अभिरामा ।
जत देखल तत कहए न पारिअ,
छओ अनुपम एक ठामा ।
हरिन इन्दु अरबिन्द करिनि हेम,
पिक बूझल अनुमानी ।
नयन बदन परिमल गति तन रुचि,
अओ अति सुललित बानी ॥
कुच जुग परसि चिकुर फुजि पसरल,
ता अरुझायल हारा ।
जनि सुमेरु ऊपर मिलि ऊगल,
चाँद बिहिनु सब तारा ॥
लोल कपोल ललित मनि कुण्डल,
अधर बिम्ब अध जाई ।
भौंह भ्रमर नासापुट सुन्दर,
से देखि कीर लजाई ॥"

सौंदर्य की राशि को देखकर कवि चकित हो जाता है। वह उसे वर्णन करने में अशक्त है क्योंकि विश्व की जितनी सुन्दर वस्तुएं हैं वह सब एक ही स्थान पर एकत्रित हैं। राधा के नेत्र हरिण के समान, मुख चन्द्रमा के समान -कमल शरीर की सुगंधि के समान तथा हस्तिनी, सुवर्ण, और कोयल के समान क्रमशः राधा की चाल, शरीर की कान्ति और मधुर वाणी है। राधा के केश बिखरे हुये हैं और उसके उरोजों को स्पर्श कर रहे हैं तथा उन बालों में ही उसकी मुक्तामाल भी उलझ गई है। कवि इस सुन्दरता को देखकर विभोर हो गया वह इस चित्र को समझाने के लिये प्रकृति के एक चित्र को प्रस्तुत करता है जो अपनी सुन्दरता से नायिका की सुन्दरता को हमारे सन्मुख स्पष्ट कर देता है। नायिका के काले बालों में सफेद मोतियों की माला इस प्रकार सुशोभित है मानो बादलों में चन्द्रमा के समान सम्पूर्ण तारागण खिल रहे हों। कुचों की सुन्दरता कवि ने सुमेरु पर्वत की सी मानी है। इसमें कवि ने दो गुणों को देखा है—रंग और ऊँचाई।

उपर्युक्त उद्धरण से कवि के सौंदर्य बोध का परिचय मिलता है। किस प्रकार वह प्राकृतिक सौन्दर्य का शारीरिक सौंदर्य से मेल करता है यह भी स्पष्ट है। पदावली में इस प्रकार के अनेक चित्र भरे पड़े हैं जिनमें कवि ने प्रकृति के सौन्दर्य से नारी के सौन्दर्य में वृद्धि की है। कवि ने इस कार्य में बहुत से तो परम्परा भुक्त उपमानों को लिया है और बहुत से नवीन उपमानों को प्रयुक्त करके उन्होंने अपने काव्य की सौन्दर्य वृद्धि की है।

कृष्ण के सौन्दर्यांङ्कन में भी कवि ने प्राकृतिक उपकरण का उपयोग करके एक अनुपम चित्र उपस्थित किया है—

"कमल जुगल पर चाँदक माला
तापर उपजल तरुन तमाला
तापर बेढ़िल बिजुरी लता
कालिंदी तट धीरे चलि जाता
सखा-सिखर सुधाकर पाँति।
ताहि नव पल्लव अरुनक भाँति॥
बिमल बिम्बफल जुगल विकास।
तापर कीर थीर करु बास॥
तापर चंचल खंजन-जोर
तापर साँपिन झाँपल मोर॥"

यह कृष्ण के अङ्गों का वर्णन है। किंतु कवि ने उपमानों के प्रयोग से ही शरीर का चित्र उपस्थित कर के दिखलाया है। कमल, चाँदक माला, तमाल, बिजुरीलता सखा-सिखर, सुधाकर पांति, नव पल्लव, बिम्बफल, कीर, खंजन, साँपिनि आदि सम्पूर्ण उपमान क्रमशः चरण, नख पंक्ति, शरीर, पीताम्बर, शाखारूपी बाहुएं हाथ की नख पंक्ति, हथेली, ओष्ठ, नासिका, नेत्र, वेणी आदि के लिये प्रयुक्त हुये हैं। कवि की सौंदर्य की परख के लिये उसकी सराहना करनी पड़ती है। शरीर के अवयवों की सुन्दरता को प्रकृति की सुन्दरता के द्वारा दिखलाने में विद्यापति सिद्धहस्त हैं।

प्रकृति के सौन्दर्य को भी कवि ने व्यापक रूप में देखा है। पदावली में प्रकृतिगत सौन्दर्य के अनेकों चित्र हैं। विरहिणी के विरह की तीव्रता को

प्रकृति का सौन्दर्य अधिक उद्दीप्त करता है। विद्यापति ने प्रकृति के ऐसे सौन्दर्य का भी वर्णन किया है—

'झंपि गरजंति संतत
भुवन भरि बरसंतिया।
कंत पाहुन काम दारुन
सघन खर सर हन्तिया॥
कुलिस कत सत पात मुदित
मयूर नाचत मातिया।
मत्त दादुर डाह डाहुक
फाटि जायत छातिया॥"

वर्षाकाल में इस प्रकार के अनेकों दृश्य प्रत्येक मनुष्य देखता है किंतु सौंदर्य का पारखी कवि उन चित्रों को देखकर अनुभूति से ओत-प्रोत होकर उस चित्र को सर्वसाधारण के आनंद का विषय बना देता है। यहाँ कविने इस चित्र को उद्दीपन के रूप में चित्रित कर के काव्य के आन्तरिक सौन्दर्य को दिखलाया है। प्रकृति में इधर इतना उल्लास और आनन्द है उधर विरहिणी के हृदय पर इस उल्लास और आनन्द का जो प्रभाव पड़ता है उससे उसकी सम्पूर्ण वेदना उभर आती है। उस वेदना के साथ २ उसका तार २ झंकृत हो उठता है और इस प्रकार काव्य के वास्तविक सौन्दर्य की सृष्टि होती है।

विद्यापति ने प्रकृति को अधिकतर उद्दीपन के रूप में ही देखा। विरह वर्णन में उन्होंने बारह मासा लिखकर एक अत्यन्त उच्चकोटि की सौन्दर्य सृष्टि की है। किंतु यह सब उन्होंने नायिका के हृदयगत भावों को उद्दीप्त करने के लिये ही किया है। वसंत वर्णन में कवि ने अवश्य प्रकृति को स्वतंत्र रूप से लेकर कुछ सुन्दर चित्रों को दिखलाया है—

इसी प्रकार का एक और चित्र है जिसमें प्रकृति को स्वतंत्र रूप में ही देखा है—

"चल देखए जाऊ रितु बसंत
जहाँ कुंद - कुसुम केतकि-हंसत

जहाँ चन्दा निरमल भ्रमर कार।
जहाँ रयनि उजागर दिन आँधार॥"

बसंत के सौन्दर्य का कवि ने चित्र उपस्थित कर दिया है। बसंत की सुन्दरता से कवि इतना प्रभावित है कि उसने बसंत को एक राजा मानकर और अन्य प्राकृतिक वस्तुओं को, जोकि बसंत ऋतु में विकसित हुई हैं, उस राजा की साज सजा की वस्तुऐं मानकर अत्यन्त चित्ताकर्षक चित्र उपस्थित किया है—

"आएल रितुपति राज बंसत।
धाओल अलिकुल माधवि पंथ॥
दिनकर किरन भेल पौगण्ड।
केसर कुसुम धएल हेमदंड॥
नृप आसन नव पीठल पात।
काँचन कुसुम छत्र धरु माथ॥

विद्यापति ने सौन्दर्य की रचना प्रत्येक क्षेत्र में की। उनको सौन्दर्य से इतना प्रेम था कि दुःख और वेदना से पीड़ित नायिका के सौंदर्य की ओर भी उनका ध्यान सदैव रहा। पदावली में उन्होंने राधा के विरह पीड़ित शरीर का अनेक स्थानों पर जो वर्णन किया है उसमें भी कवि ने सुन्दरता को अवश्य देखा है।

काव्य के वाह्य उपकरण जैसे भाषा, छन्द, अलंकार आदि के प्रयोग में भी कवि का ध्यान सुन्दर की ओर ही अधिक रहा। यही कारण है कि पदावली में एक एक पद प्रत्येक दृष्टि से सफल है। शब्दावली के चुनाव में कवि ने बड़ी सावधानी और चतुरता दिखलाई है। अनुप्रास प्रियता भी कवि का विशेष गुण है।

नयन नलिन दउ अँजन रंजइ भू विभंग विलासा।
चकित चकोर जोर विधि बाँधल केवल काजर पासा॥
गिरिवर गरुय पयोधर परसित गीव गज मोतिक हारा।
काम कम्बु भरि कनक शंभु परि ढारइ सुरधुनि धारा॥

ऊपर अनुप्रास के सुन्दर प्रयोग कितने अच्छे ढंग से किये गये हैं। साथ ही भाषा की सरलता का सौन्दर्य भी है। विद्यापति संगीत के सौंदर्य से भी पूर्ण परिचित थे इसीलिये उनके अनेक पदों में संगीत भी उच्चकोटि का है।

"बाजत द्रिग द्रिग धौद्रिम द्रिमिया
नटति कलाबति माति श्याम संग
कर करताल प्रबंधक ध्वनिया॥
डम डम डंफ डिमिक डिम मादल
रुनुझुन मंजीर बोल
किंकिनि रन रनि बलआ कनकनि।
निधुवन रास तुमुल उतरोल॥

उपर्युक्त पद में कवि की भाषा और छंद दोनों ही अत्यन्त सुन्दर हैं। एक नहीं अनेक उदाहरणों से यह सिद्ध किया जा सकता है कि कवि विद्यापति सौंदर्य के कवि हैं।

आन्तरिक सौंदर्य—ऊपर कवि की रचना के वाह्यसौंदर्य को देखा। अब हमको कवि के आन्तरिक सौंदर्य को देखना चाहिये क्योंकि उसी के कारण प्रत्येक कवि महाकवि माना जाता है। विद्यापति भी एक महाकवि हैं और वह भी किसी महाकाव्य को लिखकर नहीं वरन् गीतिकाव्य की रचना कर के ही हुए हैं। फिर हमको देखना चाहिये कि ऐसा क्या गुण है जिसके कारण उनको साहित्य में इतना उच्च स्थान मिला। प्रत्येक साहित्य मानव हृदय का स्पष्टीकरण करता है। जिस साहित्य में हृदय को जितना अधिक प्रकट किया जाता है वह साहित्य उतना ही अमर बनता है। विद्यापति की पदावली में हृदय की सूक्ष्मातिसूक्ष्म वृत्ति को भी नहीं छोड़ा गया। संयोग का आनंद और उल्लास, प्रिय की प्रतीक्षा में उत्सुकता, तथा विरह की अनेक अवस्थाओं का चित्रण मिलता है। यही काव्य का सत्य है और यही जीवन का सत्य है।

विद्यापति राधा और कृष्ण के प्रेमोदय की भावना को किस सुन्दरता से चित्रित करते हैं। मार्ग में राधा और कृष्ण के नयन मिले। नयनों के मिलते ही कामदेव ने दोनों के हृदय को अपने वाणों से वेध दिया। दोनों एक दूसरे के प्रेम में इतने विभोर हुये कि एक दूसरे की सुन्दरता को अपलक दृष्टि से देखने लगे।

इसी प्रकार सूर ने भी प्रथम-मिलन के इसी भाव का चित्रण किया है—

"सूर स्याम देखत ही रीझे, नैन नैन मिलि परी ठगोरी।"

इसी प्रकार का एक और चित्र कवि ने अङ्कित किया है। राजपथ में कृष्ण ने राधा को देखा ? राधा की भाव भंगिमा ने कृष्ण के प्राणों को प्रेम की पीड़ा से पीड़ित कर दिया। कृष्ण को उस चन्द्रमुखी के देखने की साध बनी रही। राधा ने सुन्दर कमलिनी के समान नेत्रों को तिरछा करके कृष्ण को तनिक देर तक देखा। उसके देखने से कविको ऐसा प्रतीत हुआ कि मानों खंजन पक्षी को जंजीर से बाँध दिया हो और वह कृष्ण की दृष्टि पड़ते ही अचानक गायब हो गया हो—

"पथ-गति पेखल मो राधा।
तखनुक भाव परान पए पीड़लि
रहल कुमुद-निधि साधा॥
ननुआ नयन नलिनि जनि अनुपम
बंक निहारइ थोरा।
जनिश्रंखल खगवर बाँधल
दीठि नुकालय मोरा॥"

प्रेम की पीड़ा के साथ २ कवि ने राधा की मुद्राओं का भी समावेश किया है। विद्यापति ने अपने काव्य में आन्तरिक वृत्तियों को स्पष्ट करने के लिये हाव-भाव और मुद्राओं आदि वाह्य चेष्टाओं को भी साथ ही साथ लिया है। ऐसा करने से उनके काव्य के दोनों पक्ष वाह्य और आन्तरिक समान रूप से विभूषित हुए हैं।

प्रेम पीड़ित नारी के हृदय को कवि विद्यापति ने बड़े ध्यान पूर्वक देखा है। प्रेम विह्वल राधा कामदेव से बातें करके अपने हृदय की वेदना को अङ्कित करती है। प्रेमिका की लाचारी के भाव को व्यंजित करने में कवि विद्यापति कितने कुशल हैं—

'मनमथ तोहे की कहब अनेक।
दिठि अपराध परान पए पीड़सि
से तुअ कौन विवेक॥'

विद्यापति ने संयोग वर्णन में मानसिक वृत्तियों के सौन्दर्य को उतना नहीं देखा जितना कि वियोग वर्णन में देखा है। बात भी स्पष्ट है, संयोग में

हृदय प्रेम से परितृप्त रहता है और इसलिये उसमें उतना उतार चढ़ाव नहीं, किन्तु वियोग में प्रेम की मात्रा अधिक बढ़ जाती है। राधा के प्रियतम के विदेश जाने पर राधा का हृदय विदीर्ण हो जाता है और उसके मन में अनेक भावनाओं का अंतर्द्वंद्व होता है। कवि विद्यापति ने इन भावनाओं का जो चित्रण किया है वही उनके काव्य का वास्तविक सौन्दर्य है और इसीलिए कवि को महाकवि की उपाधि मिली। आशा, निराशा, की अनेक गुत्थियों को सुलझाने में कवि प्रयत्नशील है। कृष्ण के विदेश जाने पर राधा की उक्ति कितनी मार्मिक है—

माधव तोंहें जनु जाह विदेशे।
हमरो रंग रभस लए जएवह लएवह कौन सन्देशे॥
बनहिं गमन करु होएत दोसर मति बिसरि जाएब पति मोरा।
हीरा मणि माणिक एको नहि माँगव फेर माँगव पहु तोरा॥

राधा के प्रेम की अपूर्व झाँकी है। राधा कृष्ण को विदेश जाने से रोकती है और यह भी कहती है कि आप अकेले नहीं जा रहे वरन् अपने साथ मेरे हास परिहास (रंग रभस) को भी ले जारहे हैं। राधा को भय है कि कहीं कृष्ण उसको विदेश में जाकर भुला न दे अन्यथा उसका सर्वनाश हो जायेगा। वह कृष्ण से केवल एक ही वस्तु की आकाँक्षा करती है—'फेर माँगव पहु तोरा' निस्वार्थ प्रेम की भावना का कितना सुन्दर समन्वय हुआ है। यही इस पद का भाव सौन्दर्य है।

कृष्ण राधा की अनुनय विनय की परवाह न करके अपनी यात्रा को स्थगित नहीं करते। वे विदेश गमन को तत्पर हैं। उनकी इस निष्ठुरता से अथवा अपने प्रेम के आधिक्य से राधा का हृदय टुकड़े टुकड़े हो जाता है और वह कृष्ण के मुख को देख देखकर व्याकुल होती है। उसकी हिलकी बँध जाती हैं और नेत्रों से अश्रु प्रवाह अबाध गति से प्रवाहित होने लगता है। वह अपनी लाचारी में रोने के सिवाय और कुछ नहीं देखती। कितनी कारुणिक दशा है—

कानु मुख हेरइते भाविनि रमनी
फुकरइ रोअत झर झर नयनी

अनुमति माँगिते वर बिधु बदनी
हरि हरि शबदे मुरछि पड़ु धरनी ।

हृदय की वेदना को उभाड़कर रख दिया है। प्रेम की यह भावना राधा की ही नहीं वरन् संसार की समस्त प्रेमिकाओं के हृदय की सुन्दर झाँकी है। इन्हीं झाँकियों में ही काव्य का वास्तविक सौन्दर्य है।

कृष्ण के विदेश गमन के समाचार को सुनकर केवल राधा ही दुखी नहीं हुई वरन गोकुल के समस्त प्राणियों में वियोग जन्य दुःख का पाला पड़ गया। पिंजरे में शुक रोने लगा, गायें मथुरा की ओर मुख करके भागने लगीं और यमुना का वही किनारा जिस पर कृष्ण के साथ अनेकों बार क्रीड़ायें की गई थीं आज बड़ा ही भयानक लग रहा है—

"हरि मथुरा पुर गेल, आजु गोकुल शून भेल।
रोदति पिंजर शुके, धेनु धावइ मथुरा मुखे।
अब सोइ जमुना कूले, गोप गोपी नहिं बूले।

वियोग का कितना व्यापक प्रभाव है। पुरुष और स्त्रियाँ ही नहीं वरन् पशु और पक्षिओं तक को वियोग की वेदना ने प्रभावित किया है।

राधा की सखियाँ उसे आश्वासन देती हैं और कहती हैं कि इतनी व्याकुल मत हो, कृष्ण अवश्य आयेंगे। किन्तु राधा के धैर्य की समाप्ति थी। इस प्रकार के आश्वासन सुनते २ उसके कान भर गये थे। कई वर्षों से वह प्रतीक्षा कर रही थी। वह खीजकर कहने लगी—

"सजनी के कह आओब मधाई
बिरह पयोधि पार पुन पाओब, मझु मन नहिं पतिआई॥
एखन तेखन कर दिवस गमाओल दिवस दिवस करि मासा।'

राधा की इस उक्ति में कितनी विवशता है और साथ ही उसके हृदय की कितनी सुन्दर झाँकी है। इस प्रकार के अनेकों भावों को कवि ने राधा के हृदय से निस्सरित कराया है। इन्हीं भावों को ही काव्य में चित्रण करना काव्य के आन्तरिक सौन्दर्य में वृद्धि करना है। कवि की सफलता भी इसी पर निर्भर है कि उसने अपनी कला-कृति में कितना भाव-सौन्दर्य सहेज कर रखा है। विद्यापति ने सौन्दर्य के प्रत्येक पहलू को देखा और उसके द्वारा अपने काव्य

को सुशोभित करके अपने आपको सौन्दर्य का कवि घोषित कर दिया। यही उनकी सफलता की कुंजी है और यही उनके महाकवि होने के रहस्य की परिचायक है।

प्रकृति-प्रेम

मानव और प्रकृति का साहचर्य्य आदि काल से है। प्रकृति के सहयोग से ही मानव की चित्तवृत्तियाँ परिष्कृत एवं शुद्ध होती रही हैं। आदि कवि बाल्मीकि ने प्रकृति के साहचर्य्य के कारण ही अपनी लेखनी से एक अमर महाकाव्य की रचना की। प्रकृति उनके काव्य में मूर्त्तिमान होकर खड़ी है। महाकवि बाल्मीकि के काव्य का सबसे बड़ा सौंदर्य यही है कि उन्होंने प्रकृति को जिस रूप में देखा उसी रूप में उसका वर्णन किया। प्रकृति के चित्रों का संश्लिष्ट चित्रण ही इनके काव्य की पृष्ठभूमि है। बाल्मीकि की इस परम्परा के दर्शन हमको कालिदास एवं भवभूति में मिलते हैं। उन दोनों महाकवियों के काव्य में प्रकृति को स्वतन्त्र रूप से ही देखा गया। किंतु आगे चलकर संस्कृत में रीति और अलङ्कार सम्प्रदाय के प्रभाव के कारण प्रकृति की स्वतंत्रता को छीन लिया गया। नायिका के सौंदर्य उत्कर्ष अथवा परिस्थितियों के पिष्टपेषण में प्रकृति को स्थान मिला। उसका स्वतंत्र रूप कुछ नहीं रहा। कहीं राधा और कृष्ण के विलास को बढ़ाने में उसका उपयोग हुआ, कहीं नायिका को अभिसार कराने में प्रकृति को परिचायिका बनाया गया, कहीं विरहको उद्दीप्त करने में प्रकृति का सहारा लिया गया। प्रकृति के विशुद्ध चित्रण का धीरे-धीरे लोप हो गया और प्रकृति का उद्दीपन रूप ही अधिक अपनाया जाने लगा। बहुत से कवियों ने प्रकृति को अलंकारिक वर्णनों में स्थान दिया। प्रकृति के उपादानों को नायिका के अङ्ग-प्रत्यङ्ग का उपमान बनाकर व्यवहृत करने में ही उनको अपने काव्य का महत्व दिखलाई देता था। नायिका का मुख, दाँत ओष्ट, नाक सभी की समता प्रकृति के उपकरणों से की जाने में ही कवि की सफलता थी।

इस प्रकार काव्य में संश्लिष्ट चित्रण का महत्व कम हुआ और उद्दीपन रूप से प्रयोग किया जाने लगा। नायिका के भावों के अनुकूल ही प्रकृति अपना

रंग बदलती रही। यदि नायिका दुखी है तो समस्त प्रकृति भी उसके दुख से दुखी है। यदि नायिका प्रसन्न है तो सम्पूर्ण प्रकृति भी उसके आनन्द से उल्लसित एवं प्रफुल्लित है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रकृति का चक्र नायिका के इङ्गित पर ही चलता रहेगा।

महाकवि विद्यापति ने भी प्रकृति का व्यवहार अपने काव्य में किया किंतु वह भी एक अलंकार शास्त्री थे और नायिका भेद, नख-शिख वर्णन आदि में संस्कृत के रीति सम्प्रदाय से प्रभावित थे, इसलिये उनके काव्य में प्रकृति का स्वतंत्र रूप अधिक नहीं, प्रकृति के परतंत्र रूप के ही दर्शन अधिक होते हैं। किंतु उन्होंने प्रकृति को इतने व्यापक रूप में देखा है कि उसका कोई कोना अछूता नहीं रहा। यही कारण है कि इनकी कविता उस दोष से मुक्त है जो रीतिकालीन कविता के ऊपर लगाया गया है। महाकवि विद्यापति ने अपने काव्य में कृष्ण और राधा को आलम्बन बनाया और उनको अलंकृत करने में प्रकृति का प्रयोग किया। पदावली में प्रकृति के कितने ही रूप दिखलाई देते हैं। कभी तो प्रकृति के उपकरणों के द्वारा कवि राधा और कृष्ण के शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग की रचना करता है। कभी प्रकृति की सुरम्य गोद में उनकी केलि-क्रीड़ाओं को दिखलाता है। कभी उनके दुख में प्रकृति का वही आनन्दकारी रूप उनके हृदय को विदीर्ण कर देता है। बसंत वर्णन में कवि प्रकृति में मानवीकरण के द्वारा सौंदर्य को चित्रोपमता प्रदान करता है। वास्तव में विद्यापति सौंदर्य के कवि थे उनका हृदय स्वाभाविक रूप से प्रकृति के सौंदर्य की ओर आकर्षित हुआ और उन्होंने प्राकृतिक सौंदर्य और नायिका के शरीर सौंदर्य का समन्वय करके अपने काव्य को अक्षुण्ण गौरव प्रदान किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विद्यापति का प्रकृति वर्णन अनेक रूपों में हुआ है जिनमें मुख्य रूप अलङ्कारिक और उद्दीपन ही है। इसके अतिरिक्त परिस्थित के अनुकूल भी प्रकृति का वर्णन भरा पड़ा है। संश्लिष्ट वर्णन में बसंत के कुछ पदों को लिया जा सकता है। मानवी करण का रूप कवि के बसंत वर्णन ही में है। मोटे रूप से हम विद्यापति के प्रकृति चित्रण को निम्न लिखित रूपों में ही देखेंगे—

१—प्रकृति का अलंकारिक चित्रण

२—परिस्थितियों के अनुकूल

३—स्वतन्त्र चित्रण

४—मानवीकरण

उपर्युक्त रूपों के अतिरिक्त अन्य रूपों के दर्शन मिलते हैं किंतु वे सब गौण रूप में ही हैं।

१—प्रकृति का अलङ्कारिक चित्रण

राधा और कृष्ण के नख-शिख वर्णन में प्रकृति का उपयोग अलंकारिक रूप में ही हुआ है। कहीं-कहीं पर तो प्रकृति प्रत्यक्ष रूप में आकर राधा के अवयवों का स्थान ग्रहण कर लेती है और कवि की कल्पना राधा के शरीर का निर्माण प्रकृति के उपकरणों से ही कर देती है—

"माधव की कहब सुन्दरि रूपे।
कतेक जतन विहि आनि समारल,
देखल नयन सरूपे॥
पल्लव - राज चरन - जुग सोभित,
गति गजराजक भाने।
कनक कदलि पर सिंह समारल,
तापर मेरु समाने॥
मेरु ऊपर दुइ कमल फुलायल,
नाल बिना रुचि पाई।
मनिमय हार धार बहु सुरसरि,
तओ नहिं कमल सुखाई
अधर बिम्ब सन, दसन दाड़िम-बिजु,
रवि ससि उगथिक पासे।
राहु दूर बस नियरो न आवथि,
तैं करथि गरासे॥
सारंग नयन बयन पुनि सारँग,
सारँग तसु समधाने।

सारँग ऊपर उगल दस सारँग,
केलि करथि मधु पाने ॥"

राधा के रूप को प्रकृति के उपमानों के द्वारा निर्मित कर दिया है। इस पद में जो उपमान आये हैं वह सब परम्परा भुक्त उपमान हैं और अङ्ग विशेष के प्रतीक भी। सांग रूपक के द्वारा कवि ने राधा के शरीर के सौंदर्य का वर्णन किया है। राधा के चरण कमल के समान, उसकी गति मत्त गजराज की भाँति, सुवर्ण कदली स्तम्भ के समान उसकी जंघायें और सिंह की सी कटि है।

सुमेरु पर्वत के समान उभरे वक्ष पर दो कमल के पुष्प (उरोज) प्रफुल्लित हैं। उन दोनों विचित्र कमलों की विशेषता यह है कि अन्य कमल तो नाल से शोभित हैं किन्तु यह दोनों कमल बिना नाल के हैं। मोतियों की माला सुमेरु पर्वत (कुचों) पर पड़ी ऐसी प्रतीत होती है कि मानो गंगा की पवित्र धारा हो। और सम्भवतः यही कारण है जिससे दोनों कमल (उरोज) नाल न होने पर भी सदा विकसित ही रहते हैं।

राधा के अधर बिम्बाफल के समान हैं और दाँत अनार के दाने के समान हैं। लाल सिंदूर का टीका उस बाला के मुख-चन्द्र पर बालसूर्य के समान है। ऐसा प्रतीत होता है कि सूर्य और चन्द्रमा एक ही स्थान पर उदय हो रहे हैं। सूर्य और चन्द्र के अतिरिक्त केश रूपी राहु है किंतु वह चंद्र और सूर्य को एक साथ देखकर उन पर आक्रमण नहीं करता।

राधा के नेत्र चकित हरिणी के समान हैं और वाणी कोयल के समान है। राधा का ललाट कमल के समान है और उस पर लटकी अलकें भ्रमर पंक्ति हैं। और क्योंकि उसका कमल जैसा मुख है उस पर भी केशों की अलकें भ्रमर के समान बैठी हुई मधु पीती सी लग रही हैं।

विद्यापति के सम्पूर्ण उपमान प्रकृति के ही उपकरण हैं उन्हीं के प्रयोग के द्वारा कवि ने राधा के नख से लेकर शिख तक सम्पूर्ण अवयवों का चित्रण किया है।

कृष्ण के रूप-चित्रण में भी कवि ने प्रकृति के उपकरणों का उसी प्रकार प्रयोग किया है। राधा कृष्ण के रूप को देखकर उसका वर्णन अपनी सखी से करती है—

"ए सखि पेखलि एक अपरूप।
सुनइत मानवि सपन सरूप॥
कमल जुगल पर चाँदक माला।
तापर उपजल तरुन तमाला॥
तापर बैठलि बिजुरी लता।
कालिन्दी तट धीरे-धीरे चलि जाता
सखा - सिखर सुधाकर पाँति।
ताहि नव पल्लव अरुनक भाँति॥
विमल बिम्बफल जुगल विकास।
तापर कीर थीर करु बास॥
तापर चँचल खँजन जोर।
तापर सांपिन झाँपल मोर॥"

कृष्ण के अङ्ग-प्रत्यङ्ग के उपमान प्रकृति के सुन्दर उपकरणों में से ही हैं।

कहीं पर राधा के अङ्गों के द्वारा ही प्रकृति के उपकरणों में विकास होता है—

जहाँ - जहाँ पग जुग धरई। तहिं - तहिं सरोरुह झरई॥
जहाँ - जहाँ झलकत अङ्ग। तहिं - तहिं बिजुरि तरँग॥
जहाँ - जहाँ नयन विकास। तहिं - तहिं कमल प्रकाश॥

अलंकारिक रूप में राधा और कृष्ण के सौंदर्यके अनेक उदाहरण पदावली में भरे पड़े हैं। उपमा अलंकार के प्रयोग के कारण कवि को उपमानोंसे अधिक कार्य पड़ा है इसलिये प्रकृति के जितने सुन्दर उपकरण हैं उनका समावेश विद्यापति के काव्य में सफलता पूर्वक हुआ है।

परिस्थितियों के अनुकूल प्रकृति चित्रण—

विद्यापति शृंगार रस के कवि हैं। उन्होंने संयोग और वियोग के चित्रण में ही अपनी कविता रूपी सुधा की वर्षा की है। संयोग में प्रेमी और प्रेमिका आनन्दातिरेक में निमग्न रहकर नाना प्रकार के विलास और केलि-क्रीड़ाओं में भाग लेते हैं किंतु वियोग में उनका हृदय जर्जरित होकर करुण-क्रन्दन करता है विद्यापति ने संयोग की आनन्दमयी परिस्थितियों में प्रकृति को आनन्दमय

ही देखा है। प्रकृति का यह उद्दीपन रूप है। इस दशा में कोकिल की कूक और मोर की ध्वनि भी आनन्द की ही सृष्टि करती है। युगल प्रेमी संपूर्ण प्रकृति को आनन्द में निमज्जित ही देखते हैं। किंतु वियोगावस्था की वेदना में नायिका का हृदय खण्ड-खण्ड होकर रुदन करता है। प्रकृति भी उस वेदना को और अधिक उद्दीप्त करती है। संयोग के अवसर पर प्रकृति का प्रत्येक क्रिया-कलाप नायिका के आनन्द और उल्लास में सहायक ही होता था। किंतु अब वियोगावस्था की दयनीय दशा में प्रकृति का आनन्द उस परिस्थिति के अनुकूल होकर दुख और वेदना को अधिक उद्दीप्त करता है। अब कोयल की बोली, मोर की ध्वनि, बादल की गर्जन, चंद्रमा की स्निग्ध चन्द्रिका उसकी दशा को और अधिक वेदना से परिप्लावित कर देती है। संयोग के अवसर पर प्रकृति की सम्पूर्ण वस्तुयें भी आनन्द में विभोर हैं—

'नव वृन्दावन नव नव तरुगन।
नव नव विकसित फूल।
नवल बसंत नवल मलयानिल,
मातल नव अलि कूल ॥
विहरइ नवल किशोर,
कालिन्दी - पुलिन - कुंज बन सोभन,
नव नव प्रेम विभोर ॥

राधा और कृष्ण के बिहार के साथ-साथ प्रकृति के सम्पूर्ण उपकरण भी आनंद में निमग्न हैं। यही प्रकृति का परिस्थित के अनुकूल चित्रण है। इस प्रकार का चित्रण वियोग की परिस्थितियों में अधिक हुआ है। जिस प्रकार यहाँ पर प्रकृति राधा और कृष्ण के आनन्द और प्रेम के अनुकूल आनन्द और प्रेममयी है। वहाँ राधा की वेदना के अनुसार ही प्रकृति भी वेदनामयी हो जाती है। वियोग को उद्दीप्त करने में इस प्रकार की प्रकृति का बड़ा हाथ होता है।

सखी राधा से कृष्ण की दशा की चर्चा करती है। वह कहती है कि हे राधा तेरे वियोग में कृष्ण की दशा बड़ी दयनीय होरही है। मैंने उनको मौलश्री के वृक्ष के नीचे बैठे देखा। हे सखी, उनके नील कमल के समान नेत्रों से

झर-झर आँसू गिर रहे थे। शीतल, मंद, सुगन्धित मलय समीर प्रलयकालीन प्रबल अग्नि के समान उनके शरीर को दग्ध कर रहा था।

"विरह व्याकुल बकुल तरुतर,
पेखल नन्द कुमार रे।
नील नीरज नयन सयँ सखि,
ढरइ नीर अपाररे॥"

× × ×

बहइ मन्द सुगन्ध सीतल,
मन्द मलय समीर रे।
जनि प्रलय कालक प्रबल पावक
दहइ सून सरीर रे॥"

मलयानिल सर्वदा सुख और शान्ति देने वाली है किंतु वियोग में यह भी दुख ही देती है। कृष्ण को वियोग का ही दुःख जलाये दे रहा था। उस पर यह शीतल, मंद, सुगन्धित वायु और अधिक उस वियोगाग्नि को तीव्र कर रही है। संयोग में यही आनंददायिनी होती है किंतु विरह में यह भी परिस्थित के अनुकूल होकर विरही को भयंकर यातना देती है।

वर्षा ऋतु संयोगिनी के लिये अत्यंत सुखद होती है। किंतु विरहिणी के लिये मोरों की आवाज़ कामदेव की पीड़ा को बढ़ाती है। सावन की घनघोर वर्षा में नायिका के हृदय में विरह की पीड़ा और अधिक हो जाती है। पानी की धार उस विरहिणी को बाँण के समान प्रतीत होती है।

"मोर बन बन सोर सुनइत,
बढ़त मनमथ पीर।
प्रथम छार असाढ़ आओल,
अबहु गगन गंभीर॥
दिवस रयना अरे सखी,
कइसे मोहन बिनु जाए।
आवए साओन बरिए आओन
घन सोहाओन वारि॥

पँच सर-सर छुटत रे, कइसे,
जीअऐ बिरहिनि नारि ॥

यदि नायिका विरह की मारी नहीं होती तो प्रकृति क्यों उसके साथ इस प्रकार की निर्ममता दिखाती। प्रकृति भी उसे दुखी देखकर दुखी कर रही है---

"फुटल कुसुम नव कुंज कुटिर वन
कोकिल पंचम गावे रे।
मलयानिल हिम सिखर सिधारल
पिया निज देस न आवे रे ॥
चानन चान तन अधिक उतापत
उपवन अलि उत्तरोले रे।
समय बसन्त कन्त रह दुर देस
जानल विधि प्रतिकूले रे ॥"

नायिका की वेदना में प्रकृति भी वेदनामयी हो गई है। नायिका अपनी दशा को अपनी सखी को सुना रही है—हे सखी चारों ओर पुष्प खिल रहे हैं। कुंज और कुटीर में कोयल अपनी पंचम तान सुना रही है। मलियानिल हिमालय की ओर चला गया है उसके स्थान पर दक्षिण का पवन प्रवाहित हो रहा है। परन्तु प्रियतम अब भी घर नहीं आये। वियोग में चन्द्रमा और चन्दन भी अब शीतलता न देकर शरीर को दग्ध करते हैं।

महाकवि विद्यापति ने अपने प्रकृति चित्रण में बारहमासा भी लिखा। यही बारहमासा आगे जायसी सूर में भी हमको मिलता है। किस प्रकार भिन्न २ महीने वियोगिनी के दुःख को उद्दीप्त करते हैं। प्रथम असाढ़ मास आता है। राधा की अवस्था को अत्यन्त दुःखमय कर देता है।

"मास असाढ़ उनत नव मेघ
पिया विसलेख रहओ निरथेध
कोन पुरुष सखि कोन से देस
करब मोय जहाँ जोगिनी भेस"

सावन के महीने में तो विरहिणी की दशा और बिगड़ जाती है—

साओन मास बरसि घन वारि ।
पंथ न सूझे निसि आँधियारि ॥
चौदिसि देखिये बिजुरी रेह ।
से सखि कामिन जीवन संदेह ॥

भादों का महीना और भी अधिक दुखदाई हो जाता है—

भादव मास बरसि घन घोर
सभदिसि कुहुकए दादुर मोर
चेहुँकि चेहुंकि पिया कोर समाय ।
गुनमति सूतलि अङ्क लगाइ ॥

भादों मास में घनघोर वर्षा होती है और चारों ओर दादुर और मोर शब्द करते हैं। ऐसे अवसर पर पुण्यवती स्त्रियाँ अपने प्रियतम के अङ्क में सोती हैं और बादल के गरजने पर विद्युत के चमकने पर वह चौंक चौंक कर अपने प्रियतमों की गोद में छिप जाती हैं। परन्तु वेचारी विरहिणी को इस प्रकार का सुख कहाँ।

जायसी की नागमती की विरह दशा भी इसी प्रकार असाढ़ के मेघों की गर्जन को सुनकर उद्दीप्त होती है। जायसी ने भी अपने बारहमासे को केवल इसीलिये लिखा है जिससे उसकी विरहिणी नागमती की विरह दशा और प्रेम की झांकी हो सके।

चढ़ा असाढ़, गगन घन गाजा। साजा विरह दुंद दल बाजा ॥"

जायसी वियोग वर्णन में सिद्ध हस्त कवि हैं। उन्होंने नागमती को रानी की दृष्टि से न देखकर सामान्य भावभूमि पर देखा है। नागमती सम्पूर्ण जीव जन्तुओं के प्रति सहानुभूति रखती है।

स्वतन्त्र चित्रणः—हम ऊपर कह चुके हैं कि विद्यापति का मुख्य उद्देश्य प्रकृति के द्वारा अपनी राधा और उसके सौन्दर्य की अभिवृद्धि करना था। इसलिये पदावली में प्रकृति के दो रूप--अलंकारिक और उद्दीपन को ही अधिक दिखाया है। स्वतन्त्र चित्रण का पदावली में अभाव ही है। बसंत में एक दो पद में अवश्य स्वतंत्र चित्रण की झलक दिखाई देती है। विद्यापति के काव्य में राधा और कृष्ण को केन्द्र बनाकर सभी बातें उनके लिये ही की गई हैं। यदि प्रकृति

में आनन्द है, पुष्प खिल रहे हैं, चारों ओर शीतल मन्द और सुगन्धयुक्त वायु चल रही है तो बिद्यापति के हृदय में तुरन्त ही यह लोभ होता है कि ऐसे सुन्दर वातावरण में सौंदर्य की मूर्ति राधा और कृष्ण का विलास क्यों न करा दिया जाय। इस लोभ को संयत न करने के कारण वह तुरन्त ही संश्लिष्ट प्रकृति वर्णन को उद्दीपन के रूप में परिवर्तित कर देते हैं। यही मुख्य कारण है जिससे उनके काव्य में संश्लिष्ट—प्रकृति चित्रण का वह रूप नहीं जो वाल्मीकि और कालिदास आदि कवियों के प्रकृति चित्रण में मिलता है। बसन्त के वर्णन में कवि के संश्लिष्ट चित्रण के एक दो नमूने मिल सकते हैं जहाँ प्रकृति के स्वतन्त्र रूप को नष्ट करने के लिये कृष्ण और राधा का नाम अवश्य नहीं आया है।

"मधुरित मधुकर पांति। मधुर कुसुम मधुमाति।
मधुर वृन्दावन माँझ। मधुर मधुर रस साज॥"

किन्तु इस प्रकार के वर्णन अधिक नहीं। बसन्त वर्णन में यदि राधा कृष्ण और राजा शिवसिंह और रानी लखिमा देवी का नाम निकाल दिया जाय तो सभी वर्णन संश्लिष्ट प्रकृति चित्रण के ही हो सकते हैं।

प्रकृति का मानवीकरणः—विद्यापति ने बसन्त के वर्णन में बसन्त को कहीं पर नवजात शिशु के रूप में, कहीं राजा के रूप में, कहीं दूल्हा के रूप में चित्रित किया है। बसन्त को नवजात शिशु मान कर जो वर्णन किया है वह अत्यन्त सुन्दर है—

"सुभ खन बेरा सुकुल पक्ख हे
दिनकर उदित समाई
सोरह संपुन बतिस लखन सह
जनम लेल ऋतुराई हे॥"

'बाल बसंत तरुन भए धाओल
बढ़त सकल संसारा॥
दखिन पवन घन अङ्ग उगारए
किसलय कुसुम—परागे।
सुललित हार मजरि घन कज्जल

आखि तौ अंजन लागे ॥
नव बसन्त ऋतु अगुसर जौवति
विद्यापति कवि गावे ।"

बसन्त रूपी बालक के जन्म के अवसर पर प्रकृति के सम्पूर्ण उपकरणों को भी कवि ने मानवीय रूप देकर जो सुन्दरता प्रदान की है वह कवि की प्रतिभा की परिचायक है। किस प्रकार युवती-गण बाल बसन्त के जन्म के अवसर पर मंगल गान करने लगीं, किस प्रकार मलय पवन प्रवाहित होकर उस नवजात बालक का स्पर्श करने लगी। पुत्र जन्म के अवसर पर बन्दनबार का बाँधना भी आवश्यक था। इसीलिये बसंत रूपी बालक के जन्म के अवसर पर मुक्ता के समान शुभ्र माधवी पुष्पों की बन्दनवार को चारों ओर लगा दिया है। बालकों का शरीर कोमल होता है इसलिये उसके लिये कोमल बिछौना के स्थान पर प्रकृति रूपी माँ ने कोमल किसलयों की शैया बनाई और कंदब के पुष्पों की माला तकिये के लिये बनाई।

धीरे २ बालक बसंत तरुण हुआ और उसकी सुन्दरता सर्वत्र फैल गई। बालक को मां पुष्ट करती है इसलिये उसका उबटन आदि करती है। आँखों में काजल का प्रयोग भी करती है। यह सब कार्य दक्षिण पवन और मेघों ने किया। दक्षिण पवन ने किसलय और पुष्पों के पराग से बालक बसंत का उबटन किया और बादलों ने उसकी आँखों में काजल लगाया।

इसी प्रकार महाकवि ने बसंत को राजा बनाकर अन्य प्रकृति के उपकरणों को राजा के उपयोग में आने वाली समस्त वस्तुओं के रूप में वर्णित करके मानवी करण का एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है—

"आयल रितु पति राज बसन्त।
धाओल अलि कुल माधवि—पंथ॥
दिनकर किरन भेल पौगण्ड।
केसर कुसुम धएल हेम दण्ड॥
नृप-आसन नव पीठल पात।
काँचन कुसुम छत्र धरु माथ॥"

इस पद में कवि ने ऋतुराज को राजा के रूप में चित्रित किया है। अतः

राजाओं के उपयुक्त ही उनकी साज सज्जा होनी चाहिए। राजा का दरबार, बन्दीजन, भाट, नर्तक, सेना, निशान सभी आवश्यक हैं। कवि की कला विषयक चतुरता ने इस रूपक का बड़ा अच्छा निर्वाह किया है। इस प्रकार का चित्रण हिंदी साहित्य में बहुत कम है। प्रकृति में मानवीय भावना का समावेश करके कवि ने अपनी प्रतिभा का एक अनुपम उदाहरण दिया है। इसी प्रकार बसंत को दूल्हा के रूप में देखकर अन्य उपकरणों को बरात तथा अन्य वस्तुओं के रूप में देखा है।

महाकवि विद्यापति को स्वाभाविक रूप से प्रकृति के सौन्दर्य की ओर आकर्षण था किंतु राज्याश्रय में रहने के कारण उनको प्रकृति के उद्दीपन रूप को ही अधिक लेना पड़ा। फिर भी उनके प्रकृति चित्रण और अन्य रीतिकालीन कवियों के चित्रण में एक भारी अंतर है। रीति कालीन कवियों में प्रकृति के प्रति प्रेम नहीं उनका प्रेम तो नायक नायिकाओं की चेष्टाओं और अश्लील बातों की ओर ही अधिक था। विद्यापति प्रकृति के सच्चे उपासक थे। उन्होंने प्रकृति प्रेम को आगे रखकर ही नायिका के सौंदर्य को देखा। इसलिये उनको हम रीति कालीन कवियों के समान नहीं देख सकते वरन् महान् कलाकारों के समान ही प्रकृति का प्रेमी देख सकते हैं।

विद्यापति और रहस्यवाद

विभिन्न मत—

विद्यापति के राधा और कृष्ण के पदों और कुछ शिव और पार्वती के पदों को लेकर हिंदी के विद्वानों में उनकी विचारधारा के विषय में एक विवाद है। कुछ आलोचक तो उनको शुद्ध कृष्ण भक्त मानते हैं और उनकी भक्ति को वैष्णव भक्ति पर आधारित करते हैं। दूसरा वर्ग उनको रहस्यवादी मानता है। उनका कथन है कि विद्यापति के राधा कृष्ण सम्बन्धी समस्त पद अन्योक्ति एवं रहस्योक्ति ही हैं। कृष्ण परमात्मा है, राधा जीवात्मा तथा सखी और दूती वह गुरू है जो कि जीव को परमात्मा के पास जाने का मार्ग बतलाता है। दूसरे लोग इसी बात को इस प्रकार देखते हैं कि ईश्वर पति है और भक्त पत्नी रूप में उसकी उपासना करता है। इसी को वैष्णव धर्म में माधुर्य भाव की भक्ति कहा है। तीसरा वर्ग विद्यापति को शृंगारी कवि ही मानता है।

प्रथम वर्ग—

बाबू ब्रजनंदन सहाय और डा० श्यामसुन्दरदास विद्यापति की पदावली को वैष्णव भक्ति के विचारों और भावनाओं का प्रतीक बताते हैं। यह दोनों विद्वान पदावली को निम्बार्क और विष्णु स्वामी की राधा-कृष्ण की उपासनों के पदों का संग्रह कहते हैं।

द्वितीय वर्ग—

विद्यापति के पद रहस्यवाद से प्रभावित हैं। इस मत को सर्व प्रथम डा० ग्रियर्सन ने रखा। आपने मैथिली क्रेस्टोमैथी की भूमिका में लिखा—

"अब विद्यापति की कविता पर विचार करना है। वे लगभग सब के सब वैष्णव पद या भजन हैं। इसीलिये वे साहित्य के ऐसे अङ्ग हैं जिनसे भारतीय नवीन साहित्य के सब छात्र परिचित हैं। योरप की रुचि के अनुसार उस पर

विचार नहीं किया जा सकता और शीघ्रता में उस पर यह दोष नहीं लगाना चाहिये कि आत्मा और परमात्मा का प्रेम वर्णन करने के लिये अश्लीलता का प्रयोग हो गया है। कोवेल साहब जब शाँडिल्य सूत्र का अनुवाद कर चुके तो यह कहना निराधार होगा कि कोई भारतीय भक्ति का स्वरूप नहीं समझ सकता। "ईश्वर प्रेममय है" यह पूर्व और पश्चिम दोनों देशों का सिद्धाँत है। परन्तु इसके रूप में वास्तविक भेद है। पश्चिम के ठण्डे देश के निवासी ईश्वर प्रेम को पिता और पुत्र के अटूट प्रेम का रूप देकर संतुष्ट रहे; किंतु गर्म देश के सत्यान्वेषियों ने पूजक और पूज्य के प्रेम को देवी राधा और भगवान कृष्ण का रूप दिया है। यह सच है कि पाश्चात्य चित्तवृत्ति के लोगों के लिये इसको समझना कठिन है, किन्तु इस कारण इसे बुरा कह देने की शीघ्रता दिखाना ठीक नहीं। जिस प्रकार सोलोमन के गीतों को क्रिश्चिअन पादरी पढते हैं उसी प्रकार भक्त हिंदू विद्यापति के चटकीले और मधुर पदों को पढ़ते हैं और तनिक भी काम वासना का विकार अपने हृदय में नहीं देखते।"

ग्रिअर्सन साहब के इस मत की पुष्टि बाबू नगेन्द्रनाथ गुप्त ने अपने एक व्याखयान में की जो कि उन्होंने २-२-१९३५ ई० को पटना सिनेट हॉल में दिया, "विद्यापति की पदावली मूलतः रहस्यवादी रचना है। उसमें आत्मा परमात्मा की खोज में बैचैन है और वह परमात्मा से निर्जन स्थान में मिलने को लालायित है। संसार के लोग इस पवित्र ईश्वर प्रेम को नहीं जानते इस कारण वह इस सच्चे प्रेमी के मार्ग में बाधक बनते हैं। भक्त इस बाधा को बचाने के लिये इस संसार को त्याग कर वन या किसी अन्य एकाँत स्थान में चला जाता है।" ग्रियर्सन का कथन है कि विद्यापति ने इसी विषय को लेकर अभिसार, विरह आदि के पदों में अपने हृदय को खोला है। वर्षा की धारा प्रवाहित हो रही है और करका का क्रन्दन सम्पूर्ण वातावरण में एक भयंकरता उत्पन्न कर रहा है। किंतु राधा बिना किसी भय के अपने प्रियतम कृष्ण के समीप सम्पूर्ण खतरों को पार करती हुई चली जा रही है वह साँपों को पैरों से कुचल कर अपने प्रेमी के पास जाती है।

रयनि काजर सम, भीम भुअंगम
कुलिस पड़ए दुरबार।

गरज तरज मन, रोसे बरिस घन

संसय पड़ अभिसार

चरन बेथल फनि हित कय मानल धनि

नेपुर न करए रोल।

सुमुखि पुछो तोहि सरूप कहसि मोहि

सिनेह कतए दुर ओल।

अर्थात् रात्रि अन्धकारपूर्ण है, भयंकर वज्र गिर रहा है, मेघ का गरजना मन में भय उत्पन्न कर रहा है अभिसार में सन्देह हो रहा है। पैर में साँप लिपट गये हैं उनको वह अभिसारिका मंगलकारी ही समझती है क्योंकि साँप के लिपटने से नायिका के नूपुरों की ध्वनि बन्द हो गई है। उस नायिका की दूती पूछती है कि हे सुमुखि सच सच कहो तुम्हारा प्रेम किस सीमा तक पहुँच गया है।

भोग विलास में रत स्त्री नहीं समझ सकती कि चुम्बक किस प्रकार लोहे को अपनी ओर खींच लेता है। ईश्वर का प्रेम भी भक्तों को अपनी ओर चुम्बक की तरह ही खींच लेता है। प्रेम से मनुष्य का साहस बढ़ता है। प्रेमी प्रेम छोड़ने से मरना अधिक पसंद करता है।

पूर्णिमा की रात को नायिका की दूती नायिका को संकेत स्थल पर पहुँचने के लिये कह रही है—

आज पुनिम तिथि जानि मोहि अयलहुँ

उचित तोहर अभिसार।

देह जोति ससि किरन समाइति

के विमिनायव पार।

सुन्दरि अपनहुँ हृदय विचारि

आँख पसारि जगत हम देखल

के जग तुअ सन नारि।

तोहे जनि तिमिर हित कए मानह

आनन तोर तिमिरारि।

सहज विरोध दूर परिहरि धनि

चलु उठि जतए मुरारि।
दूती वचन हित कए मानल
चालक भले पँचबान।
हरि अभिसार चललि वर कामिनि
विद्यापति कविं भान।

(आज पूर्णमासी है। आज का दिन प्रिय-मिलन के लिये उपयुक्त है। तुम्हारे शरीर की ज्योति चाँदनी के समान है। इसलिये अभिसार को जाने में किसी को तुम दिखाई भी नहीं पड़ोगी। हे सुन्दरी मैंने अपने नेत्रों से सम्पूर्ण संसार को देखा किंतु तुम्हारे समान सुन्दर स्त्री मुझे दिखलाई नहीं दी। तुम स्वयं भी विचार कर देखो कि तुम्हारे समान कौन सुन्दर है। तुम्हारा मुख चंद्रमा के समान है इसलिये वह अंधकार का शत्रु है। इसलिए विरोध को छोड़ कर उस स्थान पर चलो जहाँ पर कि तुम्हारा प्रेमी बैठा है। नायिका ने दूती के बचनों को हितकारी समझा क्योंकि कामदेव उसके शरीर में संचरित होने लगा। विद्यापति कवि कहते हैं कि वह कामिनी कृष्ण से अभिसार करने चली।

इस पद में भी राधा की अदृश्यता, उसका जगद्व्यापक चंद्रिका में लीन होना—आदि व्यंग्य अर्थों से उसी ईश्वरोन्मुख प्रेम की सूचना मिलती है। इसी प्रकार सब पद सारी पदावली व्यंग्यार्थ से परिपूर्ण है। इसका सब से बड़ा प्रमाण यह है कि चैतन्य देव पर,इस पदावली का इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने कौमार्य व्रत धारण कर लिया। इसलिये इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि इस पदावली में भक्तिरस प्रधान है शृंगार रस नहीं।

(महाकवि विद्यापति ले० शिवनंदन ठाकुर)

श्री जनार्दन मिश्र ने भी डा० ग्रियर्सन और बाबू नगेन्द्रनाथ के मत की ही पुष्टि की। उन्होंने अपनी पुस्तक 'विद्यापति' में डा० गिअर्सन की उपरोक्त पंक्तियों को उद्धृत किया और अपना मत उन्हीं के अनुसार इस प्रकार दिया है—

"विद्यापति के समय में रहस्यवाद का मत जोरों पर था। उसके प्रभाव से

बचकर निकलना, और किसी निष्कंटक मार्ग का अवलम्बन करना उन्हें शायद अभीष्ट न था, अथवा अभीष्ट होने पर भी तुलसीदास की तरह अपने वातावरण के विरुद्ध जाने की शक्ति उनमें न थी। इसलिये स्त्री और पुरुष के रूप में जीवात्मा और परमात्मा की उपासना की जो धारा उमड़ रही थी उसमें उन्होंने अपने आप को बहा दिया।

ईश-भक्ति सम्बंधी पद रचना में ये पूरे रहस्यवादी थे, किंतु निर्गुण रहस्यवाद और उनके रहस्यवाद में कुछ भेद है। जो निर्गुणवादी होते हैं वे जीवात्मा और परमात्मा को स्त्री पुरुष के रूप में देखते हैं किंतु वह स्वरूप किसी व्यक्ति विशेष या रूप विशेष का नहीं होता। वह स्त्रीत्व और पुरुषत्व के भाव-संबंध का केवल वर्णनात्मक रूप होता है, विद्यापति इस सिद्धाँत को ग्रहण करते हुये भी रूप विशेष और व्यक्ति-विशेष का अवलम्बन कर ब्रह्म और जीव के संबंध को अनुभव करते थे। हिंदू शास्त्र के पंडित होने और उसमें श्रद्धा और विश्वास रखने के कारण उन्हें रहस्यवाद के सिद्धाँतों को, शिव-पार्वती, सीता-राम, राधाकृष्ण अथवा जीवात्मा और परमात्मा की साधारण स्थिति के द्वारा, अनुभव करने और कराने में किसी प्रकार की शंका नहीं होती थी। राधा कृष्ण के संबंध वाले इनके पद सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। यहाँ मैं इनके रहस्यवाद के रूपों के उदाहरण देकर इनके सिद्धाँत को दिखलाने की चेष्टा करूँगा। शिव पार्वती की उपमा देकर रचे हुये इनके पद का उदाहरण यह है—

कोन वन बसथि महेस।
केओ नहिं कहथि उदेस॥
तपोवन बसथि महेस।
भैरव करथि कलेस॥
कान कुण्डल हाथ गोल।
ताहि बन पिआ मिठि बोल॥
जाहि बन सिकिओन बोल
ताही बन पिआ हँसि बोल
एकहि वचन विच भेल
पहु उठि परदेस गेल

मनहिं विद्यापति गाव
राधा कृष्ण बनाव ॥

यहाँ "महेश" का मतलब है सर्वेश, परब्रह्म। कवि विकल होकर पूछता है-"महेश किस बन में रहते हैं? कोई इसका पता नहीं बताते।" बतावे कौन? यदि किसी को मालूम भी हो तब तो वह बतावे! 'परब्रह्म का निवास स्थान कहाँ है।' यह तत्वदर्शी द्रष्टा के सिवाय कौन बता सकता है? भक्त का विह्वल हृदय प्रेम के आवेश में नम्रता और कोमलता से भरा रहता है।"....

इस पद में विद्यापति ने राधा और कृष्ण को भी महेश और गौरी के स्थान पर व्यवहृत किया है। श्री जनार्दन मिश्र उसे कवि की भाव में तन्मयता बताते हैं।

विद्यापति को रहस्यवादी सिद्ध करने के लिये मिश्रजी ने और भी कई पदों को उद्धृत किया है।

'हम सन हे सखि रूसल महेस।
गौरि विकल मन करथि उदेस॥
तन आभरन बसन भेल भार।
नयन बहे जल निर्मल धार॥
× × ×
× × ×
कवि विद्यापति यह पद भान।
शिवजी प्रगट भेला गौरिक ध्यान॥

आगे चलकर मिश्रजी ने दादू कबीर और अन्य रहस्यवादी कवियों की कविताओं से विद्यापति की कविताओं की तुलना कर के सचमुच ही उनको रहस्यवादी समझने की कल्पना करली है। उन्होंने जिस निश्चय के साथ 'विद्यापति की विचार धारा' वाले अध्याय को समाप्त किया है उससे स्पष्ट है कि वह विद्यापति को पूर्ण रहस्यवादी मानते हैं।

तृतीय मत—

विद्यापति के विषय में तीसरा मत यह है कि उनकी मूल प्रवृति शृंगार की ओर है। इस विचार को लेकर चलने वाले महामहोपाध्याय हरिप्रसाद शास्त्री

और पं० रामचन्द्र शुक्ल तथा डा० रामकुमार वर्मा हैं। शास्त्री जी कीर्तिलता की भूमिका में लिखते हैं—"यह बड़े आश्चर्य की बात हैं कि संस्कृत भाषा में लिखे हुये विद्यापति के स्मृति ग्रन्थों में शिव गंगा और दुर्गा हैं, किंतु कृष्ण का नाम कहीं भी नहीं है। परन्तु विद्यापति ने मैथिली में जो रचनायें कीं उसमें शिव, गंगा और पार्वती का वर्णन कम है, अधिकाँश पदों में राधा कृष्ण ही पाये जाते हैं। विद्यापति जब पंडित होकर लिखते हैं तब कृष्ण का नाम नहीं लेते, किंतु जब शृङ्गार में कविता लिखते हैं तो राधा कृष्ण की ही अधिकता पाई जाती है इसका क्या कारण है?"

शास्त्री जी इसका कारण यही देखते हैं कि राधा कृष्ण का नाम समाज में शृंगारिक भावनाओं की तृप्ति के लिये नायक नायिका का प्रतीक बन चुका था—"यह प्रथा सी हो गई थी कि कवि अपना नाम या किसी दूसरी नायिका और नायक का नाम नहीं देकर राधा कृष्ण के नाम पर ही अपने हृदय के भाव प्रकट करते थे।" (हरिप्रसाद शास्त्री)

शास्त्री जी कहते हैं, "विद्यापति के करीब करीब २०० वर्ष बाद कीर्त्तन की सृष्टि हुई। विद्यापति के पद कीर्त्तन के लिये नहीं बनाये गये थे।"

शास्त्री के मतानुसार विद्यापति के सम्पूर्ण पदों की रचना राजाओं और आश्रयदाताओं की आज्ञा के अनुसार ही हुई। अनेक स्थानों पर तो विद्यापति ने अपने आश्रयदाता को श्याम और कृष्ण तथा उसकी रानी को राधा कहकर अपनी कविता को समाप्त किया है। शास्त्री जी ने विद्यापति के कितने ही पदों को उद्धृत करके सिद्ध किया है कि उन पदों में भक्ति की बिल्कुल गन्ध नहीं। वह कवि की शृङ्गारिक भावना के ही परिचायक हैं।

'कामिनि करए सनाने
हेरितहिं हृदय हनए पँचबाने।'

इसी प्रकार एक और पद भी है—

'आजु मझु सुभ दिन भेला
कामिनि पेखल सनानक बेला'

उपर्युक्त दोनों पदों के आधार पर शास्त्री जी नगेन्द्रनाथ गुप्त के इस कथन को अमान्य सिद्ध करते हैं जिसमें उन्होंने इन पदों को माधव की उक्ति

कह कर राधा-कृष्ण की भक्ति में ले लिया है। शास्त्री जी के मतानुसार यह दोनों पद घोर श्रृंगार के उदाहरण हैं। आगे शास्त्री जी फिर कहते हैं— "भारतवर्ष में नायिका को राधा और नायक को कृष्ण मानकर वर्णन करने की प्राचीन प्रथा है। सब कवि इस प्रकार नायक और नायिका का वर्णन करते हैं।..........राधा कृष्ण का अर्थ नायिका और नायक है तो किसी को ज़रा भी आपत्ति नहीं होनी चाहिये।"

शास्त्री जी का कथन है कि नगेन्द्र बाबू ने कीर्त्तन के ८४० पदों का प्रकाशन किया है। उनमें से ३३७ पदों में राधा-कृष्ण का नाम नहीं है। शेष ५०३ पदों ने अन्त में हरि और मुरारि शब्द पाया जाता है। इससे दृढ़तापूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि यह सब पद भी राधा-कृष्ण के पद हैं।

शास्त्री जी ने विद्यापति को श्रृंगारी कवि मानने के पक्ष में एक तर्क यह और दिया है--"संस्कृत के अलङ्कार ग्रन्थों में जितनी कवि प्रौढ़ोक्तियाँ हैं, प्रचलित उपमायें हैं विद्यापति ने अपने पदों में उनका यथेष्ट व्यवहार किया है। गाथा सप्तशती, आर्यासप्तशती, अमरूक शतक श्रृंगार तिलक आदि के भावों का संग्रह विद्यापति के पदों में किया गया है और कई स्थानों पर उसी भाव का वर्णन और भी स्पष्ट रूप से किया है।"

पं० रामचन्द्र शुक्ल ने भी म० म० हरिप्रसाद शास्त्री के समान ही विद्यापति को श्रृंगारी कवि ही माना है। वह अपने हिंदी साहित्य के इतिहास में कहते हैं—"विद्यापति के अधिकतर पद श्रृंगार के ही हैं जिनमें नायक और नायिका राधा-कृष्ण हैं। इन पदों की रचना जयदेव के गीतकाव्य के अनुकरण पर ही शायद की गई हो। इनका माधुर्य अद्भुत है।"

डा० रामकुमार वर्मा भी विद्यापति को श्रृंगारी कवि ही घोषित करते हैं— "किंतु श्रीकृष्ण और राधा संबंधी जो पद हैं उनमें भक्ति न होकर वासना है। इस क्षेत्र में जयदेव की श्रृंगारिक भावना ने विद्यापति को बहुत अधिक प्रभावित किया है। कुमार स्वामी ने विद्यापति के ऐसे पदों को लेकर यह सिद्ध करना चाहा है कि विद्यापति की कविता ईश्वरोन्मुख है और उसमें रहस्यवाद की अनुपम छटा है। विनयकुमार सरकार ने कुमार स्वामी के इस मत के विरुद्ध ही अपनी सम्मति प्रकट की है। विद्यापति के पदों को देखते हुए विनयकुमार

सरकार का मत ही समीचीन ज्ञात होता है क्योंकि विद्यापति की कविता में भौतिक प्रेम की छाया स्पष्ट है।"

विद्यापति के कुछ पदों के आधार पर यदि उनको रहस्यवादी कहा जाय तो न्याय-संगत नहीं होगा। क्योंकि किसी भी कवि की विचार-धारा को निश्चित रूप देने में उसकी सम्पूर्ण रचनाओं, तात्कालिक एवं पूर्ववर्ती परिस्थितियों को देखना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त यह भी देखना है कि उस कवि में उस विचारधारा के पोषक तत्व विद्यमान हैं या नहीं अथवा उस विचार धारा विशेष की प्रचलित परम्पराओं को कहाँ तक अपनाया है।

रहस्यवादी नहीं थे—विद्यापति को रहस्यवादी सिद्ध करने अथवा उनकी राधा-कृष्ण विषयक कविताओं को ईश्वरोन्मुख प्रेम का प्रतीक कहने से पूर्व हमको देखना चाहिये कि उन्होंने पदावली के अतिरिक्त अन्य रचनाओं में मूलतः किस विचार-धारा का प्रतिफलन किया है ? विद्यापति ने पदावली के अतिरिक्त संस्कृत और अवहट्ट भाषा में भी १२ ग्रंथ लिखे। उनमें कीर्तिलता, कीर्तिपताका, आदि रचनाओं में शृंगार रस की ही अभिव्यक्ति की गई है। इसके अतिरिक्त 'शैव सर्वस्वसार' और 'दुर्गाभक्ति तरंगिणी' तथा 'गंगा वाक्यावली' में धार्मिक दृष्टि का प्रतिपादन किया है। अन्य ग्रंथों में भी और पुराणों के आधार पर ही अपनी विचारधारा का प्रदर्शन किया है। किसी भी ग्रंथ में कवि की रहस्यवादी विचारधारा के दर्शन नहीं होते।

विद्यापति के समय मिथिला में भारतीय दर्शनशास्त्र के विद्वानों का बहुत ज़ोर था। विद्यापति स्वयं भी संगीत के विद्वान थे और एक ऐसे पण्डित परिवार में उत्पन्न हुये थे जिसका कि समाज में एक अच्छा स्थान था। इसलिये यदि विद्यापति किसी नवीन बिचारधारा को लेकर चलते तो उस समय की विद्वत मण्डली उनके इस कदम को शास्त्रीय परम्पराओं पर कुठाराघात समझती और उनकी कटु आलोचना की जाती। किंतु आलोचना तो दूर रही मिथिला के किसी भी तात्कालिक ग्रंथ में ऐसी कोई चर्चा नहीं जिससे सिद्ध हो कि ईश्वर को पति रूप मानने की कोई भी प्रथा मिथिला में प्रचलित थी। किसी भी मैथिल कवि की तात्कालिक रचना में रहस्यवाद की झलक तक दृष्टिगोचर नहीं होती।

मिथिला का उस समय का समाज तांत्रिक उपासना से अवश्य प्रभावित था इसी कारण उनके यहाँ शक्ति और शिव की उपासना को अधिक महत्व दिया गया था। शक्ति को सम्पूर्ण देवताओं की माँ और जननी माना जाता था। बाममार्ग की श्रृंगार प्रियता ने मिथिला में भी अपना रंग जमा लिया था।

विद्यापति स्वयं शाक्त थे और उनमें भी बाममार्गीय श्रृंगारिकता का प्रभाव अवश्य आया होगा। इसी कारण उन्होंने अपनी रचनाओं का आधार हाल की गाथा सप्तशती, आर्यासप्तशती, अमरुक शतक, श्रृंगारतिलक, श्रृंगार शतक आदि को बनाया। जनता में बाममार्ग का प्रभाव घर कर चुका था जो चीनागम या यक्ष संस्कृति की देन था। प्राचीन साहित्य में भी इस प्रभाव को देखा जा सकता है। यह बाममार्ग का ही प्रभाव था कि कृष्ण और राधा की कथा नायक और नायिका का प्रतीक बनकर एक लम्बी परम्परा से चली आ रही थी। गाथा सप्तशती प्रथम शताब्दी की रचना है उसमें कृष्ण और राधा का चित्रण श्रृंगार रस का आलम्बन बनाकर किया गया है। कृष्ण और राधा को श्रृंगारिक भावनाओं के पोषक के रूप में साधारण नायक और नायिका के रूप में चित्रित किया है—

मुहमारुपणतंकह्न गोरअं राहिआएँ अवणेन्तो।
एताणँ बलवीणं . अगणाणँ वि गोरअं हरसि॥

अर्थात् हे कृष्ण आप अपने मुँह की हवा से राधा की आँख की धूल दूर कर (उसके बहाने राधा को चूमकर) दूसरी स्त्रियों का अभिमान दूर करते हो या उनकी गोराई दूर करते हो अर्थात् वे दुःख से काली हो जाती हैं।

(गाथा सप्तशती)

इस श्लोक में राधा और कृष्ण सामान्य नायक नायिका के रूप में ही चित्रित किये गये हैं। इससे स्पष्ट है कि राधा और कृष्ण की कथा रसिक हृदयों के आमोद प्रमोद के रूप में लोक में बहुत दिनों से प्रचलित रही होगी। इसको जन-समाज में श्रृंगार रस के उद्रेक के लिये कवि लोग अधिकतर प्रयोग में लाते होंगे और राधा कृष्ण का तात्पर्य किसी भी नायक नायिका के लिये मान लिया गया होगा। निम्बार्क और विष्णु स्वामी ने जन परम्परा से प्रचलित

कथा को ही एक शुद्ध रूप देकर भक्ति के रूप में प्रचलित कर दिया इससे स्पष्ट है कि विद्यापति के राधा कृष्ण वैष्णव आचार्यों के राधा-कृष्ण नहीं वरन् जनता में प्रचलित राधा-कृष्ण हैं। हम विद्यापति की भक्ति वाले अध्याय में सिद्ध करेंगे कि विद्यापति और निम्बार्क स्वामी के समय में अधिक अन्तर नहीं। विद्यापति के २०० वर्ष बाद कीर्त्तन की प्रथा चली। इसलिये इसमें कोई संदेह नहीं कि विद्यापति ने अपनी पदावली की रचना में जनता के राधा-कृष्ण को ही लिया। इस आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है कि विद्यापति की पदावली एक श्रृंगारी रचना है भक्ति की रचना नहीं।

जनार्दन मिश्र के इस कथन को कि पदावली के पद मिथिला में गाये जाते हैं। श्री शिवनंदन ठाकुर ने अमान्य सिद्ध कर दिया। उनका कथन है कि विद्यापति के केवल शिव, दुर्गा और गंगा के पदों को अथवा कुछ कृष्ण के पदों को ही भक्त लोग गाते हैं अन्य सभी राधा कृष्ण के पदों को विवाह आदि के अवसर पर मनो-विनोद और आनंद के लिये ही गाया जाता है। (शिवनंदन ठाकुर 'महाकवि विद्यापति')

विद्यापति की सर्व प्रथम रचना 'कीर्तिलता' और इसके पश्चात् 'कीर्तिलता' में भी वीररस के साथ २ श्रृंगार रस की अभिव्यक्ति की गई है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने धार्मिक ग्रंथों में भी स्मृत्यानुगत मार्ग का ही अवलंबन किया है। निर्गुण संतों के रहस्यवाद की कोई भी रचना उनके किसी ग्रंथ में नहीं मिलती।

जनार्दन मिश्र का यह कथन कि विद्यापति के समय में रहस्यवाद का ज़ोर था मान्य नहीं। इसमें कोई संदेह नहीं कि सूफ़ीमत विद्यापति के जन्म से बहुत पहले ही प्रचलित था। किंतु भारत में इसका प्रचार कुतवन नाम के कवि ने सं० १५५८ में 'मृगावती' नाम का काव्य लिखकर किया। और उसके पश्चात् तो कई कवियों ने अपनी रचनाएँ कीं। किंतु विद्यापति के पश्चात् ही सूफ़ीमत और कबीर का रहस्यवाद भारतीय काव्य के क्षेत्र में प्रवेश कर पाया और फिर भी उसको अधिक आदर नहीं मिल सका।

इसके अतिरिक्त विद्यापति को रहस्यवादी कवि एक और कारण से भी नहीं माना जा सकता। रहस्यवादी कवियों की पुस्तक में पुस्तक के प्रारम्भ और

अन्त में रहस्योद्‌घाटन करना आवश्यक समझा जाता था जिस प्रकार जायसी आदि ने किया है—

'तन चितउर मन राजा कीन्हा' अन्य सन्त कवियों में भी यह प्रवृत्ति थी कि वह भी अपने दृष्टिकोण को अवश्य स्पष्ट कर देते थे। जैसे दादूदयाल, कबीर आदि कवियों ने अपनी रचनाओं में स्पष्ट कर दिया है कि 'ईश्वर पति है'।

निर्गुण सन्त कवियों ने हठयोग के अनेकों रूपकों के द्वारा भी अपनी रहस्योन्मुखी मनोवृत्ति को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। किंतु विद्यापति ने कहीं भी किसी रचना में इस प्रकार का कोई भी संकेत नहीं किया।

कीर्तिपताका में कवि ने कहा कि राम को सीता का विरह सहन करना पड़ा। इसलिये कृष्णावतार में उनको कामकला विशारद कामिनियों से क्रिया-कलाप करने की तीव्र उत्कंठा थी। यही कारण है कि उन्होंने गोपियों के साथ अनेक प्रकार से विहार किया। इस कथन से भी स्पष्ट है कि राधा-कृष्ण को उन्होंने सामान्य रूप से ही लिया किसी विशेष उद्देश्य को दिखाने को नहीं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि कहीं कहीं पर जहां पर कि कवि की भावना अधिक घनीभूत हो जाती है वहां पर उनके अंदर रहस्यवाद का आभास होने लगता है परंतु वास्तव में वह रहस्यवाद नहीं वरन् कवि कल्पना एक रूपक खड़ा करके भाव के स्पष्टीकरण का प्रयत्न करती है। यह काव्यात्मक रहस्यवाद की कोटि में रखा जा सकता है आध्यात्मिक या दार्शनिक रहस्यवाद की संज्ञा इसको नहीं दी जा सकती। विद्यापति में इसी काव्यात्मक रहस्यवाद के दर्शन होते हैं और उसी को विद्वानों ने दार्शनिक रहस्यवाद मान लिया है। विद्यापति सौंदर्य और माधुर्य के कवि हैं इस कारण वह एक ऐसे सौंदर्य को अपने काव्य में रखना चाहते हैं जिसकी कल्पना अभी तक के किसी भी कवि ने न की हो—

देखि देखि राधा रूप अपार
अपरुब के विहि आनि मिला ओल खितितल लावनिसार

राधा का चित्र अपूर्व है। इसकी कल्पना भी कोई नहीं कर सकता। इसी

प्रकार राधा के अपार्थिव रूप के चित्र रहस्यवाद के भ्रम में लोगों को डाल देते हैं ।

करु धरु करु मोहे पारे
देव हम अपुरब हारे कन्हैया
सखि सब तेजि चल गेली
न जाने कौन पथ भेलो कन्हैया
हम न जाएब तुअ पासे
जाएब औघट घाटे कन्हैया"

इस पद में जनार्दन मिश्र को रहस्यवाद की झांकी दिखाई दी। किंतु सीधा व्यंग्यार्थ है एक अर्थ में राधा और कृष्ण की सामान्य बातें हैं जिसमें राधा कहती है कि मैं पथ भूलकर अपनी सखियों से बिछुड़ गई हूँ। हे कृष्ण मुझे तुम ठीक मार्ग बतला दो। किंतु दूसरा व्यंग्य अर्थ भी स्पष्ट है। राधा कहती है कि सखी चली गई इसलिये अच्छा अवसर है। किसी निर्जन स्थान पर चलो।

इस प्रकार के व्यंग्यार्थों का पदावली में प्राधान्य है और उन्हीं के कारण अनेकों विद्वानों ने विद्यापति को निर्गुण संत कवियों की कोटि में ले जाकर रखने की चेष्टा की है।

इसलिये नीचे दिये हुये तर्कों के आधार पर हम कह सकते हैं कि पदावली की रचना कवि की शृंगारिक विचारधारा की परिचायक है। उसमें रहस्यवाद के रूप देखना ठीक नहीं।

१—विद्यापति की पदावली में जिस प्रेम को प्रदर्शित किया गया है उसमें स्थूलता अधिक है। राधा के वर्णन में किसी अलौकिक शक्ति का आभास नहीं वरन् एक नायिका का सीधा-सादा वर्णन है।

२—विद्यापति स्मार्तशाक्त थे। किंतु वज्रयान का प्रभाव उस समय संपूर्ण उत्तर और दक्षिण भारत में पड़ चुका था। वज्रयान, की एक शाखा जिसे कौल धर्म भी कहते हैं, शरीर को ही सम्पूर्ण सिद्धियों का आगार समझती थी। कौलधर्म के अनुयायी स्त्री की पूजा अथवा योनि पूजा को प्रमुखता देते थे। वह घोर विलासी थे। उनकी साधना में स्त्री को बहुत महत्व दिया गया था।

वरन् यों कहें तो और उचित होगा कि उनकी ऐंद्रिकता ही उनकी भक्ति थी, उनकी वासनाओं की तृप्ति ही उनकी उपासना थी। वह अपने धर्म को बहुत ही गहन और दुष्प्राप्य समझते थे। वे कहते थे—

वामे रामा रमण कुशला दक्षिणे पान पात्रं।
मध्येन्यस्तं मरीचि सहितं सूकरस्य उष्ण मासं॥
स्कन्धे वीणा ललित सुभगा सद्गुरु नाम प्रपंचः।
कौलोधर्मः परम गहिनो योगिनी नामष्य गम्यः॥

उपर्युक्त उद्धरण से आप अनुमान लगा सकते हैं कि जिस धर्म का मूलाधार ही विलासिता होगी वह धर्म समाज को क्या दे सकता है। इस प्रकार के धर्मों का मध्यकालीन भारत की संस्कृति पर बड़ा प्रभाव रहा। उसी प्रभाव के फलस्वरूप शृंगारिकता का तत्व भारतीय साहित्य में घर कर गया। विद्यापति भी शाक्त होने के साथ २ इस शृंगारिकता को लिये हुये थे। क्योंकि उनकी भक्ति और शृंगार को अलग २ करके नहीं देखा जा सकता था। धार्मिक उत्थान का कार्य उनके पश्चात् अधिक ज़ोरों से चला। और तुलसी ने उस वाममार्गी प्रभाव को हटाकर भक्ति के क्षेत्र में मर्यादा स्थापित की। उन्होंने शिव की भक्ति में भी वेद विहित भक्ति को ही अपनाया था। किंतु विद्यापति स्मार्त शाक्त होते हुये भी तात्कालिक अवैदिक प्रभाव से नहीं बच सके थे और इसी कारण उनमें वाममार्ग की कामुकता और शृंगारिकता का प्रभाव था।

३—विद्यापति की रचनाओं के आधार पर भी यह कहा जा सकता है कि उनमें रहस्यवाद नहीं। क्योंकि पदावली के अतिरिक्त उनकी अन्य १३ रचनाओं में भी कहीं रहस्यवाद के बीज नहीं।

४—मिथिला में पदावली के पद विवाह आदि के अवसर पर ही गाये जाते हैं। मंदिरों में नहीं गाये जाते।

५—कीर्त्तन की प्रथा विद्यापति के २०० वर्ष पश्चात् आरंभ हुई। वैष्णव भक्तों ने तो केवल पदों की मधुरता और भाव प्रवणता को देखकर ही अपना लिया।

६—निर्गुण सन्तों का रहस्यवाद विद्यापति के पश्चात् प्रारम्भ हुआ। कुतुबन ने १५०० ई० में मृगावती को लिखा जो कि विद्यापति के बहुत बाद

की घटना है। इसके अतिरिक्त एक महान् विद्वान् भी थे और पुराणों और स्मृतियों के ज्ञाता। फिर यह सम्भव नहीं कि उन पर निर्गुण सन्तों का प्रभाव पड़ता। इसलिये जनार्दन मिश्र का कथन निराधार है।

७—शिव सम्बन्धी रचनाएँ, देवी सम्बन्धी प्रार्थनाएँ और गंगा की स्तुतियों को छोड़कर अन्य राधा-कृष्ण सम्बन्धी समस्त रचनाओं में भी घोर शृंगारिकता है। 'कीर्तिलता' और 'कीर्ति पताका' की रचनाओं के आधार पर भी उनकी विचारधारा शृंगारी ही सिद्ध होती है। उनकी आधारभूत रचनायें जैसे गाथा सप्तशती आदि भी शृंगार रस की ही रचनायें हैं। उनकी अलंकार प्रियता और नख-शिख वर्णन आदि उनको रीति शास्त्र का पण्डित सिद्ध करते हैं। उनके गुरु भी शृंगार रस के ही प्रणेता थे। उन्होंने फिर भी कहा कि विलासकला में अनुरक्त रहने वाले मनुष्योंको भी मेरे पदों से हरिस्मरण का भाव उपलब्ध होगा। किंतु विद्यापति ने इस प्रकार की कोई बात अपनी रचना में नहीं कही। इससे स्पष्ट है कि कवि की पदावली की रचना उसके आश्रयदाताओं की आज्ञा पर उनकी शृंगार प्रियता को आनन्द देने के लिये हुई न कि ईश्वर भक्ति के लिये।

८—विद्यापति की रचना में अधिकतर पद ऐसे हैं कि उनमें सिवाय स्थूलता और ऐन्द्रिकता के कुछ भी नहीं। जैसे वयः सन्धि, नख-शिख वर्णन, विदग्ध विलास और अन्य।

९—जिन पदों में लोगों को रहस्यवाद की झाँकी थोड़ी बहुत मिलती है, वह वास्तव में रहस्यवाद नहीं वरन् व्यंग्यार्थ कहा जा सकता है। जहाँ भाव को प्रकट करने को उन्होंने अलंकारों का प्रयोग किया है वहाँ पर केवल काव्यात्मक रहस्यवाद कहा जा सकता है। दार्शनिक रहस्यवाद पदावली में कहीं नहीं।

उपर्युक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि विद्यापति की रचना में आध्यात्मिकता या ईश्वरोन्मुख प्रेम की झाँकी नहीं। वह एक स्मार्त शाक्त थे तथा राज्याश्रित थे। इस कारण उस समय की परिस्थितियों के अनुसार शृंगारिक मनोवृत्ति के कवि थे। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने ठीक ही कहा है, "आध्यात्मिक रंग के चश्मे आजकल बहुत सस्ते हो गये हैं। उन्हें चढ़ाकर जैसे कुछ लोगों ने 'गीत गोविंद' के पदों को आध्यात्मिक संकेत बताया है वैसे ही विद्यापति के इन पदोंको भी।"

विद्यापति का काव्य सौन्दर्य

काव्य का रूप—काव्य की कोई निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकती। विभिन्न विद्वानों ने काव्य की अनेकों परिभाषायें दीं किंतु यह नहीं कहा जा सकता कि कौनसी परिभाषा अपने आप में पूर्ण है। संस्कृत आचार्यों ने काव्य के रूप को समझाने का प्रयत्न किया किंतु फिर भी उसका कोई निश्चित रूप अभी तक निर्धारित नहीं किया जा सका। किसी विद्वान ने रमणीय अर्थ के प्रतिपादन को काव्य कहा तो किसी ने अलंकारों की प्रधानता को ही काव्य कहा। इस प्रकार की अनेक धारणायें बनती और बिगड़ती रहीं। काव्य क्या है ? इसका एक उत्तर केवल यही है कि काव्य भावनाओं की तरंगों को प्रवाहित करके हृदय को अपरमित आनंद देने वाली कवि की अभिव्यक्ति है। कवि कल्पना के द्वारा इस दृश्य-जगत के अनेक चित्रों को अपने हृदय के रंग में रँग कर अपनी कविता के माध्यम से हमारे सन्मुख रखता है। महाकवि की ही शक्ति है कि उसके हृदय के यह रंग इतने सुलभ होते हैं कि प्रत्येक पाठक का हृदय भी उनसे अनायास ही रँग जाता है। इस प्रकार कवि और श्रोता एक चित्र को समान रूप से ही देखते हैं। जिस प्रकार एक तूलिका से बना चित्र रेखाओं के द्वारा अपने में निहित भावों की अभिव्यक्ति करता है उसी प्रकार कवि द्वारा हृदय पटल पर भाव तूलिका से खिचा चित्र भी अनोखी व्यंजना करता है। इस चित्र के रंग इतने पक्के होते हैं जो युगों तक मानव के हृदय पटल पर एक सी चमक लिये हुये चमकते रहते हैं। संसार में अनेकों साम्राज्य बनते और बिगड़ते हैं। सभ्यता और धर्म भी नष्ट हो जाते हैं। भयानक विस्फोटों में मानव की महत्ता लुप्त हो जाती है। किंतु यह भावनाओं के रंग में रँगे चित्र सहस्रों वर्ष बाद भी अपनी चमक और आकर्षण से उस युग के मनुष्यों को आनंद और रस से परिप्लावित कर देते हैं।

कविता का मुख्य उद्देश्य है भावों को तरंगित करके आनंद की प्राप्ति

कराना। जो कवि इस उद्देश्य को जितनी सफलता से पूर्ण करता है वही उतना ही सफल कवि है। सौन्दर्य का चित्रण करना ही काव्य का मुख्य उद्देश्य है और इस सौन्दर्य को संसार के बीच से खोजना कवि का कर्त्तव्य है। इस प्रकार सौन्दर्य और कवि दोनों अन्योन्याश्रित हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि कवि की कृतियों पर उसके हृदय और मस्तिष्क की छाप होती है। किंतु मानव जीवन तथा जड़ और चेतन जगत भी कवि को उनसे भी अधिक प्रभावित करते हैं। वरन् यों कहना चाहिये कि उसका हृदय और मस्तिष्क जिन भावनाओं और कल्पनाओं को अपनी कविता में चित्रित करता है वह सब इसी जड़ और चेतन दृश्य जगत की ही वस्तुएँ होती हैं। और यही कारण है कि कवि की रचनायें समान रूप से सभी को एक सा आनन्द देने लगती हैं। कविता के मूलतः दो पक्ष हैं—(१) भावपक्ष और (२) कलापक्ष।

भावपक्ष—

भावपक्ष कविता की आत्मा है। भावों की कोई परिधि और सीमा नहीं। इनकी गति अबाध और असाधारण है। भावों की संख्या नहीं। कविता हृदय की वस्तु है, बुद्धि की नहीं। बुद्धि तो केवल सहायक के रूप में ही थोड़ा सा काम करती है। हृदय भावों का भण्डार है। यह जिस प्रकार के अनुभव को इस संसार में देखता है उसी प्रकार के भावका स्वाभाविक रूप से इसमें विकास हो जाता है। हृतंत्री का तार झंकृत हो जाता है और कवि तुरंत ही अपने उस अनुभव को जन सुलभ बनाने को कविता के माध्यम को पकड़ता है। भावों का कविता में वही स्थान है जो आत्मा का शरीर में। जिस प्रकार आत्मा के पतन से शरीर का मूल्य कुछ नहीं रहता उसी प्रकार भाव की न्यूनता भी काव्य को प्रायः मृत ही बना देती है।

संसार में मनुष्य कभी हर्ष से और आमोद से फूला नहीं समाता, कभी दुःख और वेदना के कारण निस्सरित अश्रु प्रवाह अबाध गति से सतत् चलता रहता है, तो कभी प्रेम के सतरंगे चित्रों से उसका हृदय पटल रँग जाता है। कभी वीरता के कारण उसकी भृकुटियों में धनुष की प्रत्यंचा का रूप दिखाई देने लगता है। यह सब भावजगत की असीमता और विराट रूप की ही झाँकी

है। कवि इन्हीं विभिन्न भावों को आधार बनाकर अपनी कल्पना के सहयोग से अनेकों चित्रों को अङ्कित करने में समर्थ होता है। जिस प्रकार भाव कविता की आत्मा है उसी प्रकार भाषा, छन्द और अलंकार कविता के शरीर हैं। यह शरीर ही कविता का कला-पक्ष है।

कलापक्ष—

कला-पक्ष के अन्दर वह शैली आती है जिसके द्वारा भावों की मूर्ति साकार होकर हमारे सन्मुख आ जाती है। भावों को साकार करने में भाषा और शैली साज-सज्जा का काम करते हैं। भावों की इसी वेश-भूषा को ही कला पक्ष कहते हैं। भाव और कला-पक्ष दोनों का सामंजस्य कविता में चार चाँद लगा देता है। यदि शास्त्रीय रूप से कविता को देखें तो कलात्मक रीति से सजीव भाषा जिसमें भावों का व्यंजन होता है, कविता है। बिना भावों के भाषा सौंदर्यहीन और बिना भाषा के भावों की अभिव्यंजना सरल नहीं। डा० श्यामसुन्दर दासजी के शब्दों में भाषा भावों की मूर्ति है। भावों के बिना भाषा कुछ नहीं कर सकती और भाषा तथा अन्य उपकरणों के बिना भावों में भी सौंदर्य की वृद्धि होना असम्भव है। इसीलिये भारतीय कला-शास्त्रियों ने, बहुत पहले काव्य की परिभाषा देते हुये कहा था, 'रसात्मकं बाक्यं काव्यं'। उपर्युक्त कथन का यह आशय नहीं कि कवि कविता को सजाने में बुद्धि चमत्कार करता रहे और अलंकारों तथा अनुप्रासों से भावों की हत्या करदे। ऐसा नहीं करना चाहिये क्योंकि कविता की वास्तविक शक्ति भाव और वृत्तियाँ ही हैं। महान् कवि और विश्व कवि वही हैं जिन्होंने भावों की अद्भुत सृष्टि करके उसमें भाषा अलंकार और अन्य आवश्यक उपकरणों का भी बिना प्रयास ही स्वाभाविक रूप से प्रयोग किया है। महाकवि कालिदास, विद्यापति, तुलसी, सूर आदि कवि उपर्युक्त कोटि के ही है। उनमें भाव और कला सौंदर्य दोनों पक्षों का मणि-कांचन संयोग हुआ है। यही कारण है जिससे उनके नाम आजभी प्रत्येक भावुक और सहृदय के मुखसे सहज रूपसे निस्सरित हो जाते हैं।

भावपक्ष और कलापक्ष का समन्वित रूप—

महाकवि विद्यापति में भी भाव और कला का सामंजस्य इस प्रकार हुआ है कि दोनों को भिन्न नहीं किया जा सकता। विद्यापतिकी कविता एक निर्मल

धारा के समान है जिसमें भावों की तरंगें उठती और डूबती हुई पाठक और श्रोता के हृदय को सिक्त करती हैं। इसका मुख्य कारण यह भी है कि विद्यापति एक गीतकार थे और वह भी उत्कृष्ट कोटि के। एक गीतकार के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि उसकी भावना इतनी घनीभूत हो कि पाठक के हृदय को बिभोर करदे। उसकी शैली इतनी संगीतमयी हो कि लोग गाकर बेसुध हो जायें। एक गीतकार के रूप में उन्होंने गीत भावप्रधान ही लिखे जिन्हें गाकर चैतन्य महाप्रभु बेसुध होकर गिर पड़ते थे। महाकवि विद्यापति भाव प्रधान कवि हैं। "विद्यापति की पदावली काव्य का कसीदा नहीं भाव का वैभव है, हाँ जहाँ कहीं काव्य का कसीदा बन गया है, यह कल्पना की उर्बरता के कारण ही हुआ है कुछ कवि के परिश्रम के कारण नहीं।"*

विद्यापति ने मुख्यतः श्रृंगार रस का ही वर्णन किया है। अन्य रसों में शांत, वीर आदि का चित्रण हुआ है किंतु उनमें कवि की आत्मा डूबी नहीं। उनमें पाठक के हृदय को आनंद की वह सीमा नहीं मिलती जो कि रसराज श्रृंगार के चित्रण में मिलती है। महाकवि ने श्रृंगार रस के दोनों पक्ष—(१) संयोग और (२) वियोग—के वर्णन में अपने हृदय को उँडेल दिया। कवि के काव्य में श्रृङ्गार रस की एक ऐसी सरिता बही जिसने हिंदी भाषा-भाषी ही नहीं वरन् बंगाल के निवासियों को भी शताब्दियों से संसिक्त कर दिया।

विद्यापति ने माधुर्य और सौंदर्यके संगम पर लाखों सहृदयों को स्नान करा दिया। संयोग और वियोग की सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवस्थाओं का और मानसिक वृत्तियों का इतना सुन्दर चित्रण किया जो कि आज भी उनकी महत्ता को अत्यधिक बढ़ा रहा है। युवक और युवतियाँ प्रेम विभोर होकर किन-किन नवीन भावों से भरते हैं और किस प्रकार के हाव-भाव प्रकट करते हैं, उसका ज्ञान जितना महाकवि को था उतना हिन्दी में सूर के अतिरिक्त अन्य किसी भी कवि को नहीं। विद्यापति ने केवल मुक्तक रचना की थी। पदावली में जो पदों का क्रम रखा है वह तो पाठकों की सुविधा के लिये बाद में संग्रहकर्त्ताओं ने अपनी पसंद से चुनकर रख दिये हैं। मुक्तक या गीत में प्रबंध की तरह

---

* विद्यापति काव्यालोक पृ० २०८।

कथा और चरित्र-चित्रण की विशेषता न होने के कारण कवि को यह आवश्यक हो जाता है कि वह मानसिक दशाओं का अथवा जड़ और चेतन जगत के अनुभवों का हृदय को स्पर्श करने वाला सजीव चित्र उपस्थित करे।

विद्यापति के काव्य में भावों की उत्कृष्टता के साथ २ उन उच्च भावों को अभिव्यंजित करने वाली कला भी उत्कृष्ट कोटि की ही है। एक दूसरे को भिन्न नहीं किया जा सकता। जहाँ जितने उच्च भाव हैं वहाँ उतनी ही उपयुक्त भाषा का प्रयोग है। कवि भाव का मूर्त्तीकरण कराने के लिये एक के बाद एक चित्र उपस्थित करते नहीं थकता। वह उस सौंदर्य को पाठकों के सम्मुख रखने को नये २ अलङ्कारों का विधान करता है। वाग्वैदग्ध्य और उक्ति-वैचित्र्य भी कवि के भावों को मूर्त्तीकरण करने में सहायक हुआ है। कहीं २ पर तो भाव की सम्पूर्ण उत्कृष्टता केवल उक्ति के ही ऊपर निर्भर है—

"कवि विद्यापति गाओल ना
दुख सहि सहि सुख पाओल ना"

इन दो पंक्तियों का प्रयोग कवि ने एक ऐसे अवसर पर किया है कि इसका अर्थ अश्लीलतायुक्त भी माना जा सकता है। किंतु उक्ति इतनी सटीक है कि नायिका को साहस देने के साथ २ एक लोक-सत्य के रूप में भी आती है। इस प्रकार की उक्तियाँ कवि के काव्य में भरी पड़ी हैं। यह उक्तियाँ कवि के जीवन सम्बन्धी अनुभावों की भी परिचायक हैं। इन्हीं उक्तियों के कारण कवि जनता का प्रतिनिधि बनता है। जितने महाकवि हैं उनकी रचनाओं में यह उक्तियाँ ही अमरता भर देती हैं। महाकवि कालिदास, शेक्सपियर और तुलसी तथा सूर की रचनायें इन उक्तियों से ओत प्रोत हैं। बिहारीलाल जैसे कवि में भी इन उक्तियों का प्राधान्य है। विद्यापति तो सौंदर्य के कवि हैं इसलिये वह अपनी कला के प्रति पूर्ण सजग हैं। उन्होंने भाव और कला को इस सुगमता के साथ पिरोया है कि दोनों को हम साथ ही साथ देख सकते हैं। पदावली के पदों को उदाहरण स्वरूप देखा जा सकता है कि किस प्रकार भाव और कला का सामंजस्य करने में कवि सफल हुआ है। सुविधा के लिये संयोग और वियोग दोनों वर्गों के कुछ पदों के द्वारा इस निष्कर्ष को निकालने का प्रयत्न करेंगे।

क्योंकि कवि ने मिलन के सुख और उल्लासपूर्ण क्षणों तथा वियोग की समस्त मर्मस्पर्शी वेदनाओं का चित्रण किया है। हम कह चुके हैं कि विद्यापति शृंगाररस के कवि हैं जिसका स्थायी भाव रति है। प्रेम उनका लक्ष्य है। उस प्रेम का उदय नायिका की सन्धि अवस्था पर होता है।

संयोग पक्ष का काव्य सौन्दर्य—

नायिका की इस संधि अवस्था का वर्णन भारतीय काव्य-साहित्य की परंपरा में अनेकों कवि कर चुके थे, विद्यापति ने भी कवि परम्परा का ही निर्वाह किया है। नायिका की इसी अवस्था को कवि शृङ्गाररस का आलंबन बनाने में उपयुक्त समझता है। यह कवि की मौलिक सूझ है। जयदेव ने राधा को काम कला में चतुर ही चित्रण किया था। किन्तु विद्यापति ने एक ऐसी अवस्था को चुना जिसमें न तो राधा को बालिका ही कहा जा सकता और न युवती ही। यह वह अवस्था है जिस समय शैशवावस्था का पूर्ण रूप से अन्त नहीं होता और यौवनावस्था का विकास भी नहीं होता। नायिका के हृदय में दो प्रकार के भावों का द्वन्द्व रहता है—

सैसव जौवन दुहु मिलि गेल।
श्रवनक पथ दुहु लोचन लेल॥
बचन क चातुर लहु लहु हास।
धरनिये चाँद कएल परगास॥
मुकर लई अब करई सिंगार।
सखि पूछइ कइसे सुरत-बिहार।
निरजन उरज हेरए कत बेरि।
हसइ से अपन पयोधर हेरि॥
पहिल बदरि-सम पुन नव रंग।
दिन दिन अनंग अगोरल अ ंग॥

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने भावों का कैसा सुन्दर रूप प्रदर्शित किया है। आन्तरिक भावों के साथ वाह्य चेष्टाओं का कितना सुन्दर सामंजस्य हुआ है। मुकुर लेकर शृंगार करने में कवि नायिका की उस उत्सुकता का दर्शन करता है जो कि एक युवती में यौवनागमन के समय स्वतः ही जाग्रत हो जाती है। इसी

अवस्था में नायिका सखियों से काम कला के अनेकों पाठों की जानकारी प्राप्त करना प्रारम्भ कर देती है। 'निर्जन उरज हेरए कत बेरि' में भी नायिका के भावों का मनोवैज्ञानिक वर्णन किया गया है।

भावों की विशिष्टता के साथ २ भाषा अलङ्कार और अनुप्रासों का भी सामंजस्य हुआ है। 'लहु लहु' शब्दों के द्वारा हास्य का चित्र सा उपस्थित कर दिया है। 'दिन दिन' का प्रयोग भी यौवन के आने की अवस्था का परिचायक है। 'धरनिये चाँद कएल परगास' में अलङ्कार का प्रयोग कितना स्वाभाविक है। भावों के उत्कर्ष में भाषा और शब्द इतने उपयुक्त हैं कि एक भी शब्द इधर से उधर करते ही भाव के उत्कर्ष में हीनता का आरोप लगाया जा सकता है। कवि बिहारीलाल ने भी वयःसन्धि का चित्रण किया किंतु उसमें भावों की इतनी गहराई नहीं जितनी कि विद्यापति में पायी जाती है—

'छुटी न सिसुता की झलक झलक्यो जोवन अंग।
दीपति देह दुहून मिलि, दिपत ताफता रंग॥

उपर्युक्त बिहारी के दोहे में केवल वयःसन्धि का रूप तो स्पष्ट कर दिया गया है किंतु नायिका के आन्तरिक भावों की ओर कवि का इशारा भी नहीं। विद्यापति के पद में नायिका के आन्तरिक और वाह्य भावों अथवा चेष्टाओं का इतना सुन्दर सामंजस्य हुआ है जो कवि की महानता का परिचायक है। एक और उदाहरण वयःसन्धि का ही लीजिये, किस प्रकार नायिका के हृदय में दो भावों का एक साथ ही उदय हो रहा है। यौवन के आगमन से बाला के स्वाभाविक व्यवहार में जो अन्तर हो रहा है उसका कवि ने कितना हृदयस्पर्शी चित्र उपस्थित किया है।

खने खन नयन कोन अनुसरई।
खने खन बसन धूलि तनु भरई॥
खने खन दसन-छटा छुट हास।
खने खन अधर आगे गहु वास॥
चउँक चलए खने खन चलु मन्द।
मनमथ पाठ पहिल अनुबन्ध॥

यहाँ भी नायिका क्षण भर तो एक युवती की तरह क्रिया-कलाप करती है

किंतु दूसरे ही क्षण एक बालिका की सी क्रिया करने लगती है यदि एक क्षण उसके नेत्र कटाक्ष करने को उद्यत हैं तो दूसरे ही क्षण एक अबोध बालिका के समान वह धूल में भी लोट जाती है। कभी बालिका के समान हँसने लगती है तो दूसरे ही क्षण लज्जायुक्त स्मित से रंगे ओष्ठों को कपड़े से छिपाने का उद्योग करती है। कभी चंचलता पूर्वक चलती है तो क्षण भर पश्चात् ही उसे अपने युवती होने का ध्यान आता है और वह मन्द २ चलने का उपक्रम करती है। 'मनमथ पाठ पहिल अनुबन्ध' के अन्दर जो भावना केन्द्रित है वह अत्यन्त अनूठी है। नायिका की तुलना एक ऐसे बालक से की गई है जो पाठशाला में गुरू के द्वारा प्रथम पाठ सीखता है। नायिका का गुरू कामदेव है। जिस प्रकार बालक नये पाठ को आश्चर्य से देखता हैं उसी प्रकार कामदेव के द्वारा जो पाठ उस नायिका को दिया गया है उसे वह ध्यानपूर्वक देखती है। इस पद में स्वभावोक्ति अलङ्कार का प्रयोग कवि की प्रतिभा का परिचायक है। उपमा अलङ्कार में कवि जिस प्रकार सिद्ध हस्त है उसी प्रकार अन्य अलङ्कारों के प्रयोग में भी वह कम चतुर नहीं।

वयःसन्धि के इन उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि कवि ने किस स्वाभाविकता के साथ नायिका की हृदयगत भावनाओं का चित्रण किया है। बालिका की चेष्टाओं को ज्यों का त्यों एक मार्मिक और मनोवैज्ञानिक ढङ्ग से प्रस्तुत करने की योग्यता अन्य बहुत कम कवियों में मिलेगी"। 'राधा के भुवन मोहन लावण्य के एक से एक सुन्दर पद विद्यापति ने लिखे हैं, जिनमें उनकी सुन्दरता अक्षर २ पर निखर रही है। कहाँ तक कहा जाय, राधा का अलौकिक रूप लावण्य कवि के लिये पहेली बन गया है। इस पहेली को समझाने को कवि ने अनेकों प्रकार की कल्पना की हैं।"÷

विद्यापति सुन्दरता, माधुर्य और प्रेम के सफल चितेरे हैं। उन्होंने सुन्दरता को अनेक रूपों में पाठकों के सामने रखने का प्रयत्न किया है। उन्होंने नायक के हृदय के एक २ कोने को झाँका है और फिर उसका परिचय अपनी कविता में दिया है। अलङ्कारों अथवा भाषा का प्रयोग भी उसी के अनुकूल ही हुआ हैं—

÷विद्यापति काव्यालोक पृ० २१४

"कि आरे ! नव जौवन अभिरासा ।
जत देखल तत कहए न पारिअ
छओ अनुपम एक ठामा ॥
हरिन इन्दु अरबिन्द करिनि हेम
पिक बूझल अनुमानी ।
नयन बदन परिमल गति तन रुचि
अओ अति सुललित बानी ॥
कुच जुग परसि चिकुर फुजि पसरल
ता अरुझायल हारा ।
जनि सुमेरु ऊपर मिलि ऊगल
चाँद विहिनु सब तारा ॥
लोल कपोल ललित मनि—कुण्डल
अधर बिम्ब अधजाई ।
भौंह भ्रमर नासा पुट सुन्दर
से देखि कीर लजाई ॥
भनइ विद्यापति से वर नागरि
आन न पावए कोई ।
कंस दलन नारायन सुन्दर
तसु रंगिन पए होई ॥

नायिका की सुन्दरता का चित्र उपस्थित करने में कवि की प्रतिभा ने अनेकों उपमानों को जुटा दिया है। सुन्दरता के भाव में उत्कर्ष लाने के लिये 'कि आरे' का प्रयोग कितना सुन्दर है। वास्तव में विद्यापति के विषय में महामहोपाध्याय हरिप्रसाद जी का यह कथन अक्षरशः सत्य है कि विद्यापति सौंदर्य के कवि हैं। कवि के काव्य का अधिकाँश भाग इसी सौंदर्य के अङ्कन में ही है। अलङ्कारों में उपमा उत्प्रेक्षा का प्रयोग सुन्दर है।

साँग रूपक के द्वारा एक और चित्र उपस्थित किया गया है।

"पल्लव—राज चरन-जुग सोभित ।
गति गजराज क भाने ॥

कनक कदलि पर सिंह समारल ।
तापर मेरु समानें ॥

इसी आशय का एक साँगरूपक सूरदास का भी है। 'जुगल कमल पर गज क्रीड़त है ''''''

सूरदास का पद विद्यापति से किसी दृष्टि से अधिक विशेषता नहीं रखता लेकिन फिर भी विद्यापति की अपेक्षा अधिक प्रसिद्ध है। इसका यह कारण नहीं कि विद्यापति का सौन्दर्य अङ्कन सूर से कम महत्व रखता है वरन् इसका कारण यह है कि सूरदास एक संप्रदाय विशेष से सम्बन्ध रखते थे इस कारण उनका पद अधिक जन प्रियता प्राप्त कर सका। विद्यापति को सौंदर्य अंकन इतना प्रिय है कि वह विरह विधुरा नायिका के वर्णन में भी उसके सौंदर्य को भुला नहीं सकते। व्रज की तुलना में मैथिल भाषा का इस ओर प्रयोग भी कम है, यह भी इस जन-प्रियता के कारणों में से एक है। डा० रामरतन भटनागर के शब्दों में कहना चाहिये, "कवि की सौंदर्य भावना इतनी बढ़ी हुई है कि वह दुःख-पूर्ण अवस्था को चित्रित करते हुये भी नायिका के सौंदर्य को भूल नहीं सकता। ऐसे स्थल कृष्ण काव्य में कम मिलेंगे, क्योंकि यह कवि-भक्त नायिका के दुःख-सुख से रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करके ही लेखिनी बढ़ाता है।"

नायिका के सौंदर्य को चित्रित करने में कवि ने अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा और बुद्धि से काम लिया है। नख शिख वर्णन, 'सद्यःस्नाता, प्रेम प्रसंग के शीर्षक के नाम से लिखी कविताओं में कवि ने उच्चकोटि की सौंदर्य भावना का ही प्रदर्शन किया है। कवि सुन्दर से सुन्दर चित्र उपस्थित करने में लगा है। भाषा और अलंकारों का चमत्कार अनुपम और चित्ताकर्षक है। इस प्रकार के अनेकों चित्र देखे जा सकते हैं। किंतु इन सम्पूर्ण वर्णनों में कवि की बुद्धि का ही अधिक चमत्कार है। हृदय तो केवल कहीं-कहीं झाँकी सी मारता है। हाँ, इतना अवश्य है कि पाठक को शृंगार रस की अनुभूति में डुबाने में यह वर्णन पूर्ण सफल है। फिर भी अनेकों स्थान पर मन की स्थितियों को कवि ने संयोग पक्ष के अन्दर भी बड़े मार्मिक ढङ्ग से प्रदर्शित किया है—

"पथ-गति नयन मिलल राधा कान।
दुहु मनसिज पूरल संधान ॥

दुहु मुख हेरइत दुहु भेल भोर।
समय न बूझए अचतुर चोर॥
विदूगधि संगनि सब रस जान।
कुटिल नयन कएलहि समधान॥
चलल राज-पथ दुहु उरझाई।
कह कवि-सेखर दुहुं चतुराई॥"

उपर्युक्त पद में कवि ने कितनी सुन्दरता के साथ राधा और कृष्ण की प्रेम विभोरता का चित्र प्रस्तुत किया है। मार्ग में दोनों का अचानक ही मिलन हुआ। कामदेव ने सुवर्ण अवसर पाकर दोनों के हृदय को अपने बाणों से बिद्ध कर दिया। परस्पर एक दूसरे की सुन्दरता को देखकर इतने विभोर हुये जैसे अनाड़ी चोर उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा न करके बेमौके ही अपने कार्य में लग जाता है। साथ की रसिक सखी ने इन बातों को तुरन्त ही ताड़ लिया और उसने अपनी तिरछी चितवन से उनको सावधान कर दिया।

भाव की उत्कृष्टता के साथ-साथ प्रेमी और प्रेमिका की विभोरता का चित्र सा खड़ा करदिया है। अनाड़ी चोर से उनकी तुलना करके कवि ने अर्थ के सौंदर्य में जो अभिवृद्धि की है वह अनुपम है। इसी प्रकार का एक पद सूर का भी है। अन्तर इतना ही है कि विद्यापति राधा और कृष्ण से राज-पथ पर यह प्रेम-क्रीड़ा कराते हैं जबकि सूरदास ने प्रकृति की रम्य गोद में कराई है—

खेलन हरि निकसे ब्रज होरी।

× × ×

औचक ही देखी तहँ राधा नैन बिसाल भाल दिये रोरी।
नील बसन फरिया कटि पहिरे, बेनी पीठि रुचिर झकझोरी॥

× × ×

सूर स्याम देखत ही रीझे, नैन नैन मिलि परी ठगोरी॥

× × ×

सूरदास का राधा और कृष्ण के प्रथम मिलन का चित्र निःसन्देह विद्यापति के चित्र से अधिक मादक है। 'ठगोरी' शब्द ने भाव की सघनता को एक साथ इतना बढ़ा दिया कि सम्पूर्ण पद रस प्लावित हो गया। किंतु विद्यापति

द्वारा उपस्थित किया हुआ चित्र भी अपनी भाव-प्रवणता में कम नहीं।

कवि ने एक सुन्दरी को देखा। उस गजगामिनी ने भी मुड़कर देखा। इस देखने में उसने एक ऐसा भाव प्रदर्शित किया कि कामदेव भी जिसे देख कर मूर्छित हो गया—

"गेल कामिनि गजहुँ गामिनि विहँसि पलटि निहारि।
इन्द्र जालक कुसुम सायक कहुक मेलि वर नारि॥"

नायिका नवयौवना है। मार्ग में अपने प्रेमी को देखकर प्रेमातिरेक से विभोर हो जाती है। उसकी दशा पागलों की सी हो जाती है। उसका धैर्य साथ छोड़ देता है। हृदय की चंचलता के कारण यह विक्षुब्ध हो जाती है—

'आज जाइत पथ देखलि रे।
रूप रहल मन लागि॥
तेहि पल सयँ गुन गौरव रे।
धैरज गेल भागि॥'

रूप को निहार कर नायिका पर जादू के समान प्रभाव पड़ा। उसके हृदय की स्थिति का पता इन्हीं पंक्तियों में स्पष्ट कर दिया गया है।

नायिका ने आधे अंचल को खिसकाकर और मुस्कान के साथ जो कटाक्ष किया वह कवि की आँखों ने देख लिया। कवि कहने लगा—

आध अँचर खसि आध बदन हँसि आधहिं नयन तरंग।
आधउ एजन हेरि आध आँचर भरि तगधरि दगध अनंग॥

हाव-भावों का कितना सुन्दर चित्रण है। कवि की सूक्ष्म दृष्टि ने नायिका की एक एक बात को ध्यान पूर्वक देखा। कला के पारखी ने शब्दों के द्वारा इस चित्र को जन-सुलभ बना दिया।

कवि ने संयोग-पक्ष में ही नायिका की उस बेचैनी का चित्रण किया है जो कि उसको नायक से न मिलने के कारण बढ़ गई है—

"अविरल नयन गरए जलधार।
नवजल बिंदु सहए के पार॥

कि कहब सजनी तकर कहिनी।
कहए न पारिअ देखलि जहिनी॥

× × ×

× × ×

चाँद सतावए सविता हू जीनि।
नहिं जीवन एकमत भेल तीनि॥

किछु उपचार मान नहिं आन।
ताहि बेआधि भेषज पंचबान॥

तुअ दरसन बिनु तिलओ न जीव।
जइओ कलामति पीउरब पीव॥

माधव के न मिलने के कारण बाला के नयनों से निरंतर अश्रु वर्षा होती रहती है। उसके नेत्रों से गिरने वाले अश्रुओं का कोई पार नहीं पा सकता। सखी उसकी दशा का वर्णन करने में असमर्थ है। कृष्ण के वियोग में उस बाला को शीतल वस्तुओं के द्वारा भी बेचैनी मिलती है। शरीर में लगा चंदन विष की सी गर्मी देता है। सम्पूर्ण सृष्टि उसे विरोधी प्रतीत होती है। चंद्र-किरणें उसे सूर्य से भी अधिक दग्ध करती हैं। उसकी दशा शोचनीय है। नायिका की सखी कहती है कि हे माधव तुम्हारे दर्शन के बिना वह नायिका एक भी क्षण जीवित नहीं रहेगी।

प्रेम में डूबने वाले की दशा का कितना सुन्दर चित्रण किया है। इसी प्रकार का एक पद सूर ने भी लिखा है। सूर की गोपियाँ कृष्ण के वियोग में इस पद को कहती हैं किंतु विद्यापति ने इस पद को संयोग में ही रखकर दूती के द्वारा नायिका की वास्तविक दशा का चित्रण करा दिया है—

"निशदिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहत पावस रितु हम पर जबतें श्याम सिधारे॥"

सूरदासजी का एक और पद तो भाव और कला की दृष्टि से विद्यापति के पद को फीका कर देता है—

बिनु गोपाल बैरिन भई कुंजें।
तब यह लता लगति अति शीतल अब भई विषम ज्वाल की पुंजें॥

वियोग में जितनी भाव प्रवणता होनी चाहिये, विद्यापति ने उतनी संयोग पक्ष में ही प्रस्तुत करने में सफलता पाई है। विद्यापति का पद संयोग श्रृंगार का नमूना है जब कि सूरदास के दोनों पद विरह-व्याकुल गोपियों को ज्ञान उपदेश देने वाले, कृष्ण के सखा के प्रति कहीं हुई तीव्र उक्तियाँ हैं। यह स्वाभाविक है कि जो दशा विरह में होती है वह संयोग में नहीं। संयोग में बाधाओं और बन्धनों का उतना प्रभाव नहीं जितना विरह में होता है। वियोग के कारण प्रेमोन्माद तीव्र हो जाता है। हृदय का तार २ बजने लगता है। इसलिये यदि विद्यापति के विरह के पदों को देखा जाय तो उनमें भी भावों का वही गाम्भीर्य मिलेगा जो कि सूर के विरह के पदों में मिलता है। पांडित्य और कला-विधान अवश्य इतना बढ़ा हुआ है कि जिसके कारण भावों की उत्कृष्टता को समझने में सरलता नहीं।

हम ऊपर कह चुके हैं कि जहाँ कवि ने राधा के नख शिख वर्णन और रूप सौंदर्य का चित्रण किया है वहाँ अलंकारों का प्रयोग अधिक हुआ है, लेकिन जहाँ मिलन अभिसार और अन्य प्रसंगों में राधा का चित्रण किया है वहीं की उत्कृष्टता भी कला के मेल के साथ ही आई है। नीचे एक दो उदाहरण देकर यह स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे कि किस प्रकार कवि का भाव और कला-पक्ष सुदृढ़ एवं निखरा हुआ है। जहाँ पर केवल पांडित्य की ओर अधिक ध्यान है वहाँ अवश्य भाव की हानि हुई। अन्यथा जब सरल उक्तियों के द्वारा कुछ कहा गया है तो भाव इतने तीव्र हैं कि किसी भी कवि में नहीं मिलते।

'करु धरु करु मोहे पारे।
देब में अपरुब हारे, कन्हैया॥
सखि सब तेजि चलि गेली।
न जाने कौन पथ भेली कन्हैया॥
हम न जाएब तुअ पासे।
जाएब औघट घाटे, कन्हैया॥
विद्यापति ऐहो भासे।
गूजरि भजु भगवाने कन्हैया॥

प्रेमिका के हृदय का बड़ा ही मार्मिक चित्रण है । एक ओर नायिका 'हम न जाएव तुआपासे' कहती है, तो दूसरी ओर 'जाएव औघट घाटे' कहकर निर्जन स्थान में चलने का संकेत भी करती है । कवि ने वाग्वैदग्ध्य की चतुरता यहाँ इतनी सुन्दरता पूर्वक दिखाई है, जो अपनी समानता नहीं रखती ।

उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि विद्यापति के काव्य में संयोग-पक्ष अत्यन्त मार्मिक एवं कला पूर्ण हैं। संयोग-पक्ष में नायक एवं नायिका एक साथ रहते हैं इस कारण मन अधिक उतार चढ़ाव नहीं देखता। कवि आन्तरिक भावों के चित्रण का अधिक अवसर नहीं प्राप्त कर सकता । संयोग में केवल एक दूसरे से मिलने की बेचैनी और उत्सुकता आदि प्रधान भावों का ही चित्रण किया जा सकता है । किन्तु विद्यापति ने अपनी सूक्ष्मान्वेषी दृष्टि के द्वारा संयोग-पक्ष में भी आन्तरिक भावों के साथ ही वाह्य-चेष्टाओं का सहयोग करके अपने काव्य को अमर बना दिया है । यह कार्य कोई साधारण कलाकार नहीं कर सकता था । कला-पक्ष भी उत्कृष्ट कोटि का ही है । ऊपर हम यह भी देख चुके हैं कि जहाँ कविकी कल्पना अनेक चित्रों के द्वारा भाव का द्योतन कराने में प्रयत्नशील है वहाँ कवि का पांडित्य भाव के समझने में क्लिष्टता उपस्थित कर देता है । किन्तु जहाँ सरलता पूर्वक अभिव्यक्ति की गई है वहाँ भावधारा प्रवल वेगमयी होकर हृदय को डुबा देती है ।

कवि की कल्पना सौंदर्य के मूर्त्तीकरण के प्रयास में ही अधिकतर संलग्न रहती है इस कारण कवि उत्प्रेक्षा और उपमा अलङ्कारों का सहारा भी क़दम कदम पर लेता है ।

ऊपर महाकवि बिद्यापति के काव्य सौंदर्य को केवल संयोग-पक्ष को दृष्टि में रखकर ही देखा गया । नीचे उनके विरह के गीतों के आधार पर उनकी काव्य पटुता को समझने का प्रयास करेंगे ।

वियोग-पक्ष का काव्य-सौन्दर्य

ऊपर हम कह चुके हैं कि संयोग वर्णन में किसी कवि की काव्य मर्मज्ञता का इतना परिचय नहीं मिलना जितना कि वियोग-पक्ष में । वियोग में कबि

की आत्मा विरहिणी के हृदय के अन्दर बैठकर भावराशि के अनमोल रत्नों को पकड़कर लाती है। नायक और नायिका को मिलन की संभावना न होने से मन अनेकों कल्पनाओं का सहारा लेकर नवीन २ उद्भावनाओं का सृजन करता है। इसलिये कवियों ने जहाँ संसार को रस से प्लावित किया है वहाँ विरहिणी की दशा का चित्रण ही उनका विषय रहा है। कालिदास ने यक्षी के विरह के द्वारा एक ऐसी भावधारा बहाई जो शताब्दियों से संसार के भावुक और रसिक लोगों के मन को संसिक्त कर रही है। जायसी ने नागमती के द्वारा ही मानव के हृदय से तादात्म्य किया। सूर तुलसी आदि कवियों ने भी वियोग श्रृंगार के द्वारा ही अपने काव्यों में रस धारा का संचार किया। इसी प्रकार विद्यापति ने भी राधा को बियोग की अग्नि में तपाकर एक सामान्य भाव भूमि पर लाकर खड़ा कर दिया।

कुछ लोगों का कथन है कि विद्यापति वियोग श्रृङ्गार के चित्रण में उतने सफल नहीं हुये जितने कि संयोग श्रृङ्गार के चित्रण में। उन विद्वानों के कथन का आशय यही है कि कवि विरहिणी की उन मानसिक अवस्थाओं का चित्रण नहीं कर सका जिनका कि सूरदास एवं जायसी आदि अन्य कवियों ने अपने काव्य में किया। उनका कथन है कि कवि बाह्य-चेष्टाओं की ओर अथवा सौंदर्य-अंकन के लोभ में पाँडित्य और चमत्कार प्रदर्शन की ओर ही अधिक उन्मुख रहा। डा० रामकुमार वर्मा भी विद्यापति को विहारी के समान घाट बाट का चित्रण करने वाला ही समझते हैं—उनके अनुसार विद्यापति ने अन्तर्जगत का उतना हृदयग्राही वर्णन नहीं किया जितना बाह्य जगत का। तात्पर्य यह है कि विद्यापति ने मानव चित्तवृत्तियों के आरोह अवरोह का साधारण रूप से ही चित्रण किया है। इसकी अपेक्षा स्थूल शरीर के हाव-भाव चेष्टायें अङ्ग विकास का चित्रण करने में कवि का हृदय अधिक रमा है।

संयोग—पक्ष में हम कितने ही उद्धरण देकर यह सिद्ध कर चुके हैं कि कवि ने जहां पर नायिका के अङ्ग-प्रत्यंगों का चित्रण किया है—जैसे वयःसन्धि, सद्यस्नाता, नखशिख वर्णन आदि। वहाँ पर कवि ने अपनी सौंदर्यप्रियता के मोह में पड़कर एक ही चित्र को मूर्त्तिमान करने के प्रयास में कल्पना के द्वारा नवीन-नवीन चित्रों को सजाने का प्रयत्न किया है। इसलिये वहाँ पर

कवि सौंदर्य-बोध करा के ही पाठक को रसमग्न कर देता है। आन्तरिक भावों का अभाव अवश्य है किंतु सब स्थानों पर नहीं। कहीं-कहीं पर तो हृदय के सूक्ष्म तन्तुओं को इतनी कुशलता के साथ बाह्य-चित्रण में घोल दिया है कि कवि की काव्य-पटुता की सराहना उल्लास के साथ करनी पड़ती है। संयोग के अन्य प्रसंगों में कवि ने अधिकतर मानसिक अवस्थाओं का ही चित्रण किया है। मिलन, नोंकझोंक, अभिसार, विदग्ध विलास, कौतुक, मान, छलना भावोल्लास, बसंन्त आदि के प्रसंगों में कवि ने अपने हृदय को उंडेल दिया है। संयोग-पक्ष में दिये गये उद्धरण पर्याप्त हैं। अब देखना यह है कि कवि ने वियोग-पक्ष के चित्रण में भी क्या उतनी काव्य पटुता दिखाई है जितनी कि संयोग के चित्रण में। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कवि को पांडित्य से मोह है। उस मोह को उसने कहीं भी नहीं छोड़ा। उसकी कल्पना नये-नये अलंकार विधान करने की ओर उन्मुख अवश्य रही है। वियोग की अवस्था में भी कवि अपनी सौन्दर्य प्रियता को नहीं छोड़ सका है। किंतु इस कारण भाव की तीव्रता में कहीं भी न्यूनता नहीं आई। काव्य के कला-पक्ष को हम विद्यापति में प्रत्येक स्थान पर परिपुष्ट और सुन्दर ही पाते हैं। कला-पक्ष की उत्कृष्टता के कारण ही उनके भाव-पक्ष पर यह होष लगाया जाता है कि विद्यापति सूर के समान हृदय की सूक्ष्म दशाओं का चित्रण नही कर सके। किंतु यह कथन ठीक नहीं। विद्यापति का कला-पक्ष भाव-पक्ष का सहायक ही रहा है।

यह ठीक है कि सूर और विद्यापति दोनों ही मुक्तक काव्य के रचयिता है लेकिन फिर भी विचार धारा और परिस्थितियों का कवि की कृतियों पर अवश्य प्रभाव पड़ता है। विद्यापति और सूर के काव्य की तुलना करते समय इन बातों को अवश्य देखना पड़ेगा। विद्यापति एक दरबारी कवि थे। इस कारण उनको यह आवश्यक था कि वह अपनी कविता में कला और चमत्कार प्रदर्शन को भी स्थान दें। इसके अतिरिक्त संस्कृत के कवि होने के कारण रीतिशास्त्र का भी उन पर प्रभाव था। किंतु सूर एक भक्त गायक के रूप में अपनी आत्मा की विभोरता को प्रकट करते थे कला प्रदर्शन उतना नहीं करते। इस कारण उनके अंदर काव्य-पक्ष उतना उन्नत और परिपुष्ट नहीं जितना कि विद्यापति के काव्य में मिलता है। लेकिन फिर भी यह कोई निश्चित

धारणा नहीं बनाई जा सकती कि विद्यापति के काव्य का भावपक्ष सूर के भाव-पक्ष से कम विकसित है। अनेकों स्थान पर विद्यापति का काव्य इतना उन्नत और परिपुष्ट है कि सूर के काव्य में ढूंढने पर भी यह स्थल नहीं मिलेंगे और सूर के काव्य में भी अनेकों स्थान इस प्रकार के हैं जो विद्यापति के काव्य में नहीं मिलेंगे। दोनों ही सफल कलाकार हैं। इस प्रकार की तुलना करना ठीक नहीं। दोनों कवि अलग २ परिस्थितियों में अपनी कला का विकास कर सके इसलिये दोनों के काव्य को एक कसौटी पर रख के नहीं कसा जा सकता। दोनों ही महान् कवि है और प्रतिभा सम्पन्न भी। संयोग पक्ष में हम यह दिखा चुके हैं कि विद्यापति कला के पारखी और सूक्ष्मान्वेषी थे। यह भी देखा कि उनका कला और भाव का सामंजस्य उत्कृष्ट कोटि का था। अब वियोग-पक्ष के चित्रण में भी देखना है कि कवि ने किस प्रकार भाव, कला और अन्य उपकरणों का समन्वय किया है। डा० रामरतन भटनागर ने कहा है वह अक्षरशः सत्य है—"विद्यापति संयोग शृङ्गार में जहाँ अत्यन्त उत्कृष्ट कवि के रूप में आते हैं, वहाँ विप्रलंभ शृङ्गार में उससे भी अधिक बढ़े चढ़े हैं।.... यहाँ वे स्थल हैं जिनके कारण विद्यापति वैष्णव कवियों को ग्राह्य हुये, नहीं तो उनके संयोग-शृङ्गार की गर्हित भावनाओं ने उन्हें सदा के लिये लाँछित कर दिया था।............परन्तु विप्रलंभ शृङ्गार के गीत बिना गहरी प्रेमानुभूति के नहीं निकल सकते।"

वियोग शृङ्गार में कवि के काव्य सौंदर्य का विवेचन करने में हमको देखना है कि कवि ने पांडित्य का प्रदर्शन क्या उसी प्रकार किया है जैसा कि संयोग-शृङ्गार के चित्रण में किया है ? अलंकारों का विधान भी क्या उसी प्रकार का है ? उत्तर मिलेगा नहीं। वास्तव में कवि ने वियोग के चित्रण में अनुभूति को व्यक्त करने में सरलता को अपनाया है। भाषा भी चलती हुई है। इस कारण भाव सरलतापूर्वक हृदयगम्य हो जाता है।

प्राणेश विदेश जाने वाले हैं। यह सुनकर राधिका के हृदयतल में एक मन्थन होने लगा। कुलशीला होने के कारण उसे प्रियतम से कहने में संकोच होता है इस कारण वह अपनी सखी से कहती है—

"सखि हे बालम जितन विदेश
हम कुल कामिनि कहइत अनुचित
तोहहुँ दे हुनि उपदेश ॥
इ न विदेसक बेलि।

नायिका के हृदय की उद्विग्नता को किस सरलता पूर्वक कवि ने प्रदर्शित किया है। नायक सखी के कहने से नहीं रुकता लाचार होकर उस कुलशीला को नायक से स्वयं कहना पड़ता है।

माधव तोहें जनु जाह विदेस।
हमरो रंग-रभस लए जएबह
लएबह कौन संदेस ॥

कितनी वेदना है। नायक के साथ ही नायिका का आमोद प्रमोद (रंग-रभस) भी चला जायेगा। दूसरी बात यह है कि नायिका के पास संदेश कौन लायेगा। इसी चिंता से उसकी दशा शोचनीय होती जा रही है।

रात्रि को नायिका प्रियतम के साथ ही सोई किंतु प्रियतम रात को ही चुपचाप चला गया। नायिका का हृदय विदीर्ण हो गया और वह कहने लगी :-

एक सपन सखि सूतल रे
आछल बालम निसि मोर।
न जानल कति खन तेजि गेल रे
बिछुरल चकवा जोर ॥

चकवी अकेली रह गई और अब पिया-पिया पुकार कर अपना जीवन व्यतीत करेगी। कितनी मार्मिकता का प्रदर्शन इन पंक्तियों में किया गया है। 'चकवा जोर' का बिछुड़ना नायिका की दशा को समझाने को पर्याप्त है।

ऊपर के उद्धरणों से स्पष्ट है कि वियोग शृंगार के चित्रण में कवि की अभिव्यक्ति सरल है। भाषा निरालंकार है। भावों की सरलता के कारण, पाठक को आनंद भी अधिक आता है।

कृष्ण को विदेश जाते देख राधा रो उठती है। कृष्ण उससे जाने की अनुमति माँगते हैं। राधा का हृदय टुकड़े-टुकड़े हो जाता है और वह एक साथ मूर्च्छित हो जाती है। कृष्ण को आश्वासन देना पड़ता है कि अब वह

मथुरा नहीं जायेंगे। राधा की अवस्था सुधर गई। किंतु कृष्ण अपनी बात पर अटल नहीं रहे। एक दिन वह इस चकवी को अकेला छोड़ कर विदेश चले गये।

"हरि मथुरापुर गेल, आजु गोकुल शून भेल।
रोददि पिंजर शुके, धेनुधावइ मथुरा मुखे।
अब सोइ जमुना कूले, गोप गोपी नहिं बूले।

सम्पूर्ण गोकुल सूनी हो गई। शुक, रोने लगा, गाय मथुरा की ओर भागने लगी। यमुना के किनारे के आमोद प्रमोद के स्थानों में सन्नाटा छाया हुआ है। सम्पूर्ण प्रकृति वियोगावस्था के दुःख से बेचैन है।

राधा प्रियतम की प्रतीक्षा कर रही है। उसके नख प्रियतम के आने के दिवस को लिखते २ घिस गये। नेत्रों की ज्योति मार्ग को देखते-देखते मंद पड़ गई।

"सखि मोर पिया।
अबहु न आओल कुलिस हिया॥
नखर खोआओलु दिवस लिखि लिखि।
नयन अँधा ओलुँ पिया पथ देखि॥

प्रिय की प्रतीक्षा में जो दशा नायिका की हुई वह पाठक के हृदय में स्वाभाविक रूप से नायिका के प्रति एक संवेदना और सहानुभूति उत्पन्न कर देती है। एक और मार्मिक स्थल देखिये—

माधव हमरो रहल दुर देस।
केओ न कहे सखि कुसल संदेश॥
जुग जुग जिवथु बसथु लख कोस।
हमर अभाग हुनक नहिं दोस॥
हमर करम भेला वहि विपरीत।
ते जलन्सि माधव पुरबिल प्रीत॥
हृदयक बेदन बान समान।
आनक बेदन आन न जान॥

राधा के प्रेम की कितनी गहरी अनुभूति है। प्रिय दूर चला गया। उसका

संदेश कोई लाकर नहीं देता फिर भी राधा उसमें प्रिय को दोष नहीं देती वरन् अपने भाग्य को ही दोष देकर संतोष की साँस लेती है। अन्तिम पंक्ति की उक्ति में कितनी वेदना भरी हुई है, 'आनक वेदन आन न जान'। बात भी ठीक है। विरह की वेदना को तो वही समझ सकता है जो कभी स्वयं अपने प्रिय से अलग रहा हो।

विरह के पदों में कवि ने अधिकतर अपनी अनुभूति को सरलता पूर्वक ही अभिव्यक्त किया है, पाँडित्य और चमत्कार का उतना जोर नहीं जितना संयोग शृंगार के वर्णन में है। इसलिये भाव तरणि में इतनी तरंगें हैं कि हृदय बरबस ही रस से सिंचित हो जाता है। एक नहीं अनेक स्थल हैं जहाँ पर कवि हृदय की सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावनाओं के चित्रण में ही अपनी काव्य-पटुता को प्रदर्शित करता है। कहीं-कहीं पर कवि ने कूटपदों को भी लिखा है। किंतु उनकी संख्या अधिक नहीं। पाँडित्य ने कहीं अपना चमत्कार विरह के पदों में भी दिखाया है किन्तु वह मानसिक वृत्तियों के चित्रण में सहायक ही हुआ है। विरह वर्णन में विद्यापति सूरदास और चण्डीदास की कोटि में हैं! वरन् यों कहना चाहिये कि विद्यापति के विरह-चित्रण में चण्डीदास की सी तन्मयता और विभोरता तथा सूर की सी परिपुष्ट और सरल काव्य-पटुता भी मिलती है।

राधा को अनेक रूपों में कवि ने चित्रित किया है। कहीं पर वह प्रेमोन्मत्त है तो कहीं वह प्रेमविह्वला नारी है। कहीं वह एक सामान्य नायिका के रूप में अतीत के सुखों को स्मरण ही करती है। न जाने कितने रूपों में कवि ने नायिका को चित्रित किया है। विरहिणी के हृदय में जितनी भावनायें हो सकती हैं उनको कवि ने चित्रित किया है। राधा की व्याकुलता का एक चित्र देखिये—

"सखि हे हमर दुखक नहिं ओर।
ई भर बादर माह भादर
सून मन्दिर मोर॥
झंपि घन गरजंति संतत
भुवन भरि वरसंतिया।

कंत पाहुन काम दारून
सघन खर सर हंतिया ॥
कुलिस कत सत पात मुदित
मयूर नाचत मातिया ।
मत्त दादुर डाक डाहुक
फाटि जायत छातिया ॥
तिमिर दिग भरि घोर यामिनि
अथिर बिजुरिक पाँतिया ।
विद्यापति कह कइसे गमाओब
हरि बिना दिन रातिया ॥

पद का एक-एक शब्द विरह जनित वेदना का हाहाकार है। सम्पूर्ण प्रकृति उल्लास और आनन्दातिरेक में मग्न हैं किंतु बेचारी विरहिणी अपने 'शून्य-मन्दिर' में ही विरह की ज्वाला में जल रही है। सम्पूर्ण संसार आनंद से ओतप्रोत है। आकाश में बादल गरज-गरज कर और बरस-बरस कर अपने आनंद का परिचय दे रहे हैं। मोर भी आनंद के कारण नृत्य कर रहा है। मत्त दादुर को आनंद मिल रहा है। चारों ओर सघन अन्धकार छाया हुआ है। बिजली भी बादलों के साथ क्रीड़ा कर रही है। किंतु नायिका का गृह इस उल्लास के क्षणों में सूना है। बिना अपने प्रिय के उसको यह आनंद और मस्ती से भरा हुआ वातावरण दुःख पूर्ण ही लग रहा है। 'शून्य मन्दिर मोर' की ओर देखिये। नायिका की बेबसी का चित्र सा खड़ा कर दिया है। प्रकृति के आनंद ने नायिका की निराशा को तीव्रतर कर दिया है। कितनी मार्मिकता और गम्भीरता इस पद में है।

इस प्रकार के अनेकों स्थल पदावली में भरे पड़े हैं। इसलिये यह कथन कि विद्यापति के काव्य में बाह्य चित्रण ही अधिक है नितांत असत्य है। और यह भी एक निराधार सत्य है कि कवि का भाव-पक्ष और कला-पक्ष पूर्ण रूप से परिपुष्ट और सुन्दर नहीं है। शृंगार रस के दोनों पक्ष—संयोग और वियोग का जितना सुन्दर सामंजस्य पदावली में हुआ है उतना अन्य बहुत ही कम कवियों में मिलेगा। भाषा, शब्द-चयन, वाग्वैदग्ध्य एवं सुन्दर उक्तियों से पदा-

वली की कविता अलंकृत एवं विभूषित है। कलापक्ष रस के परिपाक में सर्वत्र सहायक ही हुआ है। यदि एक दो स्थानों पर कहीं कवि में दोष भी ढूँढ़ लिया जाय तो इसका यह तात्पर्य नहीं कि सम्पूर्ण काव्य को ही भाव-प्रवणता से रहित कर दिया जाय। यह महाकवि के साथ अन्याय है।

अन्य रस—शृंगार रस के अतिरिक्त पदावली में अन्य रसों का स्थान गौण है। वैसे कवि ने तीन रसों को अपनी कविता में और अपनाया है—१ भक्ति, २-शांत और ३-वीर। किंतु इनके चित्रण में कवि ने अधिक आनंद नहीं लिया। भक्ति के पदों में शिव के और दुर्गा के पदों को लिया जा सकता है। राधा और कृष्ण विषयक भक्ति के पदों में उन्हीं को लिया जा सकता है जिनमें शृंगार की चरम सीमा नहीं, वरन् कहना चाहिये कि जिनमें अश्लीलता नहीं। इस प्रकार के कितने ही पद पदावली में मिलेंगे जिनमें भक्ति की चरम तन्मयता के दर्शन किये जा सकते हैं। वे ही पद विद्यापति को वैष्णव भक्तों की कोटि में ले जाते हैं और इनकी ख्याति को आज भी अक्षुण्ण बनाये हुये हैं। इनमें मधुर रस की ऐसी धारा बह रही है कि आज भी वह करोड़ों जन-समूह को रस से प्लावित कर देते हैं।

जीवन के अन्तिम समय में कवि ने शांत रस को अपनाया। जीवन का उछृंखल विलास और क्रीड़ाओं के लिये कवि को पश्चाताप करना पड़ा। इन पदों में सूरदास और तुलसीदास के विनय के पदों की तरह ही अपने को तुच्छ समझकर ईश्वर की महान शक्ति में विश्वास प्रकट किया है। सम्पूर्ण संसार को और अपने स्नेहियों अथवा सम्बन्धियों को क्षण-भंगुर कहा है—

"तातल सैकत बारि बुन्द सम सुत मित रमनि समाज।
तोहे बिसरि मन ताहि समर्पितु अब मोहिं सब कौन काजे

कवि का जीवन, जिसे कि वह स्थिर और चिरंतन समझकर आनंद और विलास में लिप्त रहा, निराशामय और अन्धकार मय है—

माधव हम परिनाम निरासा।
तुहु जग तारन दीन दयामय अतथ तोहरि बिसवासा।
आध जनम हम नींद गवाइनु जरा सिसुकत दिंन गेला॥

वीर रस के पद पदाली में नितांत कम हैं। वीर रस की कविताओं के नमूने

कवि की अन्य अवहट्ट भाषा की रचनाओं में मिलते हैं। विद्यापति मूलतः माधुर्य और सौंदर्य की ओर ही अधिक प्रभावित रहे। कठोरता और परुषता इनके काव्य का गुण नहीं। फिर भी एक वीर रस का नमूना देखिये—

मेरु कनक सुमेरु कम्पिय धरनि पूरिय गगन झम्पिय।
हाति तुरय पदाति पय भर कमन साहिओरे॥
तरल तर तरवारि रँगे बिज्जु दाय छटा तरंगे।
घोर घन संघात बारिस काल दरसेओ रे॥

हम देखते हैं कि कवि ने अन्य रसों में उतनी दिलचस्पी नहीं ली जितनी कि रस राज शृंगार के चित्रण में ली है। संयोग और वियोग दोनों के एक-एक कोने को कवि ने देखा और उसका ऐसा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया जो कि हिन्दी साहित्य ही में नहीं वरन् विश्व के साहित्य में खोजे नहीं मिलेगा।

अलंकार

ऊपर हम दिखा चुके हैं कि विद्यापति की कविता में हृदय-पक्ष के साथ ही कला का सामंजस्य हुआ है। यहाँ हम उनके कला-पक्ष के कुछ उदाहरण देकर उनके पांडित्य को प्रदर्शित करने का प्रयत्न करेंगे। क्योंकि विद्यापति केवल भावुक कवि ही नहीं थे वरन् एक कलाशास्त्री और रीति शास्त्र के भी ज्ञाता थे। भाषा को अलंकृत करने का भी उनका शौक़ था। इसीलिये यह आवश्यक है कि हम उनके कुछ स्थलों को चुनकर यह सिद्ध करें कि उन्होंने कला-पक्ष में भी कुछ मौलिकता दिखाई या प्राचीन परिपाटी का ही अनुगमन किया विद्यापति ने अपने काव्य में संस्कृत से बहुत कुछ लिया इसलिये यह स्वाभाविक था कि उन पर संस्कृत काव्य का प्रभाव पड़ता, किंतु क्यों कि वे एक महान कलाकार थे इसलिये प्रत्येक वस्तु में मौलिकता को प्रदर्शित करने में उनको आनन्द आता था। उन्होंने अलंकार योजना में प्राचीन उपमानों को, जो कि परम्परा सिद्ध हैं, लिया है। उनमें भी मौलिकता का समावेश कर दिया है। जैसे संस्कृत में उरोजों की उपमा कमल से दी है। किंतु विद्यापति ने कमल को बिना नाल का कहकर और अधिक सुन्दरता प्रदान करदी है।

'मेरु ऊपर दुइ कमल फुलाएल नाल बिना रुचि पाई।

इस प्रकार की मौलिकता पदावली में अनेकों स्थान पर मिलेगी। अलंकारों में कवि ने दोनों प्रकार के अलंकारों का प्रयोग किया, किंतु अर्थालङ्कारों को कवि ने अधिक अपनाया है। शब्दालंकारों का प्रयोग भी अनेकों स्थान पर हुआ है।

शब्दालंकार

अनुप्रास[१] :—

कमल मिलल दल मधुप चलल घर विहग गहल निज ठामे।
अरे रे पथिक जन थिर रे करिअ मन बड़ पाँउर दुर गामे।

यमक :—

सारंग नयन वयन पुनि सारंग, सारंग तसु समधाने।
सारंग उपर उगल दस सारंग केलि करथि मधु पाने।

अर्थालंकार

अतिशयोक्ति[२] :—

कनक कदलि पर सिंह समारल तापर मेरु समाने।

बिरोधाभास[३] :—मेरु ऊपर दुइ कमल फुलाएल नाल बिना रुचि पाई।

यथा संख्या[४] :—

जते देखल तत कहिअ न पारिअ
छओ अनुपम एक ठामा।
पिक बूझल अनुमानी।
नयन, वदन, परिमल, गति,
तनुरुचि अओ अति सुललित बानी।

व्यतिरेक[५] :—

(१) अधर बिम्ब अध आई।
भौंह भ्रमर नासापुट सुन्दर

---

१ एक या अनेक व्यंजन वर्णों की समानता अनुप्रास है।
२ उपमेय के स्थान पर उपमान के प्रयोग को अतिशयोक्ति कहते हैं।
३ विरोध सा प्रतीत हो किन्तु बात ठीक हो।
४ संख्या के अनुसार क्रमशः अन्वय 'यथा संख्य' कहलाता है।
५ उपमान से उपमेय की उत्कृष्टता का वर्णन व्यतिरेक कहलाता है।

से देखि कीर लजाई ।

(२) कबरी भय चामरि गिरि कंदर
मुख - भय चाँद अकासे
हरिन नयन-भय, स्वरभय कोकिल
गतिभय गज वनवासे
तुअ डर ई सब दुरहिं पड़ाएल
तोहें पुनि काहि डरासि

पर्यायोक्ति* मरमक वेदन मरमहिं जान
आनक दुख आन नहिं जान ।

एकावली[1] :— सरसिज बिनु सर, सर बिनु सरसिज ।
की सरसिज बिनु सूरे ।
जौवन बिनु तन, तन बिनु जौवन
की जौबन पिअ दूरे ।

दृष्टान्त[2] (१) जइओ तरनि जल सोखय सजनी
कमल न तेजय पाँक ।
जे जन रतल जाहिसों सजनी
कि करत विधि भय बाँक ।

(२) जकल हिरदय जतही रातल
से धसि ततही जाय
जइओ जतन बाँधि निरोधिअ

---

* जहाँ एक ही बात प्रकारान्तर से दुबारा कही जाय वहाँ पर्यायोक्ति अलंकार होता है ।

१ पूर्व कथित विशेष्य का उत्तरोत्तर विशेषण होना एकावली है ।

२ जहाँ उपमेय वाक्य को उपमान वाक्य से दृष्टान्त दिया जाय वहाँ दृष्टान्त अलंकार होता है ।

नीमन नीर पिराय

असंगति[1]

दिठि अपराध परान पय पीड़सि
से तुम कौन विवेक

विशेष[2]

कनक लता जनि संचर रे
महि निर अवलंब

तद्‌गुण[3]

अनुखन माधव माधव रटइत
सुन्दरि भेलि मधाई

संदेह[4]

कनकलता अरविन्दा
मँदना माँहिं उगि गेल चन्दा।
केओ कहे सैवल छपला
केओ बोले नहिं नहिं मेघ झँपला
केओ बोले भमय भमरा
केओ बोल नहिं नहिं चरअ चकोरा।

उक्ति और वाग्वैदग्ध्य—

जिस प्रकार कवि ने अलङ्कारों के द्वारा काव्य में सौंदर्य की प्रतिष्ठापना की है उसी प्रकार उक्तियों और वाग्वैदग्ध्य भी उनके काव्य को सौन्दर्य प्रदान करने में सहायक हुये हैं। विद्यापति ने अपने जीवन के अमूल्य समय को केवल राजाओं के विलासी जीवन को देखने में व्यतीत नहीं किया वरन् जीवन के सत्य को खोजने में उन्होंने अपना अधिक समय लगाया। जीवन के सत्य

---

१ कारण कहीं हो और कार्य कहीं हो।

२ आधार के बिना आधेय रहे तो विशेष अलंकार होता है।

३ जहाँ अपना गुण त्याग कर अन्य का गुण ले ले।

४ जहाँ निश्चय न होने पर उपमेय का अनेक रूपों में प्रयोग हो और फिर भी संशय समाप्त न हो।

उनकी कविता में यथास्थान झाँकते हैं और एक विचित्र प्रकार की सुन्दरता प्रदान करते हैं। ऊपर कहीं हम कह चुके है कि महाकवियों की कविता का यह एक विशेष गुण है कि उनकी कविताओं में जीवन के सत्य की परख के रूप में अनेकों उक्तियाँ पड़ी रहती हैं और यह उक्तियाँ पाठक के मस्तिष्क पर कवि के व्यक्तित्व की एक छाप छोड़ जाती हैं। महाकवि विद्यापति के काव्य में इस प्रकार की उक्तियाँ भरी पड़ी हैं। दूती और सखी के सम्भाषणों में वाग्विलास की मनोहारी पंक्तियाँ भी अनेक हैं।

विद्यापति जीवन में मनुष्य को अपनी बात पर दृढ़ रहने को उपदेश देते हैं—

'सुपुरुष वचन कबहुँ नहि् विचलय जओ विधि वामओ होई।'

इसी प्रकार उन लोगों को चेतावनी देते हैं जो कि अपनी बातों को प्रत्येक आदमी से कहते फिरते हैं।

अपन वेदन तिहि् निवेदिअ जे पर वेदन जान'

विद्यापति ने रति के प्रसंगों में भी इस प्रकार के जीवन सत्यों को देखकर अपनी बुद्धि का परिचय अनेक स्थानों पर दिया है।

'दुख सहि २ सुख पाओल ना।'

इसमें कोई सन्देह नहीं कि उपर्युक्त पंक्ति एक ऐसे प्रसंग के पश्चात आई है जिस कारण उसका अर्थ रति और विलास से ही संबंधित है। किन्तु फिर भी यह जीवन का सत्य है कि मनुष्य जीवन में परिश्रम करने के पश्चात ही आनन्द प्राप्त करता है इस प्रकार की और भी अनेक उक्तियाँ पदावली में भरी पड़ी हैं।

१—'काँच काँचन न जानय मूल'।'

२—'कुदिना हित जन अनहित रे शिक जगत सोभाव।

३—बानर कण्ठे की मोतिय हार,

ऊपर के उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि विद्यापति जीवन के भी अच्छे पारखी थे और साथ ही महान पण्डित भी। उनको संस्कृत के रीतिशास्त्र की परम्परा ने प्रभावित किया था, इसलिये उनमें अलङ्कारों का सुन्दर प्रयोग हुआ है। उत्प्रेक्षा और उपमा कवि के प्रिय अलङ्कार हैं। भाषा भी कवि के पांडित्य

को प्रदर्शित करती है। विद्यापति ने अनुप्रासों का भी अपनी भाषा में अधिक रूप से प्रयोग किया। पदावली में कवि ने लोक भाषा मैथिली को अपनाकर लोक प्रिय बनने का प्रयत्न किया। मैथिली के अतिरिक्त कवि को संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश पर भी अच्छा अधिकार था। महाकवि विद्यापति जिस प्रकार एक उच्च कोटि के भावुक कवि थे उसी प्रकार उनकी अभिव्यंजना शक्ति भी उच्च कोटि की ही थी। भावों की अभिव्यक्ति को सुन्दरता देने में कवि ने सब प्रकार के कला के उपकरणों को जुटा दिया था। अलङ्कार, भाषा छन्द और उक्तियाँ सभी कुछ इस कला-शास्त्री के पास था।

कहने का तात्पर्य यह है कि महाकवि विद्यापति की कविता में केवल अनुभूति की प्रधानता की ओर ही कवि का ध्यान नहीं गया वरन् अनुभूति के साथ २ कवि ने कला का भी सुन्दर सामंजस्य किया है। इस सामंजस्य के कारण ही उनका स्थान संसार के महाकवियों के अन्दर आता है।

विद्यापति की भक्ति
और
शृंगार भावना

भक्ति का रूप

भारतीय धर्म साधना के प्रारंभिक इतिहास से लेकर यदि आज तक के इतिहास को देखा जाय तो वह तीन मार्गों का अनुसरण करके ही विकसित होता रहा। वह हैं—१ ज्ञान, २ उपासना और ३ कर्म। स्मृति, पुराण आदि में धर्म की इन शाखाओं का इतिहास फैला हुआ है। यह कभी नहीं हुआ कि ये तीनों मार्ग समान रूप से मानव समाज को अनुप्राणित करते रहे हों। कभी ज्ञान काण्ड का ज़ोर रहा, कभी भक्ति का तो कभी कर्म काण्ड का। किंतु फिर भी यह मानना ही पड़ेगा कि भक्ति का स्रोत सर्वदा मानव हृदय को रस-सिक्त करता रहा। ज्ञान और कर्म का भी धर्म साधना के इतिहास में कई बार अभ्युदय हुआ और चरम सीमा तक भी पहुँच गया लेकिन फिर भी यह निश्चित सीमा में ही रहा। जन-जीवन को अनुप्राणित करने में ज्ञान काण्ड और कर्म काण्ड इतना सहायक नहीं हुआ जितना कि उपासना या भक्ति-मार्ग रहा। इसका कारण स्पष्ट है। ज्ञान काण्ड का विषय इतना जटिल था कि इसको केवल विद्वत् मण्डली ही अपना सकी। कर्म काण्ड भी एक बाह्य आवरण मात्र था इसलिये उसे भी एक संकुचित घेरे में ही रहना पड़ा। भक्ति का मूल स्रोत मानव हृदय है और इस हृदय में भावनाओं का भण्डार है, इस लिये भक्ति मार्ग मुख्य रूप से भावनाओं पर ही आधारित है। भावनाओं की कोई सीमा नहीं, इसके अनेक रूप हैं। जिस प्रकार भावना के अनेक रूप हैं उसी प्रकार भक्ति जो भावना से ही निस्सरित होती है, अनेक रूपा है। इसलिये अपनी भावना के अनुरूप ईश्वर के रूप की प्रतिष्ठा करके भक्त आनंद से विभोर हो सकता है। वह ईश्वर को अपनी रुचि के अनुसार माता, पिता,

सखा, सखी, बन्धु और स्वामी किसी भी रूप में मानकर अपने जीवन को सम्बल बना सकता है।

विभिन्न मत—

महाकवि विद्यापति की पदावली का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने मुख्य रूप से दो धाराओं को अपने काव्य में स्थान दिया। प्रथम जो उनके पद हैं उनमें राधा-कृष्ण विषयक भक्ति के पद हैं और दूसरे पदों में शिव अथवा दुर्गा (गौरी) के पद है। प्रथम प्रकार के पदों में कवि ने राधा-कृष्ण के सम्पूर्ण क्रिया-कलापों का चित्रण किया है और उनमें शृंगार रस की ही प्रधानता रही है। किंतु शिव और दुर्गा विषयक पदों में भक्ति और शांत रस ही मिलता है। राधा-कृष्ण विषयक पदों में युवक और युवतियों के यौवन काल सम्बन्धी सम्पूर्ण अनुभवों और क्रिया-कलापों का संग्रह कर दिया है। उपर्युक्त दो बातों के ऊपर विद्वानों में अनेक मतभेद उत्पन्न हुये हैं। एक वर्ग उनको शृंगारी कवि ही मानता है और भक्त कवियों की कोटि में उनका कोई स्थान नहीं रखता जबकि दूसरा वर्ग उनको भक्त सिद्ध करने में अपने अनेकों तर्क प्रस्तुत करता है।

विद्यापति को भक्त सिद्ध करने वालों में भी विचार साम्य नहीं। कुछ विद्वान् उनको वैष्णव मानते हैं तो कुछ पंचदेवोपासक स्मार्त मानते हैं। विद्वानों का एक और वर्ग इनको शाक्त सिद्ध करता है तो दूसरा वर्ग इनको शैव कहता है। विद्वानों के इस विवाद के अतिरिक्त कुछ विद्वान् इस प्रकार के भी हैं जो कि विद्यापति को एकेश्वरवादी सिद्ध करने में अपने तर्कों को प्रस्तुत करते हैं। विद्यापति वैष्णव, शाक्त, शैव, पंचदेवोपासक या एकेश्वर-वादी थे इस विवाद का निर्णय करने के लिये विभिन्न विद्वानों के तर्कों को देखना आवश्यक है।

वैष्णव मानने वाला वर्ग—

महाकवि विद्यापति के काव्य का महत्व मुख्य रूप से वैष्णव भक्तोंके कारण ही बढ़ा। मिथिला के इस धूलि-धूसरित रत्न का उपयोग सर्व प्रथम बंगाल के वैष्णव भक्तों के द्वारा ही हुआ। महाप्रभु चैतन्य ने इनके पदों को गागाकर कीर्तन के लिये उपयुक्त समझा। बंगाल में इनके पदों का इतना प्रचार हुआ

कि वहाँ के वैष्णव भक्तों ने ब्रजमण्डल तक इनकी गूँज पहुँचादी।

चैतन्यदेव के मत के दो रूप थे। एक तो गोस्वामी और दूसरा सहजिया। 'गोस्वामी' मत के अनुयायी वेद को मानते थे किंतु वेद पाठ नहीं करते थे। सहजिया सम्प्रदाय के लोग शरीर में ही सम्पूर्ण विश्व ब्रह्मांड को मानते थे। उनका मत था कि शरीर की सेवा करना ही परमार्थ की प्राप्ति है। स्त्री प्रेम को ही वह ईश्वर प्रेम के रूप में देखते थे। उनके सम्प्रदाय में विद्यापति सातवें रसिक भक्तों में हैं। प्रथम भक्त विल्वमंगल जिस प्रकार चिंतामणि नामक वेश्या के प्रेम में विभोर होकर कृष्ण प्रेम में लीन हो गये उसी प्रकार विद्यापति प्रथम रानी लखिमादेवी में अनुरक्त थे और पीछे से राधा-कृष्ण के उपासक हो गये। (महाकवि विद्यापति, पृष्ठ १५६ ले० पं० शिवनन्दन ठाकुर)।

चैतन्य महाप्रभु विद्यापति के पदों को गाते-गाते मूर्छित हो जाते थे और आज भी उनकी शिष्य परम्परा में विद्यापति के पदों को कीर्तन के अवसर पर बड़ी तन्मयता के साथ गाया जाता है। डा० ग्रियर्सन का कथन है कि विद्यापति के पद वैष्णव लोगों के भजनों के अधिक सनीय हैं। (They are nearly all Vaishnava hymns or Bhajans)

बाबू ब्रजनंदन सहाय के मत से भी विद्यापति वैष्णव कवियों के अन्तर्गत ही आते हैं।

बाबू श्यामसुन्दरदास अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में कहते हैं, "परंतु विद्यापति पर माध्व सम्प्रदाय का ही ऋण नहीं है, उन्होंने विष्णुस्वामी तथा निम्बार्काचार्य के मतों को भी ग्रहण किया था। न तो भागवत पुराण में और न माध्वमत में ही राधा का उल्लेख किया गया है। कृष्ण के साथ बिहार करने वाली गोपियों में राधा भी हो सकती है, पर कृष्ण की चिर प्रेयसि के रूप में वे नहीं देख पड़तीं। उन्हें यह रूप विष्णु स्वामी और निम्बार्क सम्प्रदाय में ही पहले पहल प्राप्त हुआ था। विष्णुस्वामी मध्वाचार्य के समान ही द्वैत वादी थे। भक्तमाल के अनुसार वे प्रसिद्ध मराठा भक्त ज्ञानेश्वर के गुरु और शिक्षक थे। राधा-कृष्ण की सम्मिलित उपासना इनकी भक्ति का नियम था। विष्णु स्वामी के समकालीन ही तैलंग ब्राह्मण निम्बार्क का आविर्भाव हुआ, जिन्होंने बृन्दाबन में निवास कर गोपालकृष्ण की भक्ति की थी। निम्बार्क ने विष्णु-

स्वामी से भी अधिक दृढ़ता के साथ राधा की प्रतिष्ठा की और उन्हें अपने प्रियतम कृष्ण के साथ गोलोक में चिर निवास करने वाली कहा। राधा का यही चरम उत्कर्ष है। विद्यापति ने राधा और कृष्ण की प्रेम लीला का जो विषद् वर्णन किया है उस पर विष्णु स्वामी और निम्बार्क मतों का प्रभाव प्रत्यक्ष है।"

प्रो० बिमन बिहारी मजूमदार का कथन है कि विद्यापति वैष्णव थे। आपने अपने मत की पुष्टि में तर्क दिया है कि इसी कारण उन्होंने भागवत पुराण नामक पुस्तक लिखी।

श्री नरेन्द्रनाथदास अपनी पुस्तक 'विद्यापति काव्यालोक' में लिखते हैं, "हमारी यह धारणा है कि विद्यापति युगल मूर्ति के एक उत्कृष्ट और स्मार्त उपासक थे, किसी सम्प्रदाय विशेष के नहीं थे। वे द्वैत सिद्धांत के अनुयायी थे।" अभिनव जयदेव की उपाधि भी यह प्रमाणित करती है कि उनमें जयदेव की कुछ विशेषतायें अवश्य थीं। इसलिये वे राधा-कृष्ण के उपासक रहे हों तो आश्चर्य नहीं।

शैव मतावलम्बी थे—

बाबू नगेन्द्रनाथ गुप्त, बाबू रामवृक्ष बेनीपुरी तथा पंडित रामचन्द्र शुक्ल विद्यापति को शैव मानते हैं। श्री रामवृक्ष बेनीपुरी विद्यापति की पदावली की भूमिका में लिखते हैं कि विद्यापति शिव के उपासक थे। इस विषय में उन्होंने अपने कुछ तर्क भी दिये हैं।

१—विद्यापति के पिता गणपति ठाकुर शैव थे और 'कपिलेश्वर' नामक शिव की उपासना के बाद विद्यापति का जन्म हुआ था।

२—किंवदन्ती है कि विद्यापति की भक्ति से प्रसन्न होकर शिव उदना या उगना नाम से विद्यापति के घर नौकर थे। भेद खुल जाने पर वह अदृश्य हो गये और उनके वियोग से व्यथित होकर विद्यापति ने अनेक पदों की रचना की।

३—विद्यापति ने स्वयं भी कहा है—

आन चान गन हरि कमलासन सम परिहरि हम देवा।
भक्तवछल प्रभु बान महेसर जानि कयल तुअ सेवा॥

ऊपर की पंक्तियों में 'बान महेसर' बाणेश्वर शिव के लिये आया है जो विद्यापति के गाँव के समीप ही स्थित है। विद्यापति उन्हीं महादेव की पूजा करते थे।

पण्डित रामचंद्र शुक्ल हिंदी साहित्य के इतिहास में विद्यापति के विषय में इस प्रकार कहते हैं—

"विद्यापति शैव थे। उन्होंने इन पदों की रचना शृंगार काव्य की दृष्टि से की है, भक्त के रूप में नहीं। विद्यापति को कृष्ण-भक्तों की परम्परा में नहीं समझना चाहिये।"

पं० शिवनंदन ठाकुर अपनी पुस्तक 'महाकवि विद्यापति' में विद्यापति को शैव ही मानते हैं। उन्होंने इस मत की पुष्टि में निम्नलिखित प्रमाण दिये हैं-

१—विद्यापति के पूर्वज शैव थे। विद्यापति का जन्म भी 'कपिलेश्वर' नामक शिव की उपासना करने पर ही हुआ था।

२—इनके आश्रयदाता भी शैव ही थे।

(अ) 'शिवभक्त परायण महाराजाधिराज श्रीमद्वीरसिंह'

(सेतु दर्पणी)

(ब) 'भवानी भवभक्ति भावन परायण रूपनारायण महाराजाधिराज श्री शिवसिंहदेव पादाः'

(ताम्र शासनपत्र)

३—विद्यापति की चिता पर शिव मन्दिर है जो किसी वैष्णव की चिता पर नहीं हो सकता था।

४—विद्यापति ने 'पुरुष परीक्षा' नामक अपनी पुस्तक में धर्म का धार्मिक विवेचन किया है, किंतु जब उपासना की बारी आई तब संसार से विरक्त रत्नाङ्गद राजा से शिव की उपासना की प्रतिज्ञा कराई है।

५—विद्यापति ने महेशबानी की रचना की। शिवरात्रि आदि के अवसर पर ये पद गाये जाते हैं।

६—'शैवसर्वस्वसार,' 'गंगा वाक्यावली' और शिव की अर्द्धाङ्गिनी दुर्गा के विषय में उन्होंने दुर्गा भक्ति तरंगिनी लिखी।

पण्डित शिवनन्दनजी के मतानुसार विद्यापति एक सहिष्णु हिंदू थे। इस-

लिये उन्होंने विष्णु की भी बन्दना की है किंतु जिस प्रकार शिव के विषय में पुस्तकें लिखीं उस प्रकार विष्णु के विषय में एक भी पुस्तक नहीं लिखी। शिवनन्दनजी ने विद्यापति का एक पद इस मत की पुष्टि के लिये उद्धत किया है—

'जय जय शंकर, जय त्रिपुरारि।
जय अध पुरुष, जयति अधनारि ॥'

पं० शिवनन्दन ठाकुर ने इन प्रमाणों के आधार पर विद्यापति को गौरी-शंकर का उपासक माना है। एक स्थान पर वह यह भी कहते हैं, "विद्यापति के समय में मिथिला में तांत्रिक उपासना की प्रबलता थी। विद्यापति के ऊपर इसका प्रभाव अवश्य पड़ा होगा। सम्भव है कि जब तक विद्यापति अपनी उपासना का रूप स्थिर नहीं कर सके थे तब तक शक्ति के उपासक थे और ब्रह्मा, विष्णु, महेश से भी शक्ति की उपासना करवाते थे। उस समय भारतवर्ष में विशिष्ठाद्वैत मत का भी पूर्ण प्रचार हो चुका था। उसके अनुसार विष्णु-लक्ष्मी, राधा-कृष्ण आदि युगल मूर्ति की उपासना की धारा बह चली थी। विद्यापति ने जब अपनी उपासना का रूप स्थिर किया और शिवजी को अपना इष्टदेव बनाया तब शाक्त और विशिष्ठाद्वैत मतों से प्रभावान्वित होने के कारण केवल शिवजी को अपना इष्टदेव नहीं रखकर युगल मूर्ति 'गौरी शंकर' को अपना इष्टदेव बनाया।" विद्यापति ने स्पष्ट शब्दों में कहा है—

'लोढ़ब कुसुम तोड़ब बेल पात।
पूजब सदाशिव गौरिक सात ॥'

पंचदेवोपासक—

महामहोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री ने विद्यापति की पुस्तक कीर्तिलता का सम्पादन सर्व प्रथम किया। उसकी भूमिका में शास्त्रीजी ने विद्यापति को पंच-देवोपासक कहा। उनका कथन था कि विद्यापति स्मार्त थे और स्मृति के अनु-सार सूर्य, गणपति, अग्नि (विष्णु), दुर्गा और शिव यह पाँचों देवताओं की उपासना को आवश्यक कहा है। विद्यापति ने इन सम्पूर्ण देवताओं को समय-समय पर अपनी रचनाओं में स्मरण किया है। इससे स्पष्ट है कि वे अवश्य पंच देवोपासक ही थे।

एकेश्वरवादी—

प्रोफेसर जनार्दन मिश्र ने 'विद्यापति' नामक एक पुस्तक लिखी। उन्होंने विद्यापति के धर्म के विषय में अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये हैं— "विद्यापति संस्कृत के प्रगाढ़ विद्वान थे। उनकी वृत्ति पठन-पाठन थी। शास्त्र पुराणादि की चर्चा का प्रसंग सर्वदा उपस्थित रहता था। इसलिये आर्य-सिद्धान्तों के इन गूढ़ रहस्यों से ये पूर्णतः परिचित थे। यही कारण है कि हठ योग ने उनके हृदय में स्थान नहीं पाया था। हिंदू देवी देवताओं के यथार्थ रूप से परिचित होने के कारण उनके किसी विशेष रूप की ओर उनका भेद-भाव या पक्षपात नहीं था। समान श्रद्धा से वे सबकी उपासना करते थे। शंकर और विष्णु के अभिन्न रूप का उन्होंने इस प्रकार वर्णन किया है—

भल हरि भल हर भल तुअ कला।
खन पित वसन खनहि बघछला॥

इसी प्रकार मातृ-रूप में ब्रह्म का वर्णन करते हुये कवि ने लिखा है—

बिदिता देवी बिदिता हो अविरल केस सोहन्ती।
एकानेक सहस को धारिनि अरि रंगा पुरनन्ती॥
कज्जल रूप तुअ काली कहिअउ उज्जल रूप तुअ बानी
रवि मण्डल परचंडा कहिये, गंगा कहिये पानी॥
ब्रह्मा घर ब्रह्मानी कहिये, हर घर कहिये गौरी।
नारायण घर कमला कहिये के जान उतपति तोरी

इन अवतरणों से विद्यापति के धर्म-भाव का स्पष्टीकरण हो जाता है। ....इसलिये विशुद्ध वैदिकधर्म का सच्चा स्वरूप यहाँ सर्वदा वर्तमान रहा।.................इसलिये प्राचीन काल से ही धर्म का एक निश्चित स्वरूप अवाधगति से अपना कार्य कर रहा है। इसमें सम्प्रदाय या फिरका कभी पैदा नहीं हुआ।.................यही कारण है कि मिथिला समाज में देव-देवियों के भेद से किसी प्रकार की कट्टरता का प्रचार नहीं हुआ। और इस समय भी उनकी यही मनोवृत्ति है।"

उपर्युक्त उद्धरणों से जनार्दन मिश्र ने यह सिद्ध किया है कि साकार के अनेक रूप होने पर भी सनातन-हिन्दू धर्म एकेश्वरवादी है, तथा निराकार और

साकार को अभिन्न समझकर दोनों की समान श्रद्धा से उपासना करता है।
शाक्तमतानुयायी—

१९३६ के जनवरी मास की 'माधुरी' में पं० श्रीभागवत शुक्ल 'पाथोद' ने एक लेख लिखा जिसका शीर्षक 'विद्यापति का निजी मत या सम्प्रदाय' था। उसमें शुक्लजी ने महाकवि विद्यापति को शाक्त प्रमाणित किया है। अपने मत की पुष्टि में विद्वान लेखक ने निम्नलिखित प्रमाण दिये—

१—'पुरुष परीक्षा' के मंगलाचरण में विद्यापति ने शक्ति को शिव की पूज्या कहा है। विष्णु की ध्येया और ब्रह्मा की प्रणम्या बतलाया है—

ब्रह्मापि यान्नौति नुतः सुराणां यामर्चितोऽप्यर्चयतीन्दुमौलिः।
यो ध्यायति ध्यानगतोऽपि विष्णुस्तामादिशक्तिं शिरसा प्रपद्ये

(पुरुष परीक्षा)

२—विद्यापति के पदों में "हरि-विरंचि-महेश-शेखर-चुम्ब्यमान पदे" और "जगति पालन-जननमारण रूप-कार्य-सहस्र कारण" शक्ति का विशेषण, "हरि-हर ब्रह्मा पुछइत भमे। एकओ न जानतुअ"—आदि शक्ति के वर्णन विद्यापति के शाक्त होने के लिये पर्याप्त हैं।

३—मिथिला के विद्वान इस समय भी शाक्त होते हैं और उस समय भी शाक्त होते थे। इसलिये विद्यापति का शाक्त होना स्वाभाविक है।

श्री भागवत शुक्ल का कथन है कि शाक्त होते हुए भी वह शिव के भक्त थे। 'भल हरि भल हर भल तुअ कला' आदि सिद्ध करते हैं कि विद्यापति एक सहिष्णु भक्त थे। शिव के साथ विष्णु को भी उन्होंने श्रद्धा के साथ ही देखा

शृङ्गारी कवि—

डा० रामकुमार वर्मा विद्यापति को शृङ्गारी कवि मानते हैं—"विद्यापति के इस बाह्य संसार में भगवत् भजन कहाँ, इस वयः सन्धि में ईश्वर से सन्धि कहाँ, सद्यस्नाता में ईश्वर से नाता कहाँ, अभिसार में भक्ति का सार कहाँ?" उनकी कविता विलास की सामग्री है उपासना की साधना नहीं, उससे हृदय मतवाला हो सकता है शान्त नहीं। हम इन भावों में आत्म विस्मृत हो सकते हैं इसमें जागृति नहीं आ सकती। विद्यापति का भक्त हृदय उनकी वासनामयी

भाव कुंज झटिकाओं में खो गया है। वे सौंदर्य संसार के सौंदर्य में इतने विभोर हो गये हैं कि उनकी दृष्टि और किसी तरफ़ जाती ही नहीं।

वर्माजी की तरह ही बाबूराम सक्सेना भी कीर्तिलता की भूमिका में लिखते हैं—

"विद्यापति के पदों के अध्ययन से पता लगता है कि वह बड़े शृङ्गारी कवि थे…………… । इन पदों को राधा-कृष्ण की भक्ति पर आरोपित करना पद-पदार्थ के प्रति अन्याय है।"

विभिन्न मतों का खंडन एवं मत प्रतिपादन—

विद्वानों के विभिन्न मत विद्यापति की भक्ति के विषय में उद्धृत किये गये। किसी ने उनको पंच देवोपासक कहा, किसी ने वैष्णव, और किसी ने शैव तो किसी ने शाक्त। कुछ लोगों ने उनकी कविता को शृंगार भावना से ही ओत प्रोत देखा। भक्ति का कोई रूप उनकी कविता में दृष्टिगोचर नहीं हुआ। अब प्रश्न यह उठता है कि इस विवाद को किस प्रकार मिटाया जाय। जहाँ तक शैव, शाक्त और पंचदेवोपासक होने का कथन है उसमें कोई विशेष विरोध नहीं। इसलिये हमको चाहिये कि हम विद्यापति के समय की उन धार्मिक परिस्थितियों पर एक विहंगम दृष्टि डालें जिनमें कि वे उत्पन्न हुये थे। विद्यापति के जीवनकाल में और उससे पूर्व वैष्णवधर्म बिहार प्रांत में पहुँचा था या नहीं? क्या विद्यापति के राधा-कृष्ण भक्ति सम्बन्धी पद दक्षिण के वैष्णव सम्प्रदाय के प्रभाव से प्रभावित होकर लिखे गये? इसके उत्तर से प्रश्न स्पष्ट हो जायेंगे।

विद्यापति के समय में बिहार और बंगाल अधिकतर शाक्त और शैव था। विद्यापति के पूर्वज भी अधिकतर शैव ही थे। और स्वयं विद्यापति ने भी जो संस्कृत में ग्रन्थ लिखे उनमें उन्होंने शिव और दुर्गा को ही अधिक लिया। विष्णु और कृष्ण विषयक उनका कोई ग्रंथ नहीं मिलता। हाँ इतना अवश्य है कि विष्णु और शिव की स्तुति उन्होंने अवश्य कई स्थानों पर की है और विष्णु और शिव की एकता को भी स्वीकार किया है। उन्होंने उनको एक ही माना है इसका प्रमुख कारण यह है कि उनको महाभारत और पुराणों का सिद्धान्त मान्य था कि "विष्णु और शिव एक हैं"। इस एकता की स्थापना के लिये उन्होंने अपने संस्कृत ग्रंथों में लिखा भी है। विभागसार और गंगा-

वाक्यावली में उन्होंने अपने इस मत की पुष्टि इस प्रकार की है—

'स्वस्त्यस्तु वस्तुहिनरश्मिभृतः प्रसादादेकं वपुः स्थितवतो हरिणा समेत्य ।'

('गंगावाक्यावली' और 'विष्णुपूजा-कल्पलता')

इस श्लोक में शिव और विष्णु का एक ही रूप बतलाया है। इसी प्रकार 'विभागसार' में शिव और विष्णु गंगा के लिये झगड़ा करते हैं और अन्त में ब्रह्माजी के हँसने पर इनको आत्मज्ञान होता है और फिर विवाद का अन्त हो जाता है। पदावली में भी एक पद में दोनों के नाम इसी एकत्व की भावना की पुष्टि करने के लिये ही आये हैं।

'भल हरि भल हर भल तुअ कला।'

इससे यह स्पष्ट है कि विद्यापति शिव और विष्णु को एक ही मानते थे।

यह सच है कि विद्यापति के समय में दक्षिण के आचार्य निम्बार्क और विष्णु स्वामी द्वारा प्रचलित वैष्णव सम्प्रदाय उत्तर भारत तक फैल चुका था। ब्रजमण्डल तक राधा और कृष्ण की भक्ति को फैलाने का मूल श्रेय इन्हीं आचार्यों को है। किंतु जब हम विद्यापति के विषय में सोचते हैं तो हमको यह ध्यान में रखना चाहिये कि विद्यापति पर जयदेव का प्रभाव था विष्णु स्वामी और निम्बार्क का नहीं। डा० श्यामसुन्दरदास जी का यह कथन कि विद्यापति पर निम्बार्क और विष्णु स्वामी का प्रभाव था, कुछ ठीक प्रतीत नहीं होता। विष्णु स्वामी और निम्बार्क का प्रभाव उस समय तक उत्तर भारत में केवल ब्रजमण्डल और उसके समीपवर्त्ती स्थानों तक ही फैला था।

वैष्णवों के प्रथम आचार्य रामानुज की मृत्यु सन् ११३७ ई० में हुई थी और निम्बार्क और विष्णु स्वामी १३ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में थे। किंतु जयदेव का जन्मकाल ११२० के लगभग था। इस प्रकार १०० वर्ष का अन्तर पड़ता है। जयदेव का जन्मकाल १२ वीं शताब्दी का प्रारम्भ है और निम्बार्क और विष्णु स्वामी का जन्मकाल १३ वीं शताब्दी के आरम्भ में। इससे स्पष्ट है कि जयदेव ने राधा-कृष्ण विषयक जो कविता लिखीं वह वैष्णव आचार्यों के प्रभाव से नहीं वरन् किसी अन्य प्रेरणा के फलस्वरूप ही लिखीं। 'निम्बार्क और विष्णु स्वामी द्वारा प्रचलित और बल्लभाचार्य द्वारा विकसित हुई यह राधा-कृष्ण की उपासना बंगाल और विहार में १५ वीं शताब्दी में आई।

जयदेव की राधा और कृष्ण की लीलाओं का स्रोत अवश्य ही कोई दूसरा ही होगा। और क्योंकि विद्यापति ने पूर्ण रूप से जयदेव का ही अनुकरण किया इसलिये यह कभी संभव नहीं कि उन पर दक्षिण के वैष्णव सम्प्रदाय का प्रभाव पड़ा होगा।

इसमें कोई संदेह नहीं कि बल्लभ की उपासना में लीलाओं को अधिक महत्व दिया गया था और इसी कारण शृंगार रस का प्रभाव भी इन पर था। सूरदास और अन्य वैष्णव कवियों की कविता में शृंगार रस की ही प्रधानता है। किंतु उन कविताओं में इतनी स्थूलता नहीं जितनी विद्यापति की कविता में है। विद्यापति की कविताओं में कुछ ही पदों में ही राधा का नाम है। कृष्ण का नाम भी अधिक नहीं। उनके प्रत्येक पद में राजा शिवसिंह और लखिमादेवी का ही नाम अधिक आया है। इससे भी स्पष्ट है कि विद्यापति की पदावली के राधा-कृष्ण विषयक पद वैष्णव भक्ति की भावना से ओत-प्रोत नहीं वरन् शृंगारिक भावना से लिखे हुये ही पद अधिक हैं। हाँ कुछ पदों में अवश्य भक्ति की तन्मयता है किंतु ऐसे पद कतिपय ही हैं।

चैतन्य महाप्रभु ने इन पदों को अवश्य अपनाया और उन्होंने अपने कीर्त्तन में इन पदों को प्रमुख स्थान दिया। किंतु इससे यह कहना कि विद्यापति ने कीर्तन के उद्देश्य से ही इन पदों की रचना की मान्य नहीं। इसमें तो संदेह ही नहीं कि विद्यापति के पदों में भाव प्रवणता और माधुर्य उच्चकोटि का है। चैतन्य महाप्रभु भी एक भावुक भक्त थे। यह स्वाभाविक था कि एक भावुक इतनी उच्चकोटि की कविताओं को पढ़कर अवश्य रस-मग्न होता। इसके अतिरिक्त वैष्णव धर्म में विरह को प्रमुख स्थान है। विद्यापति के विरह के पद इस उद्देश्य से अत्यन्त सफल थे इसीलिये चैतन्य महाप्रभु ने उनको अपनालिया और इसके पश्चात् तो फिर यह वैष्णव लोगों की सम्पति ही हो गये। इसी भ्रम के कारण लोगों ने जयदेव और विद्यापति दोनों को ही दक्षिण के वैष्णव धर्म का अनुयायी सिद्ध कर दिया। उन्होंने यदि वैष्णव धर्म के इतिहास और जयदेव के जन्मकाल पर विचार कर लिया होता तो इस प्रकार का भ्रम कभी कभी नहीं होता।

विद्यापति ने जयदेव के अनुकरण पर ही अपनी पदावली की रचना की

और उन्हीं के अनुकरण पर राधा-कृष्ण की लीलाओं को अपने काव्य में स्थान दिया। अब प्रश्न यह उठता है कि जब विद्यापति ने जयदेव के अनुकरण पर कविता की और राधा कृष्ण की लीला विषयक पद भी लिखे तो उनका इन सब पदों के लिखने का उद्देश्य क्या था ?

कृष्ण का आविर्भाव लगभग चौथी शताब्दी के पहले ही हो चुका था। पाणिनि ने अपने 'व्याकरण' में वासुदेव और अर्जुन दोनों को 'देवयुग्म' कहा है। प्रसिद्ध यात्री मेगस्थनीज़ ने भी कृष्ण की पूजा के विषय में लिखा है। यह समय ईसा के ३०० वर्ष पूर्व का है। और यह कृष्ण विष्णु या वासुदेव का पर्यायवाची है।

सर भण्डारकर की अनुमति में कृष्ण-वासुदेव का पर्यायवाची नहीं वरन् 'सात्वत' नाम की एक क्षत्रिय जाति (जिसे वृष्णि भी कहते हैं) के महापुरुष वासुदेव को ही आगे चलकर कृष्ण का रूप दे दिया गया। उन्होंने ईश्वर के एकत्व भाव का प्रचार किया था। उनके कुल के लोगों ने उनको ही साकार रूप से ब्रह्म मान लिया। भगवद्गीता इसी कुल का ग्रंथ है। राधा का नाम भी कृष्ण के साथ बहुत प्राचीन काल से चल रहा था। राधा का सर्व प्रथम उल्लेख हमको गाथा सप्तशती में मिलता है जो कि पहली शताब्दी की रचना है। इसके अतिरिक्त भी कई स्थानों पर राधा का जिक्र और भी आया है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है, "लीला के पद कब लिखे जाने लगे—यह भी कुछ निश्चय के साथ नहीं कहा जा सकता ; किंतु दशवीं, ग्यारहवीं शताब्दी में मात्रिक छन्दों में श्री कृष्ण लीला के गाने की प्रथा चल पड़ी थी। इसमें कोई सन्देह नहीं। जयदेव का गीत-गोविंद इसी प्रकार के मात्रिक छन्दों के पद में लिखा गया था। पण्डितों का अनुमान है कि लोक भाषा में इस प्रकार के गान लिखे और गाये जाते होंगे। जयदेव ने उन्हीं के अनुकरण पर यह गान लिखे थे।" (हिन्दी साहित्य का आदि काल ले० हज़ारीप्रसाद द्विवेदी)

प्रथम शताब्दी की 'गाथा सप्तशती' में भी राधा और कृष्ण का शृंगारिक रूप मिलता है।

पुष्पदन्त नामक कवि की रचनाओं में भी कृष्ण का गोपियों के साथ वर्णन है।

'दुलई धूली धूसिरेण नर मुक्क सरेण तिणा मुरारिणा।
कीला रस वसेण गोवालय गोवी हियय हारिणा ॥

पुष्पदन्त ने पूतना लीला, गोवर्धन धारण, कालिअदमन आदि लीलाओं का भी वर्णन किया है। पुष्पदन्त का समय ६५२ से ६७२ ई० है। यह लगभग वही समय है जब भागवत अपने वर्तमान रूप को ग्रहण कर रही थी। इससे स्पष्ट है कि कृष्ण-कथा की कितनी ही परम्परायें एक ही समय में समाज में प्रचलित थी।

आनन्दवर्द्धन के ध्वन्यालोक में भी राधा की चर्चा है। इसलिये यह कहना नितान्त निराधार है कि जयदेव और विद्यापति दक्षिण से चली वैष्णव धारा के ही अनुयायी थे।

इसके अतिरिक्त वैष्णव सम्प्रदाय के राधा कृष्ण और विद्यापति के राधा कृष्ण में एक सबसे बड़ा अन्तर यह है कि वैष्णव सम्प्रदाय में कृष्ण और राधा के बालरूप की बहुत प्रशंसा की है किन्तु विद्यापति ने कृष्ण और राधा को पूर्ण युवक युवती के रूप में ही विशेष रूप से चित्रित किया है। केवल शृंगारिक भावना के कारण उन्होंने राधा को उस समय से लिया है जिस समय शैशवावस्था और यौवनावस्था की सन्धि होती है। यह किसी धार्मिक भावना के कारण उन्होंने नहीं किया वरन् अपनी शृंगारिक भावना की तृप्ति के लिए ही किया।

महामहोपाध्याय हरिप्रसाद शास्त्री का यह मत कि विद्यापति पंच देवोपासक थे नितांत अमान्य है। महाकवि विद्यापति पुराणों के विद्वान थे और कितने ही स्मृति ग्रन्थों की भी रचना की थी। पुराणों में उल्लेख है कि पंचदेवों की (अर्थात् सूर्य, गणेश, दुर्गा, अग्नि और शिव) आराधना करने के पश्चात ही अपने इष्ट देवता का ध्यान करने से मनुष्य को फल की प्राप्ति होती है।

"गणेशञ्च दिनेशञ्च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाय।
सम्पूज्य देवषटकञ्च सोऽधिकारी च पूजने ॥

(ब्रह्म वैवर्त पुराण)

मिथिला में यह प्रचलन अधिक मान्य था। वहाँ पर उपासना के प्रथम पंच देवताओं की उपासना आवश्यक समझी जाती थी। इसलिये यदि विद्यापति ने इन देवताओं की वन्दना एक दो स्थान पर करदी है तो इसका तात्पर्य यह लगाना ठीक नहीं प्रतीत होता कि वे पंचदेवोपासक थे।

वास्तव में विद्यापति स्मृतियों और पुराणों के ज्ञाता थे। उन्होंने इन विषयों को लेकर कुछ पुस्तकें भी लिखीं। पुराणों में अनेकों देवताओं का उल्लेख है और वह सब ब्रह्म से ही उत्पन्न हुये हैं इस मत की पुष्टि की गई है। जनार्दन मिश्र का यह कथन कि विद्यापति एकेश्वरवादी हैं ठीक नहीं। क्योंकि विद्यापति किस एक ईश्वर को मानते थे ऐसा उनकी रचनाओं के आधार पर कहा नहीं जा सकता। यदि वह विष्णु को मानते थे तो शिव को भी, यदि दुर्गा को मानते थे तो गणेश और अन्य देवताओं को भी। यह कहना अत्यंत कठिन है कि उन्होंने एक ईश्वर की आराधना की। उनकी पदावली और अन्य रचनाओं के देखने से भी स्पष्ट है कि विद्यापति ने राधा कृष्ण विषयक पदों के अतिरिक्त यदि रचना की तो शिव, शक्ति और गंगा को लेकर ही की। किन्तु गंगा के भक्त भी शिव के भक्तों के अंतर्गत ही आ जाते हैं। अब रह जाते हैं दो मत—(१) शिव भक्त कहने वाला और (२) शक्ति का उपासक कहने वाला। इसी प्रश्न के साथ ही डा० रामकुमार वर्मा के इस कथन का भी उत्तर है कि विद्यापति में श्रृंगारिकता की प्रधानता थी भक्ति की नहीं।

स्मार्त शाक्त---मिथिला में शैव और शाक्तों का प्राधान्य विद्यापति के समय में भी था और आज भी है। ऊपर हम यह भी कह आये हैं कि विद्यापति के पूर्वज और आश्रयदाता भी शैव और शाक्त ही थे। इससे स्पष्ट है कि शैव और शाक्तों का कोई एक मूल स्रोत अवश्य है। विद्यापति के पूर्ववर्तीकाल की धार्मिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को यदि देखा जाय तो यह तथ्य स्पष्ट हो जायगा।

विद्यापति के समय में तान्त्रिक परम्पराओं के अवशेष के रूप में वज्रयान और सहजयान शाखाओं की मान्यतायें चल रहीं थीं। इन में सिद्धियों का

प्राधान्य था। तान्त्रिक परम्पराओं का सम्बन्ध यक्षों से था जो कि सामाजिक बन्धनों से मुक्त चिरविलासमय समाज था। सिद्ध और नाथों में शक्ति का जो अधिक महत्व था वह भी उसी प्राचीन यक्षसमाज की दैन थी। तांत्रिक परम्परा हिमालय के प्रदेशों में थी। बाममार्ग भी तन्त्रों का ही रूप था। यक्षों के समाज में स्त्री की प्रधानता थी। स्त्रियाँ मुक्त रूप से रहती थीं। उनके ऊपर कोई बन्धन नहीं था। स्त्री को ही सृजन का मूल कारण समझा जाता था। योनि पूजा का महत्व था। पुरुष को सब काम करने पड़ते थे। समाज में उसका स्थान वही था जो वर्तमान समाज में स्त्रियों का है। यह मातृसत्तात्मक समाज था।

जब मनुष्य को पता चला कि संसार के सृजन कार्य को योनि ही नहीं करती वरन् पुरुष का भी कुछ कार्य है तो वह अपने अधिकार के लिये जागरूक हुआ और उस समय से पितृसत्ता का महत्व भी बढ़ा।

पहले योनि को ही संसार की आदि शक्ति मानकर पूजा होती थी किन्तु जब पुरुष ने अपनी सत्ता का पता लगा लिया उस समय से लिंग पूजा का भी प्रारंभ हुआ। (डा० रांगेय राघव 'संगम और संघर्ष के आधार पर) अब योनि के साथ लिंग की पूजा भी प्रारंभ हुई। शिव की जो मूर्ति एक त्रिकोण से आकार में स्थित हुई देखी जाती है वह इस बात का प्रमाण है। इस प्रकार शक्ति और शिव का समन्वय हुआ। यह मत वाम मार्ग के नाम से प्रचलित था। उत्तर और दक्षिण भारत के एक बिस्तृत भूखण्ड पर इस सम्प्रदाय का अधिकार था। इसी वाम मार्ग की एक शाखा कौलधर्म के नाम से प्रचलित हुई। स्त्री और पुरुष के शारीरिक विलास के द्वारा ही नाना सिद्धियों की प्राप्ति करना इन सम्प्रदायों का मूल उद्देश्य था। वज्रयान की इन सिद्धियों ने समाज में गर्हित और कुत्सित संबंधों को जन्म दिया। समाज की नैतिकता का कोई प्रश्न ही नहीं था। आगे चलकर सिद्धि और नाथों ने इसी सामाजिक विश्रंखलता के विरुद्ध अपनी आवाज़ बुलन्द की। उन्होंने योनिपूजा और अन्य इसी प्रकार की सिद्धियों के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाई।

जनता के अन्दर एक विलासिता और कामुकता शताब्दियों तक के लिये रह गई। जिसकी प्रतिक्रिया हठयोग और नाथ पन्थ में आकर हुई।

शाक्त सम्प्रदाय ने भारत के सम्पूर्ण संप्रदायों को प्रभावित किया। सम्पूर्ण सम्प्रदायों में शक्ति और शिव को स्थान मिला। जिस समय विद्यापति हुये उस समय यह शाक्त सम्प्रदाय बंगाल और बिहार में विद्यमान था। शक्ति या दुर्गा को ही आदि शक्ति माना जाता था और अन्य देवताओं की जननी भी शक्ति ही थी। शव को शिव बनाने वाली शक्ति ही है×। शाक्तों का विश्वास है कि शिव मूलतः शव है। त्रिभुवन सुन्दरी के रूप में जब शक्ति उस शव से विपरीत रति करती है तब वह शव शिव बनता है। स्थूल रूप से जो बात इस प्रकार समझाई गई है उसका दार्शनिक पक्ष यह है कि ब्रह्म अपने आप कुछ नहीं करता। जब वह माया अथवा शक्ति सम्पन्न होता है उस समय सृष्टि की रचना होती है। राधा और कृष्ण की परम्परा का मूल स्रोत जो गाथा सप्तशती और अन्य लोक गीतों में दक्षिण के वैष्णव धर्म के प्रचार से पूर्व मिलता है, और जो जयदेव में होकर विद्यापति में आया था वह मूलतः शाक्त प्रभाव ही था। शाक्तों ने भी शक्ति को राधा और शिव को कृष्ण कह कर अपनी शृंगारिक अतृप्त भावनाओं की तृप्ति के लिये साहित्य में एक कोना सुरक्षित कर लिया। परन्तु इतना निश्चय है कि राधा एक शक्ति के रूप में थी और कृष्ण पुरुष के रूप में। इस धारणा को इस रूप में आते कितनी ही शताब्दियाँ बीत गई होंगी यह नहीं कहा जा सकता। गौरीशङ्कर राधाकृष्ण, सीताराम आदि युग्म इस बात का प्रमाण है। शाक्त और शैवों की एकता की यही वैज्ञानिक सत्यप्रतीत होता है। इसी एकता को विद्यापति ने भी अनेकों स्थानों पर अपनी पदावली में और अन्य रचनाओं में प्रदर्शित किया है। सम्पूर्ण देवताओं को शक्ति का आराधक और उपासक कहा है। 'पुरुष परीक्षा' के मङ्गलाचरण में आदि शक्ति को शिव की पूज्या विष्णु की ध्येया कहा है। और उस आदि शक्ति के चरणों की वन्दना करने वाले हैं—"हरि-विरंचि महेश शेखर चुम्बयमान पदे"। एक और स्थान पर "हरिहर ब्रह्मा पुछइत भमे। एक ओ न जानतुअ"। अनेक देवियों में भी उन्होंने एक ही आदि शक्ति के रूप को देखा—

× गोरखनाथ—ले० डा० रांगेयराघव।

"विदिता देवी विदिता हो अविरल केश सोहंती
एकानेक सहस धारिणि अरि रंग पुरनंती"
कज्जल रूप तुअ कालिअ कहिअउ उज्जल रूप तुअ बानी
रवि मण्डल परचण्डा कहिये गंगा कहिये पानी

एक और पद से विद्यापति की शाक्त विचारधारा का परिचय मिलेगा:—

"जय जय भैरवि असुर भयावनि पशुपति भामिनि माया।
सहज सुमति वर दियउ गोसाउनि अनुगति गति तुअ पाया॥
वासर रैनि शवासन सोभित चरन चन्द्रमनि चूड़ा।
कतउक दैत्य मारि मुख मेलल कतउ उगल कैल कूड़ा॥
सामर वरन नयन अनुरंजित जलद योग कुल कोका।
कट कट विकट ओठ पुट पाँड़रि लिधुर फेन उठ फोका॥
घन घन घनय घुघुरकत बाजय हन २ कर तुअ काल कटारा।
विद्यापति कवि तुअ पद सेवक पुत्र विसरु जनु माता॥

इस पद में विद्यापति ने शक्ति के उसी रूप की आराधना की है जो शव पर बैठकर अपना सृजन कार्य करती है। इस पद में एक सच्चे भक्त के से उद्‌गार हैं। अन्तिम पंक्ति से तो बिल्कुल स्पष्ट हो गया कि विद्यापति शक्ति के ही उपासक थे। इसलिए वे कहते हैं कि हे माँ मुझे मत विस्मृत कर देना क्योंकि मैं तो तेरे ही चरणों का सेवक हूँ।

विद्यापति मूलतः स्मार्त शाक्त थे। इस कारण शक्ति के साथ २ अन्य देवताओं को भी अनादर की दृष्टि से नहीं देखते थे। शाक्तों की दो धारायें थीं—एक वैदिक और दूसरी अवैदिक। वैदिक शाखा के शाक्त वेद, स्मृतियाँ और पुराणों के आधार को ही लेकर चले किंतु अवैदिक शाक्तों में वेद का विरोध करना एक स्वाभाविक प्रचलन था। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि वैदिक शाक्तों के ऊपर अवैदिक शाक्तों का प्रभाव न पड़ा हो और अवैदिक शाक्तों पर वैदिक शाक्तों का प्रभाव न पड़ा हो। दोनों एक दूसरे से अवश्य प्रभावित हुये। विद्यापति पर भी अवैदिक शाक्तों का प्रभाव पड़ा और उसी के फल स्वरूप उन्होंने वज्रयान की उस स्थूलता को अपनी भक्ति में स्थान दिया। जो उनकी पदावली में राधा-कृष्ण के विलास और काम क्रीड़ाओं के

रूप में बिखरी पड़ी है। वैदिक शाक्त होने के प्रमाणों में इतना ही पर्याप्त है कि जो उन्होंने सम्पूर्ण देवी-देवताओं की एकता को देखा है वह स्मृत्यानुगत रूप के अनुकूल है। सारांश में यह कहा जा सकता है कि विद्यापति के आविर्भाव के पूर्व ही पञ्चरात्र से प्रभावित भागवत सम्प्रदायानुगत वैष्णव मत मिथिला में विद्यमान था और साथ ही वज्रयान वाममार्ग इत्यादि शाक्त परम्पराओं के आधार पर ऐसी भूमि पर आ चुके थे जहाँ समस्त सम्प्रदाय अपने २ उपास्य युग्मों को लेकर उसके अनुकूल होने में समर्थ हो गये थे। इन परम्पराओं में स्मार्त शाखा भी आ गई थी। विभिन्न देवता 'शक्ति' के सहारे से समान श्रद्धा के पर्याय हो गये थे। विद्यापति में यह समस्त परम्परायें हमको मिलती हैं। शाक्तोपासना में नारी देवी का पर्याय है। नारी के समस्त रूप सामान्य हैं। विद्यापति में नारी के कामिनी और माता ये दो स्वरूप प्रधान मिलते हैं। क्रीड़ारता नारी शाक्तों की परम उपास्य है। विद्यापति ने उसका प्रभूत वर्णन किया है। स्थूल की यह समाराधना शाक्तमतानुसार शक्ति के वाह्यलालित्य का प्रतीक है। अतः यह समस्त शृङ्गारपरकता मूलतः शाक्त भक्ति है। जो भक्ति के अन्य प्रचलित स्वरूपों से तनिक भिन्न दिखाई देते हुये भी आधार रूप से भिन्न नहीं है। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि शृंगार और भक्ति को अलग २ करके देखना शाक्त परम्पराओं को समझ पाने का ही फल है। जहाँ चण्डीदास में जातिवाद का विरोध भी मिलता है वहाँ विद्यापति स्मृत्यान्तर्गत प्रभावों में ही रहे हैं। अतः यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि विद्यापति शाक्त कवि थे और शृंगार शाक्तों की भक्ति में प्रमुख था इसीलिये विद्यापति ने भी अपने काव्य में शृंगार की प्रधानता थी।

अन्य प्रभाव—विद्यापति की शृङ्गार भावना को शाक्त होने पर ही नहीं छोड़ सकते वरन् कुछ अन्य कारणों से भी कवि ने अपने काव्य को शृङ्गार रस से ओत प्रोत किया। इन कारणों में मुख्य हैं—राज्याश्रय, पूर्ववर्ती कवि और संस्कृत रीति ग्रन्थ।

विद्यापति को कितने ही राजाओं के आश्रय में रहना पड़ा। यह राजा स्वाभाविक रूप से शृंगार की कविताओं को ही पसन्द करते होंगे। क्योंकि विद्यापति का युग वह युग था जिस समय हिंदू राजाओं की तलवार की चमक

समाप्त हो गई थी और मुसलमानों के आधिपत्य को स्वीकार कर के आत्म-संतोष की साँस लेने लगे थे। प्रारम्भ में तो हिंदुओं ने उनका सामना डटकर किया किंतु जब वह पराजित हो गये तो उन्होंने उनकी अधीनता स्वीकार कर ली। चारण लोग जो वीरता के गीत गा रहे थे वह अब उन राजाओं के मनोविनोद के लिये श्रृंगार की कविता करने लगे। यह सब कवियों के साथ नहीं था, जो स्वतन्त्र कवि थे उन्होंने जन कल्याण की भावना के साथ अपनी कविता का सृजन किया। इस प्रकार के कवियों में आगे के सन्त कवि हुये। विद्यापति ने यह कार्य नहीं किया। इसका मूल कारण यही था कि उनका संबंध राजाओं से था और राजा लोगों को जनता के दुख दर्द से कोई संबंध नहीं। इसी कारण विद्यापति ने श्रृंगार रस में 'कीर्तिलता' और 'कीर्तिपताका' की रचना अपभ्रंश में तथा पदावली की मैथिली में की।

महाकवि विद्यापति अपने पूर्ववर्त्ती कवियों की रचना से अधिक प्रभावित थे। उन कवियों के भावों के आधार पर पदावली के अनेकों पद हैं। कहीं २ पर तो इतना भाव साम्य है कि संभवतः विद्यापति ने उन कवियों की रचना के अनुकरण पर ही अपनी पदावली की रचना की हो। विद्यापति ने जिन कवियों की रचनाओं के आधार पर अपनी रचनाओं में भाव भरे उनमें मुख्यतः कालिदास, माघ, श्रीहर्ष, भारवि, अमरुक, जयदेव आदि हैं। उपर्युक्त कवियों की अनेक कविताओं का भाव विद्यापति के पदों में मिलता है। किन्तु इसका यह तात्पर्य न समझना चाहिये कि विद्यापति में मौलिकता नहीं। उन भावों को कवि ने बड़े मौलिक ढङ्ग से अपनाया है। विद्यापति ने इन कवियों की श्रृंगार परक कविताओं को ही अपनाया है। कालिदास का विद्यापति पर उतना ही प्रभाव है जितना कि जयदेव आदि अन्य श्रृंगारी कवियों का। इस प्रभाव से भी संभवतः उन्होंने श्रृंगार रस को अपनाया होगा। विद्यापति और उनके पूर्ववर्त्ती कवियों की उन रचनाओं की, जिनमें भाव साम्य है, यदि तुलना की जाय तो विद्यापति श्रृंगार के चित्रण में अधिक सफल कवि सिद्ध होंगे। इतना स्पष्ट है कि कवि विद्यापति की रुचि अधिकतर श्रृंगार रस में ही थी और इसी कारण वह अन्य कवियों के काव्य से इतने प्रभावित नहीं हुये जितने कि श्रृङ्गारी कवियों के काव्य से। नीचे कुछ उद्धरण देकर हम सिद्ध

करेंगे कि विद्यापति उन महाकवि के भावों का अनुकरण करने पर भी उनसे किसी प्रकार पीछे नहीं। कालिदास ने इन्दुमती के स्वर्ग जाने पर जो उसके प्रियतम अज की दशा होती है उसका बड़ा मार्मिक वर्णन किया है। और उसी प्रकार का विद्यापति ने एक पद लिखा है।

कलमन्यभृतासु भाषितं कलहंसीषु मदालसं गतम्।
पृषतीषु विलोलमीक्षितं पवनाधूत लतासु विभ्रमाः॥
त्रिदिवोत्सुकयाप्यवेक्ष्य मां निहिताः सत्यममी गुणास्त्वया।
विरहे तव मे गुरुव्यथं हृदयं नत्ववलाम्बितुं क्षमाः॥

अर्थात् प्रियतमा का मृदु स्वर कोयल के पास है, उसकी चाल राजहंसी में है, उसकी चितवन मृगियों में है, उसका वायुविलास से युक्त लताओं में है। परंतु विरही अज को यह सब दग्ध कर रहे हैं।

इसी प्रकार विद्यापति के पद में भी इसी भाव को व्यंजित किया गया है—

"माधव अब न जीउत राही।
जतवा जनिकर लेने छलि सुन्दरि से सभ सोंपलक ताही
सरदक ससधर मुखरुचि सोंपलन्हि हरिन के लोचन लीला
केस पास चामरु कें सोंपलन्हि पाए मनोभव पीड़ा"

कालिदास के भाव को लेकर भी कवि ने अपनी मौलिकता को बड़ी सफलता पूर्वक दिखलाया है। नायिका की मृत्यु समीप है किन्तु वह दिल खोलकर दान दे रही है। किन्तु प्रियतम के प्रेम की रक्षा वह जीवन के अन्तिम क्षण तक करेगी। यही विद्यापति की मौलिकता है और इसी से यह भी प्रतीत होता है कि शृंगार रस के वर्णन में कवि सिद्ध हस्त हैं।

कवि माघ संस्कृत काव्य में शृंगारिक कवियों में एक सफल कवि है किंतु विद्यापति इस रस के कम पारखी नहीं। उनकी कल्पना उनसे भी अधिक स्तरों को पार करके आगे पहुँचती है—

वासांसि न्यवसत यानि योषितस्ताः शुभ्राभ्रद्युतिभिरहासितैर्मुदेव।
अत्याक्षुः स्नपनगलज्जलानि यानि स्थूलाश्रु स्रुतिभिररोदितःशुचेव॥

उपर्युक्त वर्णन एक सद्यः स्नाता का वर्णन है। भाव यह है कि वह कामिनी

सरोवर से निकलकर अपने कपड़ों को बदल रही है। उसके भींगे कपड़ों को उसके सुन्दर शरीर के छोड़ने का दुःख है इसलिये वह तो बूँदों के मिस अपने आँसू बहा रहे हैं और नवीन कपड़ों को प्रसन्नता है इसलिये वे अपनी स्वच्छता के मिस अपनी हँसी बिखेर रहे हैं।

महाकवि विद्यापति ने भी इसी भाव से समानता रखने वाला एक पद लिखा है जिसमें अपनी श्रृंगार प्रियता को अधिक अच्छे रूप में प्रकट किया है—

"जाइत पेखल नहाइत गोरी, कति सँय रूप धनि आनलि चोरी।

× × ×

ओनुकि करतहि चाहे किय देहा, अबहिं छोड़ब मोहि तेजब नेहा॥
ऐसन रस नहिं पाओब आरा, इथे लागि रोइ गलय जलधारा॥"

माघ ने केवल पानी की बूँदों को आँसू कहकर ही अपने भाव को दिखाया था किंतु कवि विद्यापति ने वस्त्रों के चिपकने में भी एक भाव की कल्पना करके सौन्दर्य की सृष्टि की है। अन्य कवियों के भावों में भी कवि ने अपनी श्रृंगार प्रियता के कारण अधिक उत्कर्ष दिखाया है। वह कवि की उस सूझ का फल है जो उसकी कविताओं में सर्वत्र मिलती है।

महाकवि विद्यापति की पदावली की रचना मुक्तक के रूप में हुई इसलिये यह भी एक विशेष कारण था जिससे कवि को श्रृंगार की भावना को अपनाना पड़ा। मुक्तक काव्य में भावव्यंजना के लिये स्थान अधिक नहीं इसलिये श्रृंगार रस को अधिक महत्व दिया गया। प्रबन्ध काव्य में तो कवि को रसाभिव्यक्ति के लिये पर्याप्त साधन और क्षेत्र हैं परन्तु मुक्तक का रूप भावव्यंजना के लिये छोटा है। यही प्रमुख कारण था जिससे श्रृंगारी मुक्तकों को संस्कृत में भी अधिक महत्व दिया गया। प्राकृत और अपभ्रंश में भी अनेकों कवियों ने मुक्तक पद रचना की और श्रृंगार भावना को ही अधिक महत्व दिया गया। प्रथम शताब्दी की गाथा सप्तशती और उसके पश्चात अमरुक शतक और पुष्पदंत नामक कवि की रचना में भी श्रृंगार भावना को प्रमुखता दी गई। जयदेव ने भी मुक्तक पद रचना की और उनको भी घोर श्रृंगार का सहारा लेना पड़ा। विद्यापति जयदेव से भी आगे बढ़े और उन्होंने श्रृंगार रस के

सागर की इतनी नीचे जाकर थाह ली कि पूर्ववर्त्ती और परवर्त्ती सभी कवियों से अपनी एक विशेषता छोड़ गये। शृंगार भावना के कारण ही उनके पदों का इतना सम्मान हुआ क्योंकि रसाभिव्यक्ति की दृष्टि से उनके पद बहुत सफल हैं।

महाकवि विद्यापति शृंगार रस के महान् पण्डित थे इसी कारण उन्होंने नायिका भेद, नखशिख वर्णन आदि को भी अपने काव्य में स्थान दिया। अलंकारों का प्रयोग भी भाव व्यंजना में सहायक हुआ है। कवि ने राधा की जिस आयु को चुना है उसको भी शृंगार की भावना को अधिक उद्दीप्त करने के कारण यह सन्धि अवस्था है। शैशव जाने वाला है और यौवन का आगमन हो रहा है। नायिका के हृदय में भावों का द्वन्द्व है। कभी वह बालिका के समान क्रिया—कलाप करती है तो उसी क्षण उसको अपनी विकसित अवस्था का ध्यान आ जाता है। वह अपनी चंचलता को छोड़कर एक गंभीर युवती की सी चेष्टाएँ करने लगती है। यह अवस्था इतनी मनोरम होती है कि उस युवती के हृदय को कभी उत्साह और चंचलता से भर देती है तो कभी लजा और उत्सुकता का भाव दिखलाई देता है। कवि विद्यापति ने राधा को इसी आयु में देखा और उसको शृंगार रस का आलंबन बनाया।

शृङ्गार-रस के दो पक्ष हैं—संयोग और वियोग। विद्यापति ने संयोग और वियोग की अनेक अवस्थाओं में राधा को दिखलाया। यदि पदावली में राधा और कृष्ण को आदि से अन्त तक देखा जाय तो कवि ने उनकी केलि-क्रीड़ाओं को ही अधिक ध्यान से देखा कहीं एक दो स्थान पर ही भक्ति से ओतप्रोत पद अवश्य मिल जाते हैं—

'माधव हम परिनाम निरासा' आदि।

सम्पूर्ण पदावली में राधा और कृष्ण के प्रेमोदय से लेकर मिलन विरह की अनेकों दशाओं का चित्रण कवि ने बड़ी तन्मयता से किया है। प्रथम राधा की उस अवस्था को लिया है जिस समय वह एक नितान्त बालिका है और अभी यौवन का पूर्ण विकास नहीं हुआ—

'सैसव जौवन दुहु मिलिगेल।
श्रवनक पथ दुहु लोचन लेल॥'

राधा पूर्ण युवती हो गई। कवि उसको देखकर आश्चर्यान्वित हो गया—

'कि आरे ! नव जौवन अभिरामा'

विद्यापति ने राधा के अङ्ग अङ्ग को देखा और उसका वर्णन किया। कवि का नख-शिख वर्णन परम्परा भुक्त भी है और कुछ उन्होंने नवीन दृष्टि-कोण भी रखा है। कवि ने उपमानों के द्वारा राधा की सुन्दरता का मूर्त्तीकरण कर दिखाया है।

विद्यापति ने राधा को स्नान करते हुए भी देखा है और उस दशा में भी उसके सौन्दर्य का अनुपम चित्र उपस्थित किया है।

राधा और कृष्ण के प्रथम मिलन को कवि ने बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से वर्णन किया है।

"पथ-गति नयन मिलल राधा कान
दुहु मनसिज पूरल संधान"

राधा और कृष्ण दोनों ही विभोर हो गये और उनके हृदय में प्रेमाँकुर उगने लगा। यह प्रेम लीला कभी कभी अवसर मिलने पर बीच २ में कई बार और भी हुई—

"पथ - गति पेखल मो राधा"

कृष्ण और राधा दोनों ही एक दूसरे के प्रेम में रंग गये कामदेव उनको सताने लगा।

'मनमथ तोहे की कहब अनेक'

कृष्ण की दूती राधा के पास उसके प्रेम की दशा को सुनाने लगी कि कृष्ण तुम्हारा नाम लेकर विभोर हो जाते हैं।

'धनि धनि रमनि जनम धनि तोर।
सब जन कान्हु कान्हु करि झूरए
से तुअ भाव विभोर ॥'

सखी राधा को कृष्ण की दशा को सुनाकर कहती है कि हे राधे तुम चल कर उसके हृदय को शान्ति प्रदान करो। तुम्हारे जाये बिना कृष्ण की दशा नहीं सँभल सकेगी।

राधा भी अपनी दूती के द्वारा अपनी दशा को कृष्ण के समीप पहुँचाती हैं।

"सुनु मनमोहन कि कहब तोय
मुगुधिनि रमनी तोहे लागि रोय"।

इस प्रकार दोनों ओर के सन्देश पहुंचते रहते हैं और प्रेम का विकास भी धीरे २ चरमोत्कर्ष पर पहुँचता है। राधा की सखी उससे अभिसार करने को कहती है और उधर कृष्ण को भी शिक्षा दी जाती है कि वह राधा से किसी संकेत स्थल पर मिलले। अन्त में मिलन हो जाता है। मिलन के वर्णन में कवि की शृङ्गार भावना पूर्ण रूप से विकसित हो जाती है। मिलन के वर्णन में अनेक स्थलों पर कवि स्वतन्त्र होकर अपने भावों का प्रदर्शन करता है। यही वह स्थल हैं जिनके कारण कवि की कविता को अश्लीलतापूर्ण होने का दोष लगा। इस वर्णन में कवि की शृङ्गार भावना इतनी बढ़ी चढ़ी है कि कवि के हृदय की विकृति और कुत्सित भावनाओं का प्रतीक सा प्रतीत होती है। संभोग वर्णन को भी कवि ने रसयुक्त होकर किया है—

"निबि बंधन हरि किए कर दूर"

मिलन के प्रसंग में कवि ने केलि-क्रीड़ाओं की सूक्ष्मातिसूक्ष्म बातों का चित्रण किया है।

सखी नायिका से उसके मिलन की सम्पूर्ण बातों की जानकारी कर लेती है। राधा का अभिसार करना प्रारम्भ होता जाता है। कभी वह चन्द्रमा से प्रार्थना करती है कि वह आज न उगे क्योंकि आज वह अपने प्रियतम से मिलने जायेगी।

'चन्दा जनि उग आजुक राति।'

राधा मान करती है। वह कभी कृष्ण के न आने पर उनके ऊपर सदेह करती है और कभी उनके मुख के चिन्हों से अनुमान लगाती है कि उनका

किसी अन्य नायिका से प्रेम है। अन्त में सखियों के प्रयत्न से राधा का मान छूट जाता है।

विदग्ध विलास में कवि के शृङ्गार रस के चित्रण को आलोचकों ने अश्लीलता की सीमा में पहुंचा दिया है। इस प्रसंग में कविने रूपकके आधार पर रति वर्णन का चित्र सा उपस्थित कर दिया है।

'विगलित चिकुर मिलित मुखमंडल
चाँद बेढ़ल घन माला।'

वियोग के वर्णन में कवि ने अपनी प्रतिभा का जो परिचय दिया है उसकी समता हिन्दी में नहीं मिलती। राधा कृष्ण के वियोग से व्याकुल है। वह अपनी सखी से कृष्ण की निष्ठुरता की शिकायत करती है—

सखि मोर पिया
अबहु स आओल कुलिस-हिया'

कृष्ण का सन्देश तक नहीं आता। किन्तु राधा फिर भी अपने प्रियतम की कुशलता की इच्छुक है। वह कृष्ण को दोष न देकर अपने कर्मों का ही फल कहती है—

'माधव हमर रहल दूर देस
केओ न कहउ सखि कुसल सनेस'

इस प्रकार सम्पूर्ण पदावली मिलन और वियोग के चित्रों को उपस्थित करती है। सम्पूर्ण पदावली में कवि ने शृङ्गार-रस की अभिव्यक्ति में पूर्ण सफलता दिखाई हैं। राधा के रूप चित्रण के साथ २ कवि ने उसकी मुद्राओं और हावभाव को भी रस परिपाक के लिये सर्वत्र चित्रित किया है।

शृंगार-रस के प्राचीन ग्रन्थों में भी नायिका के अनेक रूपों का चित्रण है। किंतु विद्यापति ने नायिका भेद को पूर्ण रूप से न अपना कर आँशिक रूप से अपनाया है। उनके काव्य में कृष्णाभिसारिका, शुक्लाभिसारिका, मुग्धा, खण्डिता, विप्रलब्धा आदि नायिकाओं का वर्णन मिलता है।

महाकवि विद्यापति ने अपने काव्य में शृंगार रस के सम्पूर्ण रूपों को देखा और उनका सफलता पूर्वक चित्रण किया। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है

कि महाकवि विद्यापति की शृंगार भावना को हम सम्पूर्ण पदावली में देखते हैं और उसी के आधार पर हम उनको शृंगारी कवि की उपाधि से विभूषित करते हैं। किंतु हमको यह भी स्मरण करना आवश्यक है कि उनके काव्य की शृंगार परकता का तात्पर्य यह नहीं कि वह भक्त नहीं थे। वह भक्त भी थे, और वह भी स्मार्त शाक्त। उनकी शृंगार भावना मूलतः शाक्त होने के कारण और कुछ परिस्थितिजन्य थी। राज्याश्रय और पूर्ववर्ती कवियों ने भी उनकी शृंगार परक प्रवृति को अधिक उत्तेजना प्रदान की।

विद्यापति का हिन्दी साहित्य में स्थान

महाकवि विद्यापति ने जिस समय अपनी मधुर वाणी से रसिक हृदयों को गुंजित किया उस समय हिन्दी काव्य में कोई भी कवि उनके लिये पथ-पदर्शक का कार्य करने वाला नहीं था। हिन्दी काव्य अपभ्रंश की गोद से अभी नहीं निकल पाया था। इसलिये महाकवि को अपनी प्रतिभा के ऊपर ही रहकर अपने काव्य की मौलिक रचना करनी थी, कवि को माधुर्य और लालित्य के प्रति आकर्षण था। इसलिये उसने संस्कृत के कवि जयदेव को अपना आदर्श बनाया। जयदेव ने संस्कृत में कोमल कान्त पदावली का सृजन करके अमृत की धारा बहा दी थी। विद्यापति जयदेव की उस रचना से इतने प्रभावित हुये कि उन्होंने अपनी जनभाषा को लेकर मधुर स्वर लहरी की ऐसी तान छेड़ी कि सम्पूर्ण बंगाल और बिहार से लेकर कृष्ण की जन्मभूमि ब्रज को भी गुंजित कर दिया। उन्होंने अपनी भावराशि को गीतों के सुन्दर माध्यम से इस प्रकार उंडेला कि समस्त जन-समाज ऐसा चकित हुआ जैसे हरिणी वीन की स्वर लहरी को सुनकर चकित हो जाती है। उन्होंने किसी कथा को लेकर अपनी पदावली की रचना नहीं की वरन् मुक्तक के रूप में अपने हृदय के भावों को सजाया। इस प्रकार कवि ने दो ललित कलाओं को एक रूप देकर सोने में सुहागा मिला दिया। कविता स्वयं भावों की अनुगामिनी है किन्तु संगीत की स्वरतंत्री से इसके भावों में अत्यन्त उत्कर्ष आ जाता है। विद्यापति एक सच्चे कलाकार थे। वे जानते थे कि भावनाओं के पारखी तो मेरी कविता के भावों को बिना संगीत के ही समझ लेंगे किंतु साधारण जनता के लिये जब तक संगीत का मिश्रण नहीं होगा तब तक वह मुक्तकण्ठ से प्रशंसा नहीं करेगी। इसीलिये उन्होंने कविता और संगीत का सुन्दर सम्मिश्रण किया। उन्होंने अपनी पदावली को लोक-गीतों के आधार पर लिखकर जनता के समीप पहुँचा दिया।

महाकवि विद्यापति ने सूर और तुलसी की तरह ईश्वर की गुण-गाथाओं

को किसी सम्प्रदाय विशेष के प्रचार के लिये नहीं लिखा वरन् अपनी भावनाओं को मुक्तरूप से चित्रित करने में ही कवि ने अपनी कुशलता का परिचय दिया है। उन्होंने राम और कृष्ण के जीवन को क्रमबद्ध करके नहीं देखा वरन् अपने हृदय के भावों को केवल मधुरता से भरने के लिये लोक-प्रचलित कृष्ण और राधा के रूप को अपना लिया है।

विद्यापति ने विशेषरूप से गीतों की ही रचना की। उन्होंने संगीत को ही अपनी अभिव्यंजना का आधार बनाया, माधुर्य और लालित्य से भाषा को सजाया। कोमल-कान्त-पदावली से जन समाज को चकित कर दिया। ऐसे महाकवि को साहित्य में क्या स्थान मिलना चाहिये यह इस बात पर आधारित है कि हम उसकी विशेषताओं को ध्यान में रखकर साहित्य के अन्य महाकवियों से तुलना करें और देखें कि इस कवि में अन्य कवियों की अपेक्षा किस बात की विशेषता है। प्रत्येक काव्य की एक कसौटी होती है और उसी पर वह देखा जाता है कि यह सफल काव्य है अथवा असफल। वह कसौटी होती है काव्य का भाव सौंदर्य और रचना सौंदर्य। भाव सौंदर्य के अन्तर्गत कवि के हृदय के सम्पूर्ण भावों का प्रदर्शन मिलता है। इसी भाव-सौंदर्य और कला सौंदर्य के समन्वय से ही कोई कवि एक प्रतिनिधि कवि का रूप धारण करता है और महाकवि की उपाधि से विभूषित होता है। यदि भाव-पक्ष और कलापक्ष का कविता में सम-संतुलन नहीं तो वह कविता एक साधारण कोटि की कविता होती है।

जिस प्रकार कवि का स्थान निर्धारित करने में उसकी कविता के भाव-सौन्दर्य और कला-सौन्दर्य को देखना आवश्यक है इसी प्रकार से उस कवि की विचारधारा को भी देखना आवश्यक है। किसी भी कवि का स्थान निर्धारित करने में उसको उन्हीं कवियों में देखना होगा जो कि उसी की विचारधारा के कवि हों। यह नहीं कर सकते कि एक रहस्यवादी कवि का स्थान हम वीर गाथाकार कवियों में निर्धारित कर दें। महाकवि विद्यापति का हिन्दी कवियों के मध्य में स्थान निर्धारित करते समय यह देखना आवश्यक है कि उनके काव्य की मूल प्रेरणा क्या है? विद्यापति सौन्दर्य और माधुर्य के कवि हैं। उन्होंने अपनी पदावली को संयोग और वियोग शृंगार की मधुर और

मर्मस्पर्शी झाँकियों से ओत प्रोत किया। इसलिये उनका निर्धारित करते समय उसी धारा के कवियों को लेना पड़ेगा।

विद्यापति और अन्य कवि—

विद्यापति के अतिरिक्त हिंदी के अन्य गीतकार कवियों में महात्मा कबीर, गोस्वामी तुलसीदास, सूरदास हैं। अब देखना यह है कि इन कवियों में महाकवि विद्यापति की विचारधाराके कितने कवि हैं तथा कितने कवियों की कविता में भाव-सौंदर्य और कला-सौंदर्य का प्रदर्शन उस कोटि का अथवा उससे उच्च-कोटि का हुआ है। इन दोनों बातों की जाँच करने पर यह स्पष्ट हो जायेगा कि विद्यापति का क्या स्थान है? सर्व प्रथम कबीर और विद्यापति को लीजिये और देखिये कि उनकी कविताओं में भाव और कला सौंदर्य की समता या न्यूनता अथवा अधिकता किसमें है। दोनों की विचारधारा का भी दिग्दर्शन करना चाहिये।

विद्यापति और कबीर—

विद्यापति और कबीर दोनों कवि अपनी विचारधारा में एक दूसरे के विपरीत हैं। विद्यापति संसार को देखकर उसके प्रति आसक्ति रखते हैं वहाँ कबीर इस संसार से विरक्त हो 'सुरत की गेंद' बना कर खेलने वाले कवि हैं।

महात्मा कबीरदास एक निर्गुण सन्त हैं और उनको अपना सांई अपने ही हृदय में दिखलाई देता है। कबीरदास स्थूलता से घबराकर सूक्ष्मता की ओर भागे हैं जबकि विद्यापति स्थूलता को ही देखते-देखते नहीं अघाते। विद्यापति का काव्य-क्षेत्र संसार था किंतु कबीर का काव्य-क्षेत्र आत्मा और परमात्मा के महामिलन के काल्पनिक रूपों में ही सीमित था। इसका यह अर्थ नहीं कि कबीर ने संसार को नहीं देखा। उन्होंने देखा और इस प्रकार देखा कि वह इससे विमुख होकर गौतम की तरह भागने लगे। किंतु विद्यापति इसी संसार में इतने लिप्त हुये कि उन्होंने अपनी नश्वरता तक को तनिक भी नहीं देखा। जब मृत्यु समीप आई उस समय अवश्य उनको संसार से विरक्ति हुई और उन्होंने रमणी और समाज को झूँटा करार दिया।

कबीर और विद्यापति की रचनाओं की तुलना में यदि देखें तो कबीर केवल भाव-लोक में ही विचरण करते रहे जबकि विद्यापति भाव और कला

दोनों का सुंदर समन्वय करने में सफल हुये।

कबीर अपने भावों को जिस प्रकार सुगमता से व्यक्त कर सकते थे उसी प्रकार कर देते थे। उनको भाषा, अलंकार और माधुर्य से कोई तात्पर्य नहीं था। लेकिन विद्यापति सर्वदा अपनी कविता में भाव-सौंदर्य के साथ-साथ कला सौंदर्य का सम्मिश्रण करने में नहीं चूकते थे। उनकी भाषा, शब्द तथा छन्द सबही उनके पांडित्य का प्रदर्शन करते थे। विद्यापति अलङ्कार, रीति, गुण, दोष आदि से पूर्णतः परिचित थे। इसके अतिरिक्त राजदरबार उनका आश्रय था इसलिये माधुर्य और शृंगारिकता का पुट उनकी कविता में आवश्यक है।

कबीर एक अक्खड़ संत थे। उनको किसी के राज्याश्रय में नहीं रहना था। संसार को प्रलोभनों की, जिनके लिये लोग अन्य लोगों की खुशामद करते हैं, उनको इच्छा नहीं थी। वे सांसारिक इच्छाओं को त्यागकर केवल मधुकरी खाकर ही अपना जीवन बिताते थे। इसलिये उनकी कविता में ढोंग और पाखण्ड के प्रति एक घृणा की भावना थी।

कबीर की आत्मा अपने परमात्मा की विरहिणी थी किंतु विद्यापति की नायिका अपने नायक के वियोग में व्याकुल है। कबीर की आत्मा परमात्मा को पुकारती है।

कैसे दिन कटिहैं जतन बताए जाइयो।
एहि पार गंगा वोही पार जमुना, बिचवाँ मँढइआ हमकाँ छवाइ जइयो
अँचरा फारिके कागद बनाइन, अपनी सुरतिया हियरे लिखाए जइयो।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, बहियाँ पकरिके रहिया बताए जइयो॥

इसी प्रकार एक पद विद्यापति का है—

'के पतिया लए जाएतरे मोर प्रियतम पास।
हिय नहिं सहए असह दुखरे भेल साओन मास॥'

दोनों पदों की तुलना से स्पष्ट है कि विद्यापति के पदों में माधुर्य और संगीतात्मकता अधिक है। 'कबीर महात्माकवि हैं और विद्यापति कवि की महान् आत्मा हैं।' कहने का तात्पर्य यह है कि कबीर की कविता उनके हृदय के उद्‌गारों का सीधा-सादा प्रदर्शन है जबकि विद्यापति एक विद्वान् पण्डित हैं और उनकी कविता का कला-सौंदर्य निस्संदेह कबीर को उनसे पीछे कर देता

है। विद्यापति की कविता शृङ्गार रस से ओत-प्रोत है। लेकिन कबीर की कविता में तो शांत और अन्य रसों का ही दिग्दर्शन कराया गया है।

बहुत से विद्वानों ने विद्यापति के अभिसार और विरह के पदों में ईश्वरोन्मुख प्रेम की झाँकी देखी है और विद्यापति को कबीर के समान रहस्यवादी कवि माना है। किंतु यह उनका भ्रम है। दोनों ही भिन्न-भिन्न विचार धारा के कवि हैं। कबीर की आत्मा को वियोग उसके परमात्मा से दूर कर देता है और विद्यापति की नायिका केवल अपने संसार के नायक से मिलना चाहती है। एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा कि कौन रहस्यवादी है।

कबीर—'पाँव नहीं ठहराय कहुँ गिर गिर परूँ।
फिर फिर चढ़हुँ सम्हारि चरण आगे धरूँ॥
अंग अंग थहराय तो बहु विधि डरि रहूँ।
करम कपट मग घेरि तौ भ्रम में परि रहूँ॥'

विद्यापति—सुन्दरि चलि लेहु पहु घरना।
चहुं दिसि सखि सब कर धरना॥
जाइतइ लागु परम डरना।
जैसे ससि काँप राहु डरना॥
जाइतइ हार टुटिए गेल ना।
भूषन वसन मलिन भेल ना।
रोए रोए काजर दहाए देलना।
अँदकहिं सेंदुर मिटाये देल ना॥
भनहिं विद्यापति गाओल ना।
दुख सहि सहि सुख पाओलना॥

दोनों पदों में भाव साम्य है। किन्तु कबीर के इस पद में 'करम कपट' 'कुमति विकार' 'सत गुरु' आदि शब्दों के प्रयोग से अपने रहस्यवादी दृष्टिकोण को स्पष्ट कर दिया है किन्तु विद्यापति ने इस प्रकार का कोई संकेत नहीं किया। इसके अतिरिक्त हार का टूटना, सेंदुर का बहना आदि क्रियायें विद्यापति की उक्तियों को रहस्यवादी कवि की कोटि में नहीं रखती वरन् एक नायिका के प्रथम मिलन से पूर्व के भय और संकोच का ही द्योतक हैं। इस

लिये विद्यापति को एक रहस्यवादी कवि की कोटि में रखकर कबीर से तुलना करना कबीर के महत्व को घटाना है। दोनों ही कवि विभिन्न विचार धाराओं के कवि हैं। एक संत है दूसरा घोर श्रृंगारी, एक अपने भावों को अक्खड़ अटपटी भाषा में ही व्यक्त करता है तो दूसरा अपनी कविता की मधुरता और भाषा की सजावट में अपनी प्रतिभा और चतुरता दोनों को लगा देता है।

इसलिये उपर्युक्त तुलना से हम तथ्य निकालते हैं कि कबीर और विद्यापति दोनों ही भिन्न २ क्षेत्रों के कवि हैं। हिन्दी साहित्य में यदि कबीर एक निर्गुण सन्त हैं तो विद्यापति एक भावुक कवि हैं। अतः दोनों का स्थान अलग २ है।

विद्यापति और तुलसीदास :—

तुलसीदास हिन्दी साहित्य के कालिदास हैं। उन्होंने प्रबंध काव्य, खण्ड काव्य और मुक्तक काव्य तीनों को ही अपने काव्य का आधार बनाया विद्यापति और तुलसीदास दोनों ही विभिन्न विचारधारा के कवि हैं। गोस्वामी जी राम के परम भक्त हैं। उन्होंने राम का मर्यादा पुरुषोत्तम रूप उपस्थित करके उनके चरित्र को जनता के लिए एक आदर्श चरित्र उपस्थित किया। राम के लोक रक्षक और लोक रंजक रूप को उन्होंने निराश जनता के सन्मुख प्रस्तुत करके एक आशा का संचार किया। उन्होंने अपनी कविता को व्यक्ति के दायरे से मुक्त करके समष्टि के लिए कर दिया। गोस्वामी जी के मुक्तक काव्य में 'विनय पत्रिका' और गीतावली मुख्य हैं। इनकी विनय पत्रिका राम की भक्ति के विभिन्न स्तोत्रों तथा आत्म निवेदन के पदों का संग्रह है। श्रृंगार रस इनके काव्य में बहुत कम है। इन्होंने शान्त रस को ही अधिक महत्व दिया है। इनकी दोनों रचनायें—विनय पत्रिका और गीतावली भक्तों को आनंद देने वाली सुन्दर कला कृतियाँ हैं। तुलसी ने श्रृंगार रस को महत्व अधिक नहीं दिया और अगर दिया भी है तो वह बड़े संयत रहे हैं। उन्होंने राम और सीता को एक आदर्श पति पत्नी के रूप में ही प्रस्तुत किया है।

विद्यापति और तुलसी के काव्य में घोर विरोध है। विद्यापति का काव्य श्रृंगार रस के विवरणों का एक विस्तृत ग्रन्थ है। कवि का मन भक्ति में

उतना नहीं रमा जितना कि शृंगार रस के वर्णनों में रमा है। उन्होंने भक्ति को अपने काव्य में केवल कतिपय स्थलों पर ही वर्णित किया है। भाव और पांडित्य की दृष्टि से विद्यापति तुलसी से पीछे नहीं हैं। किंतु तुलसी की महत्ता विद्यापति से इसलिये अधिक है कि उनकी कविता समाज के हितों को लेकर चली है, किसी राजा की शृङ्गारिक मनोवृत्ति को सन्तुष्ट करने के लिये नहीं। तुलसी और विद्यापति का क्षेत्र भी अलग होने के कारण एक दूसरे की तुलना करने से कोई लाभ नहीं। तुलसी राम-काव्य परम्परा के प्रतिनिधि कवि होने के कारण और 'रामचरित मानस' जैसे प्रबंध काव्य के सफल प्रणेता होने से हिन्दी काव्य में अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। किन्तु जहाँ तक एक सफल कलाकार की कुशलता का प्रश्न है वहाँ विद्यापति उनसे पीछे नहीं। तुलसी के सन्मुख उनका स्थान इसलिए गौण है कि उन्होंने लोक-धर्म की कोई चिंता नहीं थी। उनका काव्य-जगत सौंदर्य और माधुर्य का ही अधिक रहा।

सूर और विद्यापति—

विद्यापति और सूरदास दोनों ही कृष्ण राधा की कथा को लेकर चले। इतना अवश्य है कि सूर के राधा और कृष्ण एक संप्रदाय विशेष के इष्टदेव थे जब कि विद्यापति ने अपने कृष्ण और राधा दोनों को जन परम्परा में प्रचलित कथाओं और लोक गीतों के आधार पर चित्रित किया। सूर और विद्यापति दोनों में इतनी समानता है कि कभी २ तो यह प्रतीत होता है कि सूर ने विद्यापति के पदों के आधार पर ही अपने पदों की रचना की होगी। भाव और कला दोनों ही को हम बहुत से पदों में एक समान ही पाते हैं। रस के दृष्टिकोण से भी दोनों में समानता है। विद्यापति ने अपने काव्य में शृंगार रस के दोनों पक्ष संयोग और वियोग को ही चित्रित किया। उधर सूर ने भी संयोग और वियोग में ही अपनी राधा की हृदयगत भावनाओं का चित्रण किया। भाव और कला का सामंजस्य दोनों कवियों में समान रूप से ही पाया जाता है। यह नहीं कहा जा सकता कि कौनसा कवि निम्न कोटि का है और कौन सा उच्चकोटि का। सूर और विद्यापति दोनों ही सौंदर्य के कवि हैं। सौंदर्य की रचना में दोनों कवि सर्वदा प्रयत्न शील हैं।

सूरदास की मुख्य विशेषता यही है कि उन्होंने कृष्ण के चरित्र को

व्यापकता देकर उनके लोकरंजक रूप के साथ २ लोक रक्षक रूप को भी चित्रित किया। उन्होंने कृष्ण को एक युवक रूप में ही नहीं देखा वरन् उनको यशोदा के आँगन में किलकते हुये, स्तंभ में अपने प्रतिबिम्ब को देखकर आनंद में विभोर होते हुये और माँ से बालकों की सी उक्तियाँ कहते हुये भी देखा था।

विद्यापति के कृष्ण तो किसी अन्य बात को नहीं चाहते। वह अपना जीवन राधा के लिये ही अर्पित कर चुके हैं। उनमें देवता और ईश्वरत्व की झाँकी नहीं वरन् एक यौवन की उत्ताल तरंगों में बहते युवक की झाँकी है। राधा उनके जीवन का उद्देश्य है। उनके सम्पूर्ण कार्य-क्रम राधा के ऊपर हैं। कभी संकेत स्थल पर बैठकर मुरली बजाकर राधा को पुकार रहे हैं तो कभी उसको राजमार्ग में देखकर उसकी रूप माधुरी में निमग्न हो जाते हैं। राधा ही जीवन है और जीवन ही राधा है। किंतु सूर के कृष्ण का कुछ लोक-पक्ष भी है। वह दुष्टों का दमन भी करते हैं और अनेक घोर आपत्तियों के आने पर ब्रज के लोगों को एक समाज सेवक की तरह बचाते भी हैं। सूर ने अपने सूरसागर की रचना 'श्रीमद्भागवत्' के आधार पर की किंतु विद्यापति ने तो अपने काव्य को अपनी मौलिक उद्भावनाओं से ही सजाया। कृष्ण और राधा को इस-लिये नहीं लिया कि वह उनके इष्टदेव हैं, वरन् इसलिये लिया कि उन दोनों की कथाएँ जनता में शृङ्गार रस के उद्रेक के लिये प्रचलित थीं। विद्यापति का उद्देश्य था शृङ्गार का सृजन कर के अपने रसिक राजा शिवसिंह को प्रसन्न करना। सूर की कविता में वल्लभ सम्प्रदाय के उन नियमों और सिद्धाँतों का प्रतिपादन किया है जिनको कि प्रत्येक भक्त को अपनाना चाहिये। सूर ने कृष्ण की लीलाओं को भी इसलिये दिखाया है कि उनके सम्प्रदाय में लीलाओं का प्रमुख स्थान था।

नीचे कुछ पदों के भावसाम्य और अर्थसाम्य को दिखाकर हम उनके कवि रूप को ही देखेंगे। क्योंकि जहाँ तक भक्त हृदय का संबंध है वहाँ तक विद्यापति स्मार्त शाक्त थे और सूर पुष्टिमार्गी वैष्णव भक्त।

राधा के रूप-चित्र को प्रस्तुत करने में दोनों कवि प्रयत्नशील हैं—

"माधव कि कहब सुन्दरि रूपे
कतेक जतन विहि आन समारल, देखलि नैन सरूपे।

पल्लवराज चरन जुग सोभित गति गजराजक भाने ॥
कनक कदलि पर सिंह समारल, तापर मेरु समाने।
मेरु ऊपर दुइ कमल फुलाएल नाल बिना रुचि पाई ॥
मनिमय हार धार बहु सुरसरि तहँ नहिं कमल सुखाई।
अधर बिम्ब सम दसन दाड़िम बिजु रवि ससि उगथिक पासे ॥
राहु दूरि बसु नियरो न आवथि तहँ नहिं करथ गरासे।
सारङ्ग नयन बयन पुनि सारंग सारंग तसु समधाने।
सारंग उपर उगल दस सारँग केलि करत मधु पाने ॥
भनहिं विद्यापति सुन वरजौवति एहन जगह नहिं आने।
राजा सिवसिंह रूपनरायन लखिमादेइ प्रतिभा ने ॥

सूरदास जी भी राधा की रूप माधुरी पर मुग्ध है—

"अद्भुत एक अनूपम बाग
जुगल कमल पर गजवर क्रीड़ति तापर सिंह करत अनुराग।
हरि पर सरवर सर पर गिरिवर गिरि पर फूले कंज पराग।
रुचिर कपोत बसत ता ऊपर ताहू पर अमृत फल लाग ॥
फल पर पुहुप पुहुप पर पल्लव तापर सुक पिक मृगमद काग।
खंजन धनुष चन्द्रमा ऊपर ता ऊपर एक मनिधर नाग ॥
अङ्ग अङ्ग प्रति और और छवि उपमा ताको करत न त्याग।
सूरदास प्रभु पियहु सुधारस मानों अधरनि को बढ़ भाग ॥

दोनों ही कवि राधा के सुन्दर रूप का चित्र प्रस्तुत कर रहे हैं। किन्तु सूरदासजी के चित्र में विद्यापति के चित्र के समस्त भाव और कला दोनों की न्यूनता है। जिस भाव को सूरदास ने 'जुगल कमल' से की है उसे विद्यापति ने 'पल्लवराज' लिखकर ही अभिव्यंजित कर दिया है। सूरदास 'गजवर क्रीड़ति' से राधा की जाँघ की उपमा देते हैं किंतु विद्यापति 'कनक कदलि' की उपमा देकर सूर की उपमा को फीका कर देते हैं। सूरदास ने 'गिरवर फूले कंज पराग' का प्रयोग राधा के उरोजों के लिये किया है और सुन्दर है किंतु महाकवि विद्यापति ने उसे और अधिक सुन्दरता से चित्रित किया है। उन्होंने 'मेरु उपर दुइ कमल फुलाएल नाल बिना रुचि पाई' कह कर ऐसे कमलों का चित्रण

किया है जो बिना नाल के ही अपनी शोभा से खिल रहे हैं। सूरदास के 'फूले कंज पराग' को भय है कि कहीं सूख न जायँ किंतु विद्यापति ने अपने कल्पना प्रसूत बिना नाल के कमल को 'मनिमय हार धार बहु सुरसरि' कह कर सदा प्रफुल्लित रहने का प्रबन्ध कर दिया है। विद्यापति और सूरदास दोनों ही कवि उच्चकोटि के कलाकार हैं किंतु जहाँ तक भावों की उच्चता का प्रश्न है वहाँ तक तो कोई भी एक दूसरे से पीछे नहीं रहता किंतु जहाँ अलंकारों और अनुप्रासों के प्रयोग को देखते हैं तो विद्यापति निश्चय ही एक कला पारखी और महान् पण्डित हैं। उपमा अलंकारों का प्रयोग करने में विद्यापति अपनी समता नहीं रखते। किंतु रूपक अलंकार के प्रयोग में सूर भी किसी कवि को अपनी कोटि में नहीं रखते।

नायिका द्वारा नायक के प्रथम दर्शन के अवसर पर नायिका के नेत्रों में जो रूप लोभ उत्पन्न हुआ है उसका कितना भावपूर्ण चित्र उपस्थित करने में विद्यापति सफल हुए हैं—

'अवनत आनन कए हमें रहलिहुँ वारल लोचन चोर।
पिया मुख रुचि पिवय धाऔल जानि से चाँद चकोर॥
ततहु सओ हठि हठि मोए आनल घाएल चरन राखि।
मधुक मातल उड़ए न पारए तइअओ पसारए पाँखि॥
माधव बोलल मधुरी बानी से सुनि मुँदुँ मोए कान।
ताहि अवसर ठाम वाम भेल धारि धनुष पँचवान॥
तनु पसेवे पसाहनि भासलि तइसन पुलक जागु।
चुनि चुनि भए काँचुअ फाटलि बाहुबलया भाँगु॥

इसी प्रकार-का एक पद सूर का है—

हरिमुख निरखत नैन भुलाने।
वे मधुकर रुचि-पङ्कज लोभी ताही ते न उड़ाने॥
कुंडल मकर कपोलन के ढिग जनु रवि रैनि विहाने।
भुव सुन्दर नैननि गति निरखत खंजन मीन लजाने॥
अरुन अधर ध्वज कोटि बज्र द्युति ससिगन रूप समाने।
कुंचित अलक सिलीमुख मानों लै मकरंद निदाने॥

तिलक ललाट कंठ मुकतावलि भूषन मय मनि साने।
सूरदास स्वामी अंग नागर ते गुन जात न जाने॥

दोनों कवि एक ही विषय लेकर चले हैं। विद्यापति के नेत्र-भ्रमर कृष्ण की सुंदरता के रस में लिप्त हैं। वे उड़ने का प्रयत्न करने पर पर भी नहीं उड़ पाते। उधर सूरदास की राधा के नेत्र-भ्रमर 'रुचि पंकज लोभी' होने के कारण उड़ने में असमर्थ हैं। यहाँ दोनों के भाव में बिल्कुल समानता है। सूर की राधा के 'नैननि गति निरखत, खंजन मीन लजाने की उक्ति अत्यंत सुन्दर है तो उधर विद्यापति की नेत्रों के लिये 'चोर' और 'चकोर' की उपमा भी अपनी मार्मिकता में कम नहीं। यद्यपि दोनों कवियों ने एक ही विषय को लेकर अपने काव्य को सजाया है किंतु फिर भी विद्यापति के वर्णन में आन्तरिक भावों का सुन्दरता से चित्रण हुआ है। सूरदास के पद में नेत्रों के बाह्य वर्णन को ही अधिक महत्व दिया है। विद्यापति की राधा अपने कृष्ण के दर्शनों में अधिक उल्लसित एवं विभोर है। विद्यापति की राधा अपने मुख को एक कुल कामिनी के समान नीचे किये हुये है। क्योंकि उसको भय है कि यदि उसने अपने नेत्रों को कृष्ण के मुख से दूर न किया तो यह चोर की तरह उसके रूप को चुराने में लग जायेंगे और गुरुजनों के द्वारा पकड़े जायेंगे। सूरदास ने इस प्रकार की कोई कल्पना नहीं थी। विद्यापति की राधा के नेत्र 'मधुक मातल उड़य न पारय तइओ पसारय पाँखि'। कवि की कल्पना शक्ति का कितना सुन्दर उदाहरण है।

भाव प्रवणता, संगीतात्मकता माधुर्य और रूप चित्रण में विद्यापति और सूर दोनों ही चतुर कलाकार हैं। बाह्य-प्रकृति के चित्रण में भी दोनों कवि अपनी कला कुशलता में कम नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों कवियों में होड़ लग रही है। कोई किसी से पीछे नहीं रहना चाहता। वर्षा के एक वर्णन को देखिये—

सूरदास जी लिखते हैं—

उनै उनै बरसतु गिरि ऊपर धार अखण्डित नीर।
अन्ध धुन्ध अम्बरतें गिरि पर, मानों परत बज्र के तीर।
चमकि चमकि चपला चक चौंधति स्याम कहत मन धीर।

विद्यापति भी किसी प्रकार कम नहीं वरन् उनका चित्रण उत्कृष्ट कोटि का है--

झम्पि घन गरजंति सन्तति भुवन भरि वरसंतिया।
कन्त पाहुन काम दारुन, सघन खर शर हन्तिया॥
कुलिस कत सत पात मुदित मयूर नाचत मातिया।
मत्त दादुर डाक डाहुक फाटि जाएत छातिया॥
तिमिर दिग भरि घोर जामिन अथिर बिजुरिक पातिया।
विद्यापति कह कैसे गमाओब हरि बिना दिन रातिया॥

इसका यह तात्पर्य नहीं कि सूर में प्रकृति चित्रण के सम्पूर्ण वर्णन विद्यापति से निम्नकोटि के ही हैं। सूर ने प्रकृति को अपनी अन्तर्दृष्टि से देखा था और उसमें अनेकों रंग-विरंगे चित्रों की भी उन्होंने उद्भावना की थी। सूर ने प्रकृति को प्रत्येक दशा में देखा था और विद्यापति ने भी। किंतु सूर की प्रकृति केवल संवेदनात्मक और सहानुभूतिपूर्ण ही नहीं रही। उसने रौद्र रूप भी धारण कर लिया है—

घटा घन घोर घहरात अररात दररात सररात ब्रज लोग डरपे।
तडित आघात तररात उतपात सुनि नारि नर सकुचि तनुप्रान अरपे।

विद्यापति में भी प्रकृति को रौद्र रूप में देखा है किन्तु वह तो कोमलता और माधुर्य के कवि थे इस कारण उनको उतनी सफलता नहीं मिली—

तरल तर तरवारि रंगे बिज्जु दाम छटा तरंगे।
घोर घन संघात बारिस काल दरसे ओरे।

निस्संदेह सूर का चित्र विद्यापति के चित्र से अति उत्तम और प्रसंगानुकूल है। विद्यापति ने भी कोई कमी नहीं रखी है किंतु 'रंगे बिज्जु दाम छटा तरंगे' में उनकी स्वाभाविक कोमलता के दर्शन हैं किन्तु सूर के 'तडित आघात तर रात' में भयंकर परिस्थित का ही चित्रण है। होना भी चाहिये था, क्योंकि प्रसंग भी साधारण ही नहीं हैं। इन्द्र का प्रकोप है और वह भी ब्रजवासियों को समूल नष्ट करने का।

विरह वर्णन भी दोनों महाकवियों का उत्कृष्ट कोटि का ही हुआ है। राधा की विरह जनित वेदना की व्यंजना में दोनों कवियों ने अपनी ओर से

कोई भी कमी नहीं रखी—

'लोचन धाय फेंधायल हरि नहिं आयल रे।
शिव शिव जिवओ न जाय आसे अरुझायल रे॥
मनकर तहाँ उड़िजाइ जहाँ हरि पाइय रे।
प्रेम परसमनि जानि आनि उर लाइअ रे॥
सपनउँ संगम पाओल रंग बढ़ाओल रे।
से मोर विहिं विघटाओल निन्दओ हेराएल रे॥
भनहिं विद्यापति गाओल धनि धैरज कर रे।
अचिरे मिलत तोहि बालुम पुरत मनोरथ रे॥

विरह विधुरा नायिका के हृदय की दशा का कितना मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। प्रत्येक पंक्ति में उसके हृदय की वेदना और दयनीयता का कितना सुन्दर चित्रण है। अब सूर की राधा की दशा को देखिये—

'हरि को मारग दिन प्रति जोवित
चितवत रहति चकोर चन्द्र ज्यों सुमरि २ गुण रोवति
पतियाँ पठवत मसि नहिं खंडति लिखि २ मानहुँ धोवति
भूख न दिन निसि निन्द हिरानी एकहु पल नहिं सोवति
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु वृथा जनम सुख खोवति

सूर ने भी अपने पदों में विरहिणी की वेदना का चित्र उपस्थित किया है। विद्यापति की राधा प्रतीक्षा करते २ अब निराश हो चुकी है किन्तु सूर की गोपियों का प्रेम तो अमर प्रेम है। उसमें निराशा को स्थान कहाँ। विद्यापति के पद में 'जिवयो न जाय' कितना करुणोत्पादक है। 'आस अरुझायल रे' में राधा की आशा फिर भी उसको उलझाने का प्रयत्न करती दिखाई दे रही है। गीत में 'शिव शिव' शब्द ने वेदना को स्पष्ट करने में बड़ी सहायता दी है। इसके अतिरिक्त विरहिणी की इस दशा में उसका शत्रु कामदेव है। वह उसकी आँखों की नींद तक को ले गया है। इसलिए उस विरहिणी को कामदेव से बचाने वाला शिव के सिवाय और कौन हो सकता है।

सूर के पद में भी 'चकोर' और 'चन्द्र' का प्रयोग भाव-प्रवणता के उत्कर्ष को बढ़ाने की दृष्टि से उच्चकोटि का है। प्रतीक्षा में विरहिणी को जो उत्कंठा

है उसका चित्र चकोर के उदाहरण से उपस्थित कर दिया है। 'सुमरि सुमरि गुण रोवति' में विरहिणी के प्रेम की उच्चता का चित्र उपस्थित करने की क्षमता है। दोनों पद्यों में भावों की उच्च अभिव्यक्ति है। किसी भाव को सूर ने अधिक कुशलता से चित्रित किया है तो किसी भाव को विद्यापति ने अपने कला पाँडित्य से सूर से भी सुन्दर उपस्थित कर दिया है। विरह वर्णन के एक और पद को उद्धृत करके हम सिद्ध करेंगे कि सूर ने विद्यापति के भावों के अनुकरण पर ही अपने पदों की रचना की। एक ही नहीं अनेक ऐसे उदाहरण सूर की रचनाओं में भरे पड़े हैं। ऊपर के उद्धरणों में भी भावसाम्य कई स्थानों पर आया है। एक भावसाम्य का उदाहरण विरह में से देकर इस बात को प्रदर्शित करने का प्रयत्न करेंगे कि विद्यापति के भावों को लेकर भी सूर वह उत्कृष्टता नहीं ला सके जो कि विद्यापति में विद्यमान है—

'अनुखन माधव माधव सुमरइत सुन्दरि भेल मधाई।
ओ निज भाव स्वभावहिं बिसरल अप्पन गुण लुबधाई॥
माधव अपरुव तोहर सिनेह।
अपन विरहे अपन तनु जरजर जिवइते भेल संदेह॥
भोरहि सहचरि कातर दिठि हेरि छल छल लोचन पानि।
अनुखन राधा राधा रटतहिं आधा आधा वानि॥
राधा सजो जब पुन तहि माधव माधव सजो जब राधा।
दारुन प्रेम तबहुं नहिं टूटत बाढ़क विरहक बाधा॥
दुहु दिशि दारु दहने जैसे दगधइ आकुल कीट परान।
एसन बल्लभ हेरि सुधा मुख कवि विद्यापति भान॥

इस पद के भाव साम्य पर सूर का पद है—

'सुनो श्याम यह बात और कोउ क्यों समुझाय कहै।
दुहुँ दिशि को रति विरह विरहिनी कैसे कै जो सहै॥
जब राधे तबहीं मुख माधो माधो रटत रहै॥
जब माधव होई जात सकल तनु राधा विरह दहै॥

उभय अग्र दौं दारु कीट ज्यों शितलताहि चहै।
सूरदास अति विकल विरहिनी कैसेहु सुखन लहै॥

दोनों कवियों को भाव की दृष्टि से देखने से प्रत्यक्ष रूप से लक्षित होता है कि सूरदास ने विद्यापति के भाव के आधार पर ही अपने पदों की रचना की। विद्यापति ने विरह की अधिकता से व्यथित और कृष्ण के दर्शनों की उत्कंठा से तृषित राधा 'माधव माधब' रटती हुई माधवमयी हो जाती है। किन्तु माधव मयी होने पर भी राधा की वियोगावस्था ही रही इस कारण वह 'राधा राधा' रटने लगती है दोनों परिस्थितियों में विरह की दारुण अवस्था राधा का पीछा नहीं छोड़ती। राधा उस काष्ठ के कीड़े तरह हैं जो काठ के दोनों सिरों पर आग लग जाने पर व्याकुल होकर छटपटाता है। सूर ने विद्यापति के भाव साम्य पर ही अपने पद की रचना की। उन्होंने भी विरह की अवस्थाओं का वर्णन विद्यापति के अनुकरण पर ही किया। विरहिणी की अवस्था को काष्ठ के कीड़े के समान ही देखा किन्तु उनकी 'दारु-गत कीट' की उपमा विद्यापति के 'आकुल कीट-परान' के सम्मुख निम्नकोटि की सिद्ध होती है क्योंकि दोनों सिरों पर आग लग जाने पर कीट के प्राण अपनी रक्षा के हेतु व्याकुल ही होंगे। उनको शीतलता की उस समय आवश्यकता नहीं होगी। दोनों पदों की भाव-प्रवणता और कलापटुता पर भी यदि दृष्टि डालें तो विद्यापति के पद में दोनों की ही प्रधानता मिलेगी। इससे स्पष्ट है कि विद्यापति के भावों को लेकर भी सूर उसमें उतनी नवीनता नहीं ला सके जिस प्रकार विद्यापति गाथा सप्तशती और अमरुक शतक आदि रचनाओं के भावों को लेकर भी उनमें अपनी कला-पटुता की उत्कृष्टता दिखाने में नहीं चूके हैं। लेकिन इससे यह तात्पर्य कभी नहीं लेना चाहिये कि विद्यापति बड़े कवि हैं और सूर उनसे निम्नकोटि के। दोनों ही महान् कलाकार हैं। दोनों का ही अपने-अपने क्षेत्र में प्रमुख स्थान है। विद्यापति मैथिली हिंदी के प्रतिनिधि एवं महाकवि हैं तो सूर व्रज की हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कलाकार हैं, वरन् शुक्लजी के शब्दों में हम यह कहें कि सूरदास ने व्रजभाषा में जो भाव भरे उनसे आगे पीछे के खेवे के कवि नहीं जा सके। वे सूर की झूँठन से ही अपने काव्य को सजाते रहे।

विद्यापति ने वियोग और संयोग के चित्रों में ही अपने भाव जगत को

देखा किंतु सूर ने एक विराट और विस्तृत क्षेत्र को लेकर हिंदी काव्य के भंडार को एक ऐसी राशि दी जिससे कि उसकी शोभा में अधिकता आ गई।

बालकों की मुद्राओं और हाव-भाव को प्रकट करने में सूर की आत्मा ने ऐसी विभोरता दिखलाई कि हिंदी साहित्य का कोई भी कवि उनकी समानता नहीं कर सकता। उन्होंने माँ, बाप, सखा, भाई और अनेकों सम्बन्धी और कुटुम्बियों के हृदयगत भावों की बालकों के प्रति जो व्यंजना हो सकती थी उसमें कमी नहीं रखी। कृष्ण के प्रति अपनी भक्ति की तन्मयता को प्रकट करने में सूर की समता हिंदी साहित्य का कोई भी कवि नहीं कर सकता। कृष्ण की लीलाओं का सूक्ष्मातिसूक्ष्म चित्रण जो सूर ने किया वह हिंदी संसार के किसी कला-पारखी की लेखिनी न कर सकी।

विद्यापति और सूर की समता केवल शृङ्गार रस के चित्रण में है। जहाँ तक शृङ्गार के दोनों पक्ष—वियोग और संयोग का सम्बन्ध है वहाँ दोनों ही महान् कलाकार हैं। विद्यापति ने भी वियोगिनी की आन्तरिक अवस्थाओं के चित्रण में अपनी भाव-वृत्तियों को इस प्रकार सँजोया है कि उसकी समानता नहीं। किंतु सूर के भ्रमर गीत में भी गोपियों की मानसिक अवस्था का इतना सुन्दर चित्रण हुआ है कि वह भी कृष्ण-काव्य में अपनी समता नहीं रखता।

दोनों कवि सफल गीतकार हैं। गीतों में भाव-प्रवणता, आत्मनिवेदन और संगीतात्मकता आदि जो विशेष गुण होते हैं उनमें सूर और विद्यापति दोनों ही सफल हैं। संगीत की स्वर लहरी का सामंजस्य करने में महाकवियों को जितना आनन्द आया है वह उनकी पदों की रचना से स्पष्ट है।

सूरदास और विद्यापति दोनों ही कृष्ण और राधा की कथा को लेकर चले। एक ने कृष्ण के देवत्व को ही देखा किंतु दूसरे ने कृष्ण को मनुष्यत्व की भाव-भूमि पर रख कर एक रसिक नायक के रूप में देखा। किंतु फिर भी कोई किसी प्रकार से अपने काव्य क्षेत्र कम नहीं। सूर ने सूरसागर जैसे ग्रंथ की रचना एक सम्प्रदाय विशेष के लिये करके अपने नाम को उस सम्प्रदाय विशेष से जोड़ दिया और इस प्रकार अपनी कविता को एक महत्व दिया। किंतु विद्यापति की पदावली एक छोटी रचना होते हुए भी अपनी भाव प्रवणता और कला-पटुता के कारण हिंदी जगत की एक अमूल्य निधि है। इसलिये विद्यापति

का कार्य इस दृष्टि से अधिक सराहनीय है कि उन्होंने एक ही पदावली के आधार पर रसिक हृदयों में इतनी पैठ की कि उनको आवश्यक जान पड़ा कि विद्यापति भी एक महान् कलाकार के रूप में ही स्वीकृत होने चाहिये।

हिंदी के महान् गीतकारों का वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं। कबीर और तुलसी से विद्यापति की तुलना में अधिक साम्य नहीं। केवल सूर और विद्यापति ही प्रत्येक दृष्टि से एक दूसरे के समकक्ष बैठते हैं। भाव और कला की दृष्टि से भी दोनों कलाकार समन्वयवादी हैं। माधुर्य और सौंदर्य ही दोनों का लक्ष्य है। इसलिये हम कह सकते हैं कि कृष्ण भक्त कवियों में जो स्थान सूर को प्राप्त है वही कृष्ण के रूप चित्रण और शृङ्गारिक वर्णन में विद्यापति को प्राप्त है। मुक्तककारों की दृष्टि से विद्यापति अपने पदों की रचना में हिंदी के सम्पूर्ण कवियों से अग्रणी हैं। जो राग और रागनियाँ विद्यापति के गीतों में हैं उनको हम सूरदास जैसे सफल गीतकार में भी नहीं पा सकते। क्या भाव और क्या कला सौंदर्य, सभी दृष्टि से विद्यापति एक महान कला पारखी और कला प्रेमी हैं। उनका जीवन सुन्दरता और माधुर्य के लिये है। असुन्दरता उनके लिये एक विरोधी तत्व है। विद्यापति हिंदी काव्य जगत में सौंदर्य और माधुर्य की रचना करके आगे के कवियों को एक ऐसी चेतना और जागृति दे गये कि काव्य में सौंदर्यपक्ष की ओर कवियों का ध्यान अधिक गया। और रीतिकालीन सम्पूर्ण साहित्य केवल सौंदर्य प्रदर्शन का ही ब्यौरा है। यह सब महाकवि विद्यापति की ही दैन है।